अद्भुत रामायण

वैदिक सनातन

अद्भुतरामायणकी विषयानुक्रमणिका

★

वर्ग	विषय	पृष्ठ
१	रामजानकीका परब्रह्मरूपप्रतिपादन	१
२	अम्वरीषराजाको नारायणका वर देना	५
३	नारदपर्वतका राजसभामें आना	१०
४	रामचन्द्रके जन्म लेनेका कारण	१५
५	जानकीके जन्म लेनेका कारण कथन	२४
६	हरिमित्रोपाख्यान तथा कौशिकादिका वैकुण्ठगमन वर्णन ...	३१
७	नारदजीको गानविद्याका प्राप्त होना	४२
८	सीताजीका जन्मवर्णन	४९
९	परशुरामको रामका विश्वरूप दिखाना	५५
१०	रामचन्द्रका महावीरको चतुर्भुजरूप दिखाना	५९
११	रामका सांख्ययोग वर्णन करना	६१
१२	उपनिषत्कथन करना	६८
१३	रामका भक्तियोग कहना	७१
१४	रामचन्द्र और महवीरजीका संवाद	७५
१५	हनुमान्जीका रामचन्द्रकी स्तुति करना	८१
१६	रामचन्द्रका रावणको मार राज्य पाना	८५
१७	जानकीवचन सहस्त्रमुख रावणका वृत्तान्त	८७
१८	रावणकी सेनाका निकलना	९५
१९	सहस्त्रमुखी रावणके पुत्रोंका युद्धको चलना	१०३
२०	संकुलयुद्धवर्णन	१०८
२१	रावणका रामकी सेनाको विक्षेप करना	११२
२२	रामचन्द्रका मूर्च्छित होना	११५
२३	जानकीद्वारा सहस्त्रमुखी रावणका वध	१२१
२४	देवतोंका रामको आश्वासन करना	१२९
२५	रामचन्द्रका सहस्रनामसे जानकीकी स्तुति करना	१३४
२६	श्रीरामविजयवर्णन	१५३
२७	श्रीरामका अयोध्याजीमें आना	१५९

इत्यनुक्रमणिका समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः

अद्भुत रामायणम्

भाषाटीकासमेतम्

★

दोहा—सीताराम लक्ष्मण सहित, बंदौं पवनकुमार ।
कृपाकटाक्ष विलोकि मोंहि, पूरण करहु विचार ।।

प्रथम सर्ग

रामजानकीका परब्रह्मरूपप्रतिपादन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।। १ ।। नमस्तस्मै मुनींद्राय श्रीयुताय यशस्विने । शांताय वीतरागाय वाल्मीकाय नमोनमः ।। २ ।।

नररूप नरोत्तम नारायण तथा देवी सरस्वती और व्यासजीको प्रणामकर जय शब्दका उच्चारण करना चाहिये ।। १ ।। मुनींद्र लक्ष्मीयुक्त यशस्वी शांत वीतराग वाल्मीकिजीके निमित्त नमस्कार है ।। २ ।।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाःपतये नमः ।। ३ ।। जयति रघुवंशतिलकः कौशल्यानंद-वर्द्धनो रामः । दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुंडरीकाक्षः ।। ४ ।।

राम रामभद्र रामचन्द्र विधाता रघुनाथ नाथ सीतापतिके निमित्त नमस्कार है ।। ३ ।। रघुवंशके तिलक कौशल्याके हृदयके आनन्ददाता रावणहन्ता दशरथपुत्र कमललोचन रामकी जय हो ।। ४ ।।

तमसातीरनिलयं निलयं तपसां गुरुम् । वचसां प्रथमस्थानं वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् ।। १ ।। विनयावनतो भूत्वा भरद्वाजो महामुनिः । अपृच्छत्संमतः शिष्यः कृतांजलिपुटो वशी ।। २ ।।

तमसातीरनिवासी तपस्वियोंके गुरु वाणीके प्रथम स्थान वाल्मीकी मुनिश्रेष्ठसे ।। १ ।। विनयसे नम्र हो भरद्वाज महामुनिसम्मत शिष्य जितेंद्रिय हाथ जोडकर कहने लगे ।। २ ।।

रामायणमिति ख्यातं शतकोटिप्रविस्तरम् । प्रणीतं भवता यच्च ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ।। ३ ।। श्रूयते ब्राह्मणैर्नित्यमृषिभिः पितृभिः सुरैः । पंचविंशतिसाहस्त्रं रामायणमिदं भुविः ।। ४ ।।

जो कि, सौ करोड श्लोकोंमें रामायणका विस्तार कहा है और जो आपकी बनाई ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित है ।। ३ ।। जिसको ब्राह्मण पितर देवता नित्य श्रवण करते हैं, जिसमेंसे पृथ्वीमें २५००० सहस्र रामायण हैं ।। ४ ।।

तदाकर्णितमस्माभिः सविशेषं महामुने । शतकोटिप्रविस्तारे रामायणमहार्णवे ।। ५ ।। किं गीतमिह मुष्णाति तन्मे कथय सुव्रत । आकर्ण्यादरिणः पृष्टं भरद्वाजस्य वै मुनिः ।। ६ ।।

हे महामुनिराज ! वह हमने सुनी है, परन्तु रामायणके सौ करोड विस्तार में ।। ५ ।। वह क्या कथा गुप्त है, हे सुव्रत ! हमसे आप वर्णन कीजिये, इस प्रकार भरद्वाजका प्रश्न सुनकर मुनिराजने ।। ६ ।।

हस्तामलकवत्सर्वं सस्मार शतकोटिकम् । ओमित्युक्त्वा मुनिः शिष्यं प्रोवाच वदतां वरम् ।। ७ ।। भरद्वाज चिरं जीव साधु स्मारितमद्य नः । शतकोटिप्रविस्तारे रामायणमहार्णवे ।। ८ ।।

हस्तामलकके समान सम्पूर्ण रामचरित्रका स्मरण किया, बहुत अच्छा यह वचन मुनिराजने अपने शिष्यसे कहा ।। ७ ।। हे भरद्वाज ! तुम बहुत दिनोंतक जीओ, हमको अच्छा चरित्र स्मरण कराया, सौ करोडके विस्तारवाले रामायण महासागरमें ।। ८ ।।

रामस्य चरितं सर्वमाश्चर्यं सम्यगीरितम् । पंचविंशतिसाहस्त्रं नृलोके यत्प्रतिष्ठितम् ।। ९ ।। नृणां हि सदृशं रामचरितं वर्णितं ततः । सीतामाहात्म्यसारं यद्विशेषादत्र नोक्तवान् ।। १० ।।

रामका सब चरित्र आश्चर्य रूप है, जो पचीस सहस्र रामायणमनुष्य-लोकमें प्रतिष्ठित है ॥ ९ ॥ वह रामचरित्र मनुष्योंके समान वर्णन किया है उनमें सीतामाहात्म्य विशेष करके नहीं कहा है ॥ १० ॥

शृणुष्वावाहितो ब्रह्मन्काकुत्स्थचरितं महत् । सीतायाः मूलभूतायाः प्रकृतेश्चरितं महत् ॥ ११ ॥ आश्चर्यमाश्चर्यमिदं गोपितं ब्रह्मणो गृहे । हिताय प्रियशिष्याय तुभ्यमावेदयामि तत् ॥ १२ ॥

हे ब्रह्मन् ! उस बड़े रामचरितको सावधान होकर सुनिये, जो मूलप्रकृति जानकीका चरित्र है ॥ ११ ॥ यह परम आश्चर्यरूप ब्रह्माजीके स्थानमें गुप्तरूप हैं, सो तुम हितकारी प्रिय शिष्यके निमित्त मैं वर्णन करता हूँ ॥ १२ ॥

जानकी प्रकृतिः सृष्टेरादिभूता महागुणा । तपःसिद्धिः स्वर्गसिद्धि-र्भूतिर्मूर्तिमती सती ॥ १३ ॥ विद्याविद्या च महती गीयते ब्रह्मवा-दिभिः । ऋद्धिः सिद्धिर्गुणमयी गुणातीता गुणात्मिका ॥ १४ ॥

जानकी सृष्टिकी प्रकृति रूप आदिभूत महागुणसंपन्न है, तपकी सिद्धि स्वर्गकी सिद्धि ऐश्वर्यरूप मूर्तिमान् सती है ॥ १३ ॥ ब्रह्मवादी इसहीको विद्या अविद्यारूपसे गाते हैं, यही ऋद्धि सिद्धि गुणमयी गुणातीत गुणात्मिका है ॥ १४ ॥

ब्रह्मब्रह्मांडसंभूता सर्वकारणकारणम् । प्रकृतिर्विकृतिर्देवी चिन्मयी चिद्विलासिनी ॥ १५ ॥ महाकुण्डलिनी सर्वानुस्यूता ब्रह्मसंज्ञिता । यस्या विलसितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ १६ ॥

ब्रह्म ब्रह्माण्डका इसहीसे सम्भव है, यही सर्व कारणकी कारण है, यही देवी प्रकृतिविकृतिस्वरूपा चिन्मयी चिद्विलासिनी है ॥१५॥ यही सबही प्रगट करनेवाली महाकुण्डलिनी है, ब्रह्मसंज्ञा इसीकी है, यह चराचर जगत् इसीसे विलसित है ॥ १६ ॥

यामाधाय हृदि ब्रह्मन्योगिनस्तत्त्वदर्शिनः । विघट्टयंति हृद्ग्रंथिं भवंति सुख मूर्तिकाः ॥ १७ ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सुव्रत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा प्रकृति संभवः ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ? तत्त्वदर्शी योगी जिसको हृदयमें धारणकर हृदयकी अज्ञान-ग्रंथि नष्ट कर सुखी होते हैं ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब तब अधर्मके नष्ट करनेको प्रकृतिका सम्भव होता है ॥ १८ ॥

रामः साक्षात्परं ज्योतिः परं धाम परः पुमान् ।। आकृतौ परमो भेदो न सीतारामयोर्यतः ।। १९ ।। रामः सीता जानकी रामभद्रो नाणुर्भेदो नैतयोरस्ति कश्चित् । सन्तो बुद्ध्वा तत्त्वमेतद्विबुद्धाः पारं याताः संसृतेर्मृत्युवक्रात् ।। २० ।।

राम साक्षात् परं ज्योति परंधाम परपुरुष हैं, मूर्तिमें सीतारामका कुछ भी भेद नहीं है ।। १९ ।। राम, सीता, जानकी, रामभद्र इनमें अणुमात्र भी भेद नहीं है सन्त इस तत्वको जानकर ज्ञानको प्राप्त होते हैं मृत्युके मुखजन्म मरणसे छूट तत्त्वज्ञानको प्राप्त होते हैं ।। २० ।।

रामोऽचिंत्यो नित्यचित्सर्वसाक्षी सर्वांतः स्थः सर्वलोकैककर्ता । भर्ता हर्तानंदमूर्तिर्विभूमा सीतायोगाच्चिंत्यते योगिभिःसः ।। २१ ।। अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरन्यं पुरुषं पुराणम् ।। २२ ।।

राम अचिन्त्य, चित्स्वरूप सर्वके साक्षी सबके अंतःकरणमें स्थित सब लोकके एक कर्ता है, भर्ता हर्ता आनंदमूर्ति विभूमा सीताके योगसे जिनका चिंतन होता है ।। २१ ।। भौतिक चरण हस्तादिसे रहित होकर यह सर्वत्र व्याप्तरूप गमन और सर्वत्र ग्रहण करनेवाले हैं यह विश्वको जानते हैं परन्तु उनका जाननेवाला कोई नहीं है, उनको अन्य और पुराणपुरुष कहते हैं ।।२२।।

तयोः परं जन्म उदाहरिष्ये ययोर्यथाकारणदेहधारिणोः । अरूपिणो रूपविधारणं पुनर्नृणां महानुग्रह एव केवलम् ।। २३ ।। पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्क्षत्रान्वयो भूमिपतित्वमीयात् । वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयाच्छृण्वन्हि शूद्रोहि महत्त्वमीयात् ।। २४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामयाणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकांडे आदिकाव्ये प्रथमः सर्गः ।।१।।

उन दोनोंके परम जन्मको कहूँगा, जिस कारण उन दोनोंने देह धारण किया है उन अरूपीका देह धारण करना केवल मनुष्योंके हितके ही निमित्त है ।। २३ ।। इसके पढनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठवाणीको प्राप्त होता है क्षत्रिय पृथ्वीपति होता है, वैश्य पण्यफलको प्राप्त होता है, शूद्र सुनकर महत्त्वको प्राप्त होता है ।। २४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकाण्डे आदिकाव्ये
पंडित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ।।१।।

द्वितीय सर्ग

अम्बरीषराजा को नारायण का वर देना

भरद्वाज शृणुष्वाथ रामचन्द्रस्य धीमतः ।। जन्मनः कारणं विप्र इक्ष्वाकुकुलवारिधौ ।। १ ।। सीतायाश्च महादेव्याः पृथिव्यां जन्महेतुकम् । तत्र रामकथामादौ वक्ष्यामि मुनिपुंगव ।। २ ।।

हे भरद्वाज ! इक्ष्वाकुकुलसागरमें जिस प्रकार रामचन्द्रका जन्म हुआ सो आप सुनो ।। १ ।। और महादेवी सीताका भी पृथ्वीमें जन्म लेनेका कारण सुनो; हे मुनिश्रेष्ठ ! उसमें प्रथम में रामकथा वर्णन करता हूँ ।। २ ।।

श्रूयतां मुनिशार्दूल अंबरीषकथालयम् । पुरुषोत्तममाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ।। ३ ।। त्रिशंकोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता । अंबरीषस्य जननी नित्यं शौचसमन्विता ।। ४ ।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! अम्वरीषसंबंधी कथानकको आप हमसे श्रवण कीजिये यह पुरुषोत्तम माहात्म्य सब पापका हरनेवाला है ।। ३ ।। त्रिशंकुकी प्रिया (भार्या) सब लक्षणोंसे शोभित थी वह अम्वरीषकी जननी नित्य पवित्रतासे युक्त थी ।। ४ ।।

योगनिद्रां समारूढं शेषपर्यंकशायिनम् । नारायणं महात्मानं ब्रह्मांडकमलोद्भवम् ।। ५ ।। तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम् । सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम् ।। ६ ।।

योगनिद्रामें आरुढ शेषशय्यापर शयन करनेवाले महात्मा नारायण ब्रह्माण्ड और ब्रह्माके निर्माताको ।। ५ ।। जो तमोगुणयुक्त हो कालरुद्र कहाते हैं, रजोगुणसे ब्रह्मारूप होते हैं, सतोगुणसे सबके नमस्कारयोग्य विष्णुरूप होते हैं ।। ६ ।।

अर्चयामास सततं वाङ्मनःकायवृत्तिभिः । माल्यदामादिकं सर्वं स्वयमेव व्यचीकरत् ।। ७ ।। गंधादिपेषणं चैव धूपद्रव्यादिकं तथा तत्सर्वं कौतुकाविष्टा स्वयमेव चकार सा ।। ८ ।।

उनको वचन मन कर्मसे निरन्तर अर्चना करती थी और माला आदि अपने हाथ लेकर सेवा करती थी ।। ७ ।। गंधादिका पेषण धूप दीपादिका करना यह कौतुकाक्रान्त होकर सब आपही करती थी ।। ८ ।।

शुभा पद्मावती नित्यं वचो नारायणेति च । अनंतेति च सा नित्यं भाषमाणा यतव्रता ।। ९ ।। दशवर्षसहस्राणि तत्परेणांतरात्मना । अर्चयामास गोविंदं गंधपुष्पादिभिः शुभैः ।। १० ।।

और यह पद्मावती नित्य "नमो नारायणाय" ऐसा उच्चारण करती थी और अनन्त नाम उच्चारण करती थी ।। ९ ।। दससहस्रवर्षतक परमप्रेमसे गन्धपुष्पादिसे गोविन्दकी पूजा करती रही ।। १० ।।

विष्णुभक्तान्महाभागान्सर्वपाप विवर्जितान् । दानमानार्चनैर्नित्यं धनै रत्नैरतोषयत् ।। ११ ।। ततः कदाचित्सा देवी द्वादश्यां समुपोष्य वै । हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह ।। १२ ।।

पापरहित महात्मा विष्णु भक्तोंको दान मान धन रत्नसे नित्य सन्तुष्ट करती थी ।। ११ ।। एक समय वह देवी द्वादशीमें व्रत कर पतिके सहित नारायणके आगे सो रही ।। १२ ।।

तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः । किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तः किं ब्रूहि भामिनि ।।१३।। सा दृष्ट्वा तं वरं वव्रे पुत्रस्त्वद्भक्तिमान्भवेत् । सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः ।। १४ ।।

तब नारायण पुरुषोत्तमने उसे कहा हे भामिनी ! तुम क्या इच्छा करती हो ।। १३ ।। उसने कहा अपनी भक्तिवाला पुत्र दीजिये और सार्वभौम महातेजस्वी अपने कर्ममें निरत तथा पवित्र हो ।। १४ ।।

तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः । सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं निवेद्य च ।। १५ ।। भक्षयामास संदर्श्य फलं तद्धृष्टमानसा । ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्द्धनम् ।। १६ ।।

यह सुन जनार्दनने उसके निमित्त एक फल दिया वह फलको देख जाग उठी और यह सब कुछ स्वामीसे निवेदन करके ।। १५ ।। प्रसन्न हो उस फलको खागई; तब समय पर देवीने कुलवर्द्धन पुत्र ।। १६ ।।

असूयत शुभाचारं वासुदेवपरायणम् । शुभलक्षणसम्पन्नं चक्रांकितमनुत्तमम् ।। १७ ।। जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै । अम्बरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः ।। १८ ।।

सुन्दर आचरणयुक्त वासुदेवपरायणको उत्पन्न किया । जो शुभलक्षणसे सम्पन्न पौरुओंमें चक्रादि अंकित श्रेष्ठ था ।। १७ ।।पुत्रको उत्पन्न हुआ देखकर राजाने सम्पूर्ण क्रिया की और लोकमें अम्बरीष नामसे वह विख्यात हुआ ।। १८

पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तोमहात्मभिः । मंत्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रं चकार सः ।। १९ ।। संवत्सर सहस्रं वै जगन्नारायणं प्रभुम् । हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं सूर्यमण्डलमध्यगम् ।। २० ।।

पिताके उपराम होनेमें उसका राज्याभिषेक हुआ, तब अम्बरीषने मन्त्री-जनोंको राज्य सौंपकर वनमें जाकर तप किया ।। १९ ।। सहस्रसंवत्सरतक नारायणका जप किया, हृदयकमलके मध्यमें तथा सूर्यमें नारायणका जप करते हुए ।। २० ।।

शंखचक्रगदापद्मं धारयंतं चतुर्भुजम् । शुद्धजाम्बूनदनिभं ब्रह्म-विष्णुशिवात्मकम् ।। २१ ।। सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं प्रभुम्। श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ।। २२ ।।

तब शंख चक्र गदा पद्म धारण करनेवाले चतुर्भुज शुद्ध सुवर्णके समान कान्तिमान् ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकरूप ।। २१ ।। सम्पूर्ण आभरणोंसे युक्त पीतांबरधारी प्रभु श्रीवत्स वक्षस्थलमें धारण किये पुरुषोत्तम देव ।। २२ ।।

ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः । आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ।। २३ ।। ऐरावतमिवाचिंत्ये कृत्वा वै गरुडं हरिः । स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम् ।। २४ ।।

गरुडपर चढे देवर्षियोंसे स्तुतिको प्राप्त सब लोकोंसे नमस्कारको प्राप्त हुए नारायण आये ।। २३ ।। और गरुडको अचिन्त्य ऐरावतके समान करके और इन्द्रका रूप स्वयं धारण कर उसके निकट आकर यह कहने लगे ।। २४ ।।

इंद्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि तवाद्य वै । सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः ।। २५ ।। अम्बरीषस्तु तं दृष्ट्वा शक्रमैरावत-स्थितम् । उवाच वचनं धीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ।। २६ ।।

हे राजन् ! मैं इन्द्र हूं तुम्हारा मंगल हो तुम्हारे निमित्त मैं क्या वस्तु दूं मैं सर्वलोकेश्वर तुम्हारी रक्षा करनेको आया हूं ।। २५ ।। अम्बरीष राजा ऐरावतपर स्थित हुए इन्द्रको देखकर विष्णुभक्तिमें परायण इस प्रकारके वचन कहने लगे ।। २६ ।।

नाहं त्वामभिसंधाय तप आस्थितवानिह । त्वया दत्तं च नेच्छामि गच्छ शक्र यथासुखम् ।। २७ ।। मम नारायणो नाथस्त्वां न तोष्येऽमराधिप । व्रजेन्द्र मा कृथास्त्वत्र ममाश्रमविलोपनम् ।। २८ ।।

कि, मैंने आपके उद्देशसे तप नहीं किया है । आपकी दीहुई वस्तुकी मुझे इच्छा नहीं, आप यथेच्छ गमन करिये ।। २७ ।। हे इन्द्र ! मेरे स्वामी नारायण हैं मैं आपसे कुछ नहीं चाहता, आप पधारिये इस आश्रममें वृथा कालका व्यय न कीजिये ।। २८ ।।

ततः प्रहस्य भगवान्स्वरूपमकरोद्धरिः । शार्ङ्गचक्रगदापाणिः शंखहस्तो जनार्दनः ।। २९ ।। गरुडोपरि विश्वात्मा नीलाचल इवापरः । देवगधर्वसंघैश्च स्तूयमानः समंततः ।। ३० ।।

तब नारायणने हँसकर अपना स्वरूप प्रगट किया । शार्ङ्ग, चक्र, गदा और शंख, हाथमें लिये ।। २९ ।। जनार्दन विश्वात्मा गरुडपर दूसरे नीलाचलके समान देव और गन्धर्वोंके समूहोंसे सब ओर स्तुतिको प्राप्त हुए भगवान्को देख ।। ३० ।।

प्रणम्य राजा संतुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम् । प्रसीद लोकनाथस्त्वं मम नाथ जनार्दन ।। ३१ ।। कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत । त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनन्तः पुरुषः प्रभुः ।। ३२ ।।

राजा प्रणाम कर गरुडध्वजको सन्तुष्ट करने लगा, मेरे नाथ ! जनार्दन, लोकनाथ ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये ।। ३१ ।। हे कृष्ण, हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ हे सर्वलोकसे नमस्कृत, आदि अनादि, अनंत, प्रभु हो ।। ३२ ।।

अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविंदः कमलेक्षणः । महेश्वरांशजो मध्यः पुष्करः खगगः खगः ।। ३३ ।। कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभंजनः । आदिदेवः क्रियानंदः परमात्मनि संस्थितः ।। ३४ ।।

अप्रमेय विभु विष्णु गोविन्द कमललोचन महेश्वर अंशोत्पन्न मध्यपुष्कर और अनन्त पुरुष प्रभु हो ।। ३३ ।। आप कव्यवाह, कपाली हव्यवाह प्रभंजन हो, आप आदिदेव, क्रियानन्द परमात्मामें स्थित हो ।। ३४ ।।

त्वां प्रपन्नोऽस्मि गोविंद पाहि मां पुष्करेक्षण । नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वामेव शरणं गतः ।। ३५ ।। तमाह भगवान्विष्णुः किं ते हृदि चिकीर्षितम् । तत्सर्वं संप्रदास्यामि भक्तोऽसि मम सुव्रत।।३६।।

हे गोविन्द मैं आपकी शरण हूँ; आप मेरी रक्षा कीजिये, आपके सिवाय मेरी अन्यगति नहीं है मैं आपकी शरण हूँ ।। ३५ ।। तब भगवान् विष्णुने कहा तुम्हारी क्या इच्छा है ? वह मैं सब तुम्हें दूंगा कारण कि, तुम मेरे भक्त हो ।। ३६ ।।

भक्तप्रियोऽस्मि सततं तस्माद्दातुमिहागतः । अंबरीषस्तु तच्छ्रुत्वा हर्षगद्गदयागिरा ।। ३७ ।। प्रोवाच परमात्मानं नारायणमनामयम् । त्वयि विष्णौ परानंदे नित्यं मे वर्त्ततां मतिः ।। ३८ ।।

मैं निरन्तर भक्तप्रिय हूँ इस कारण तुमको यथेच्छ फल देनेको आया हूँ, तुम मेरे भक्त हो, यह वचन सुन अम्बरीष हर्षसे गद्गद हो ।। ३७ ।। परमात्मा अनामय नारायणसे कहने लगे हे विष्णु ! आपमें निरन्तर मेरी भक्ति हो । ३८ ।

भवेयं त्वत्परो नित्यं वाङ्मनः कायकर्मभिः । पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत् ।। ३९ ।। यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पयिष्यामि सुरोत्तमान् । वैष्णवान्पालयिष्यामि हनिष्यामि च शात्रवान् ।। ४० ।।

मन वचन कर्मसे नित्य मैं आपकी सेवा करके पृथ्वीको विष्णुभक्त करदूंगा ।। ३९ ।। यज्ञ होम अर्चनसे देवताओंको तृप्त कर वैष्णवोंको पालकर असुरोंको नष्ट करूंगा ।। ४० ।।

एवमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाच नृपोत्तमम् । एवमस्तु तवेच्छा वै चक्रमेतत्सुदर्शनम् ।।४१।। पुरारुद्रप्रभावेण लब्धं वै दुर्लभं मया । ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा ।। ४२ ।।

यह सुनकर भगवान्ने राजासे कहा, जो तुम्हारी इच्छा है वह होगा और यह सुदर्शन चक्र ।। ४१ ।। जो प्रथम हमने रुद्रके प्रभावसे प्राप्त किया है यह ऋषिके शाप, दुःख, शत्रु रोगादि ।। ४२ ।।

निहनिष्यति ते दुःखमित्युक्त्वांतरधीयत । ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणं प्रभुम् ।। ४३ ।। प्रविश्य नगरीं दिव्यामयोध्यां पर्यपालयत् । ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान्स्वेस्वे कर्मण्ययोजयत् ।। ४४ ।।

आपके दुःख दूर करेगा ऐसा कहकर अन्तर्धान होगये, तब प्रसन्न हो राजा नारायण प्रभुको प्रणाम कर ।। ४३ ।। दिव्य अयोध्यानगरीमें प्रवेश करके उसकी पालना करने लगा ब्राह्मणादि वर्णोंको भी अपने २ कर्ममें लगाता हुआ ।। ४४ ।।

नारायणपरो नित्यं विष्णुभक्तानकल्मषान् । पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः ।। ४५ ।। अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतानि च । पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम् ।। ४६ ।।

नित्य नारायणमें तत्पर विष्णुभक्तोंको विशेष कर पालन करता हुआ ।।४५।। सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ करके सागरपर्यंन्त पृथ्वीका पालन कर्ता हुआ ।। ४६ ।।

गृहे गृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहे गृहे । नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च ।। ४७ ।। अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन्राज्यं प्रशासति ।। नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता ।। ४८ ।।

उस समय घर घर नारायण और वेदका उच्चारण होता था, नारायणका नाम और यज्ञका शब्द घर घर होता था ।। ४७ ।।उसके राज्यमें इस प्रकारसे कार्य होते थे, उसके राज्यमें भूमि तृण अन्नसे युक्त थी, दुर्भिक्षादि नहीं था ।। ४८ ।।

रोगहीना प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिता । अम्बरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् ।। ४९ ।। स वै महात्मा सततं च रक्षितः सुदर्शनेनातिसुदर्शनेन । शुभां समुद्रावधि संततां महीं सुपालयामास महीमहेन्द्रः ।। ५० ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेऽद्भुतोत्तरकांडे अम्बरीषवरप्रदानं नाम द्वितीयः सर्गः ।। २ ।।

नित्य प्रजा रोगहीन और सब उपद्रवोंसे रहित थी, इस प्रकार महाराज अम्बरीष पृथ्वीका पालन करते थे ।। ४९ ।। इस प्रकार वह महात्मा सुदर्शन-चक्रसे रक्षित हो कर सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको पालन करता हुआ ।।५०।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकाण्डे भाषाटीकायां अम्बरीष-वरप्रदानं नाम द्वितीयः सर्गः ।। २ ।।

तृतीय सर्ग

नारदपर्वतका राजसभामें आना

तस्यैवं वर्तमानस्य कन्या कमललोचना । श्रीमतीनामविख्याता सर्वलक्षणशोभिता ।। १ ।। तस्मिन्काले मुनिःश्रीमान्नारदोऽभ्यागतो गृहम् । अम्बरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महाद्युतिः ।। २ ।।

इस प्रकार उनके वर्तमान होनेमें कमललोचनी कन्या लक्षणोंसे शोभित श्रीमतीनाम उत्पन्न हुई ।। १ ।। उसी समय नारदजी उसके घर आये और पर्वतऋषि भी आये ।। २ ।।

तावुभावागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि । अम्बरीषो महातेजाः पूजयामास तौ नृपः ।। ३ ।। कन्यां तु प्रेक्ष्य भगवान्नारदः प्राह विस्मितः । केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ।। ४ ।।

उन दोनोंको आया देख विधिपूर्वक महातेजस्वी अम्बरीषने उनका पूजन किया ।। ३ ।। उस कन्याको देख भगवान् नारद विस्मयको प्राप्त हो बोले–हे राजन् यह महाभागा कन्या किसकी है ? ।। ४ ।।

ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षणशोभिता । निशम्य वचनं तस्य राजा प्राह कृतांजलिः ।। ५ ।। दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः ।। प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभा ।। ६ ।।

यह सर्वलक्षणलक्षित है, यह ऋषिके वचन सुन हाथ जोड राजा बोला ।।५।। हे विभो ! यह श्रीमती नाम मेरी कन्या है; अब यह प्रदानसमयको प्राप्त हुई वरकी खोजमें है ।। ६ ।।

इत्युक्तो मुनि शार्दूलस्तामैच्छन्नारदो द्विजः । पर्वतोऽपि मुनिस्तां वै चकमे सर्षिसत्तमः ।। ७ ।। अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् । रहस्याहूय धर्मात्मा मम देहि सुतामिमाम् ।। ८ ।।

यह कहनेपर नारदजीने उसकी इच्छा की और पर्वत मुनिने भी उसकी इच्छा की ।। ७ ।। राजाको अनुज्ञा करके नारदजी बोले अर्थात् उन धर्मात्माने एकान्तमें बुलाकर यह कन्या मुझे दीजिये ।। ८ ।।

पर्वतोऽपि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुम् । तावुभौ प्राह धर्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दितः ।। ९ ।। उभौ भवंतौ कन्यां मे प्रार्थयानौ कथं त्वहम् । करिष्यामि महाप्राज्ञौ शृणु नारद मे वचः ।। १० ।।

तब पर्वतने भी एकान्तमें राजासे कहा, तब राजा भयव्याकुल हो दोनोंसे बोले ।। ९ ।। तुम दोनों कन्याकी प्रार्थना करते हो तो मैं आपके वचन किस प्रकारसे पूर्ण कर सकता हूँ ? हे नारद ! ।। १० ।।

त्वं च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो। कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेच्छुभा।।११।। तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्ति रस्ति मे ।तथेत्युक्त्वा तु तौ विप्रौ श्व आयास्याव ए हि ।।१२।।

हे पर्वतजी ! आप मेरे वचन श्रवण कीजिये मैं कहता हूँ तुम दोनोंमें यह कन्या जिसक ेवरण करे ।। ११ ।। उसीको मैं दे दूंगा अन्यथा देनेकी मुझे शक्ति नहीं है ! बहुत अच्छा यह कह दोनों ब्राह्मण दूसरे दिन आनेको कहकर ।। १२ ।।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतमानसौ । वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानवतां वरौ ।। १३ ।। विष्णुलोकं ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः । प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।। १४ ।।

प्रसन्नतासे चले गये यह दोनों ज्ञानी नित्य वासुदेवपरायण थे ।। १३ ।। तब मुनिश्रेष्ठ नारदजी विष्णुलोकमें जाकर नारायणको प्रणाम कर इस प्रकारके वचन बोले ।। १४ ।।

वृत्तान्तं सर्वमाख्याय नाथ नारायणाव्यय । रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवनेश्वर ।। १५ ।।ततः प्रहस्य गोविंदः सर्वात्मा कर्मठंमुनिम् । ब्रूहीत्याह स विश्वात्मा मुनिराह च केशवम् ।। १६ ।।

और सब वृत्तान्त कथन करके बोले हे नारायण अविनाशी ! एकान्तमें आपसे कुछ कहूंगा आपको प्रणाम है ।। १५ ।। तब सर्वात्मा गोविन्द हँसकर उन कर्म करनेवाले मुनिसे बोले, कहिये तब यह केशव से बोले ।। १६ ।।

त्वदीयो नृपतिः श्रीमानंबरीषो महामतिः । तस्य कन्यां विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः ।। १७ ।। परिणेतुमहं तां वा इच्छामि वचनं शृणु । पर्वतोऽयं मुनिः श्रीमांस्तव भृत्यस्तपोनिधिः ।। १८ ।।

आपका भक्त एक अम्बरीष राजा है उसकी विशाल लोचनी श्रीमती कन्या है ।। १७ ।। उससे मैं विवाह करनेकी इच्छा करता हूँ सो आप सुनिये यह श्रीमान् पर्वत भी आपके बडे भक्त हैं ।। १८ ।।

तामैच्छत्सोऽपि भगवंस्तमाह च जनाधिपः ।। अंबरीषो महातेजाः कन्येयं युवयोर्वरम् ।। १९ ।। लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम् । इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाप्यहं ततः ।। २० ।।

यह भी उसकी इच्छा करते हैं और राजाने कहा है कि, यह कन्या तुम दोनोंमें जिसको ॥ १९ ॥ अधिक रूपवान् जानकर वरण करेगी उसीको मैं देदूंगा यह राजाने कहा तब में बहुत अच्छा ऐसा कहकर ॥ २० ॥

आगमिष्यामि ते राजंछ्वः प्रभाते गृहं प्रति । आगतोऽहं जगन्नाथ कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥ २१ ॥ वानराननवद्भाति पर्वतस्य मुखं यथा । तथा कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ २२ ॥

कि, प्रातःकाल तुम्हारे घर आऊँगा तो महाराज ! अब मैं आपके पास आया हूँ आप मेरा प्रिय कीजिये ॥ २१ ॥ पर्वतका मुख तो वानरके समान होजाय ऐसा आप कीजिये जो हमारे प्रियकी इच्छा है तो ॥ २२ ॥

श्रीमती तु तदा पश्येन्नान्यः पश्येत्तथाविधम् । तथेत्युक्त्वा स गोविंदः प्रहस्य मधुसूदनः ॥ २३ ॥ त्वयोक्तं तत्करिष्यामि गच्छ सौम्य यथासुखम् । एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ २४ ॥

और उस रूपको वह श्रीमती कन्याही देख सके और कोई नहीं, यह सुन मधुसूदन गोविद हँसकर बोले ॥ २३ ॥ जो आपने कहा वह मैं सब करूंगा आप सुखपूर्वक पधारिये यह सुन मुनि प्रसन्न हो जनार्दनको प्रणाम कर ॥ २४ ॥

मन्यमानः कृतात्मानमयोध्यां वै जगाम सः । गते मुनिवरे तस्मि-न्पर्वतोऽपि महामुनिः ॥ २५ ॥ प्रणम्य माधवं हृष्टो रहस्येनमुवाच ह । वृत्तांतं च निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पतेः ॥ २६ ॥

अपनेको कृतार्थ मान अयोध्यामें गये उनके जानेपर महामुनि पर्वत ॥ २५ ॥ प्रणाम कर एकान्तमें माधवसे कहने लगे और नारदका वृत्तान्त जगत्पतिके आगे कहा ॥ २६ ॥

गोलांगुलमुखं यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु । श्रीमती तु तथा पश्ये-न्नान्यः पश्येत्तथा विधम् ॥२७॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै । गच्छ शीघ्रमयोध्यां त्वं मा वादीर्नारदस्य वै ॥ २८ ॥

कि, नारदका मुख गोलांगुलके समान जिस प्रकार हो जाय वह करो, परन्तु वह राजकन्याही देखे दूसरा नहीं ऐसा करो ॥ २७ ॥ यह सुन भगवान् विष्णु बोले—मैं तुम्हारे कहे वचन करूंगा, शीघ्र अयोध्याको जाओ और नारदसे न कहो ॥ २८ ॥

त्वया मे मंत्रितं यच्च तथेत्युक्त्वा जगाम सः । ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा ।। २९ ।। मङ्गलैर्विविधैर्भद्रैरयोध्यां ध्वज-मालिनीम् । मंडयामास लाजैश्च पुष्पैश्चैव समंततः ।। ३० ।।

जो आपने मंत्रित किया है वह वैसाही होगा, तब राजाने देखा कि, मुनीश्वर आकर प्राप्त हुए ।। २९ ।। कि, अनेक प्रकारके मङ्गलोंसे युक्त अयोध्यापुरी हो रही है चारों ओरसे खीलों और पुष्पोंसे उसको मंडित किया ।। ३० ।।

अभिषिक्तगृहद्वारां सिक्तांगणमहापथाम् । दिव्यगंधरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः ।। ३१ ।। कृत्वा च नगरीं राजा मंडयामास तां सभाम् । दिव्यगंधैस्तथा धूपै रत्नैश्च विविधैस्तथा ।। ३२ ।।

और बडे बडे महापथमें छिडकाव किये गये, दिव्य गन्ध और रससे युक्त दिव्य धूपोंसे धूपित किया ।। ३१ ।। इस प्रकार नगरीको करके राजाने सभाको शोभित किया, दिव्य गंध धूप और विविध प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत किया ।३२ ।

अलंकृतां मणिस्तंभैर्नानामाल्योपशोभितैः । पराध्यास्तिरणो-पेतैर्दिव्यभद्रासनैर्वृताम् ।। ३३ ।। नानाजनसमावेशैर्नरेन्द्रैरभि-संवृताम् । कृत्वा नृपेंद्रस्तां कन्यामादाय प्रविवेश ह ।। ३४ ।।

अनेक प्रकारकी मालाओंसे स्तंभोंको शोभित किया और अनेक मणियोंको उसमें जटिल किया और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ विछौने और आसन विछाये गये ।। ३३ ।। अनेक प्रकारके राजा और बड़े बडे मनुष्य वहां आकर स्थित हुए तब राजा उस कन्याको लेकर सभामें आये ।। ३४ ।।

सर्वाभरणसंपन्नां श्रीरिवायतलोचना । करसंमितमध्यांगी पंचास्नि-ग्धा शुभानना । स्त्रीभिः परिवृता दिव्या श्रीमती संस्थिता सती।।३५।। सभा तु सा भूमिपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा । न्यस्तासना माल्यवती सुगंधा तामन्वयुस्ते सुरराजवर्याः ।। ३६ ।।

जो सम्पूर्ण गहने पहरे साक्षात् दीर्घलोचना लक्ष्मीके समान थी । मुट्ठीभर कमरवाली, पांच स्थानमें चिकने शरीरवाली सुन्दर मुखवाली दिव्य स्त्रीजनोंसे संवृत श्रीमती स्थित हुई ।। ३५ ।। वह राजाकी सभा अनेक मणिरत्नोंसे संयुक्त थी, वहां आसनके ऊपर बैठी माला हाथमें लिये सुरराजकन्याके समान उसके साथ हुई ।। ३६ ।।

अथाययौ ब्रह्मवरात्मजो महांस्त्रैविद्य वृद्धोभगवान्महात्मा । सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो महामुनिर्नारद आजगाम ।। ३७ ।।

इत्यार्षे श्रीम० बाल्मी० आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे नारदपर्वत-
सभाप्रवेशो नाम तृतीयः सर्ग ।। ३ ।।

उसी समय ब्रह्मवरात्मज महान् त्रिविद्यावृद्ध महात्मा नारदजी पर्वतको साथ लेकर उस स्थानमें आये ।। ३७ ।।

इत्यार्षे श्रीम० बाल्मी० आ० अद्भुतोत्तरकाण्डे भाषायां नारदपर्वत-
सभाप्रवेशो नाम तृतीय सर्ग ।। ३ ।।

चतुर्थ सर्ग

रामचन्द्रके जन्म लेनेका कारण

तवागतौ समीक्ष्याथ राजा संभ्रांतमानसः । दिव्यमासनमादिश्य पूजयामास तावुभौ ।। १ ।। उभौ देवऋषी दिव्यौ नित्यज्ञानवतां वरौ । समासीनौ महात्मानौ कन्यार्थे मुनिसत्तमौ ।। २ ।।

उन दोनोंको आया देखकर राजा संभ्रान्तमन होकर दिव्य आसनपर बैठाकर दोनोंकी पूजा करता हुआ ।। १ ।। वे दोनों दिव्य देवऋषि नित्य ज्ञानवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा कन्याके निमित्त उस आसनमें बैठते हुए ।। २ ।।

तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम् । स्थितां कमल-पत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम् ।। ३ ।। अनयोर्यं वरं भद्रे मनसा त्वमिहेच्छसि । तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथा विधि ।। ४ ।।

उन दोनोंको प्रणाम कर राजा कमललोचनी यशस्विनी अपनी कन्यासे बोले ।। ३ ।। हे भद्रे ! इन दोनोंमें जिसे मनसे वरण करो उसीको यथाविधि प्रणाम कर यह माला पहरा दो ।। ४ ।।

एवमुक्ता तु सा कन्या स्त्रीभिः परिवृता तदा । मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना ।। ५।। तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ।। ६ ।।

स्त्रियोंसे युक्त जब उस कन्यासे यह वचन कहा गया तब वह शुभ लोचना दिव्य सुवर्णकी मालाको लेकर ।। ५ ।। खडी रही तब राजाने कहा हे वत्से ! तू क्या करेगी ।। ६ ।।

अनयोरेकमुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे । सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तु वानराननौ ।। ७ ।।मुनिश्रेष्ठौ न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा। अनयोर्मध्यतस्त्वेकं वरं षोडशवार्षिकम् ।। ८ ।।

इन दोनोंमें किसी एकको माला प्रदान कर। तब वह पितासे बोली इन दोनोंका तो बानरका मुख है ।। ७ ।। मुझे तो मुनिश्रेष्ठ नारद और पर्वत दीखते नहीं परंतु इन दोनोंके बीचमें एक सोलह वर्षका युवा ।। ८ ।।

सर्वाभरणसंयुक्तमतसीपुष्पसंनिभम् । दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुंगोर:स्थलमुत्तमम् ।। ९ ।। चामीकराभं करणपटयुग्मकशोभितम् । विभक्तत्रिवलीयुक्तनाभिं व्यक्तकृशोरदम् ।। १० ।।

सम्पूर्ण गहनोंसे युक्त अलसीके फूलके समान दीर्घ बाहु विशाल नेत्र ऊँच। श्रेष्ठ उरस्थल ।। ९ ।। सुवर्णके समान तेजवाले दो वस्त्रोंसे शोभित विभक्त त्रिवलीसे युक्त नाभि प्रगट कृश उदरवाला ।। १० ।।

हिरण्याभरणोपेतं सुरंगकनखं शुभम् । पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम् ।। ११ ।। पद्मांघ्रि पद्महृदयं पद्मनाभं श्रियावृतम् । दंतपंक्तिभिरत्यर्थं कुन्दकुड्मलसन्निभम् ।। १२ ।।

सुवर्णके गहनोंसे युक्त सुन्दर नख, कमलकेसे हाथ कमलमुख कमल लोचन।। ११।। कमलकेसे चरण कमलहृदय पद्मनाभ लक्ष्मीसे युक्त चमेलीके कलीके समान दंतपंक्तिसे शोभित ।। १२ ।।

हसंतं मां समालोक्य दक्षिणं च प्रसार्य वै । पाणिं स्थितमिमं छन्नं पश्यामि शुभमूर्धजम् ।। १३ ।। एवमुक्ते मुनिः प्राह नारदः संशयं गत : । कियंतो बाहवस्तस्य कन्ये वद यथातथम् ।। १४ ।।

मुझे देखकर हास्यकर दक्षिण हाथ फैलाये हैं इसहीको मैं सुन्दर सिर आदिसे युक्त देखती हूँ ।। १३ ।। यह कहनेपर नारदमुनि सन्देहको प्राप्त हो बोले हे कन्या ! यथार्थ कह उसके कितनी भुजा हैं ।। १४ ।।।

बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या सुविस्मिता । प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्य वक्षःस्थले शुभे ।। १५ ।। किंच पश्यसि मे ब्रूहि करे किं धारयत्यपि । कन्या तमाह मालां वै चंचद्रूपामनुत्तमाम् ।। १६ ।।

तब कन्या विस्मयको प्राप्त हो बोली दो भुजा देखती हूं, तब पर्वत बोले हे शुभे ! उसके वक्षस्थलमें ।। १५ ।। क्या है जो यह पुरुष धारण कर रहा है, सो बता, तब कन्याने कहा वह पुरुष बहुत सुन्दर माला धारण किये है ।। १६ ।।

वक्षःस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकौ । एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ ।। १७ ।। मनसा चिंतयंतौ तौ मायेयं कस्यचिद्भवेत् । मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दनः ।। १८ ।।

और हाथमें धनुषबाण धारण किये हैं, जब यह कहा तब वे दोनों मुनि श्रेष्ठ ।। १७ ।। मनमें विचारने लगे यह किसीकी माया है, यह मायावी तस्कर अवश्यही श्रीकृष्ण हैं ।। १८ ।।

आगतो नान्यथा कुर्यात्कथं मेऽन्यो मुखं त्विदम् । गोलांगूलीयमित्येवं चिंतयामास नारदः ।। १९ ।। पर्वतोऽपि तथैवैतद्वानरत्वं कथं मया । प्राप्तमित्येव सहसा चिंतामापेदिवांस्तथा ।। २० ।।

वही आगये हैं नहीं तो इस प्रकारका हमारा मुख किस प्रकारका हो सकता है, कि गोलांगुलका मुख हो गया, यह नारदजी चिन्ता करने लगे ।। १९ ।। पर्वत कहने लगे हमारा वानरका मुख किस प्रकार हो गया ? इस प्रकार बडी चिन्ता हुई ।। २० ।।

ततो राजा प्रणम्यासौ नारदं पर्वतं तथा । भवद्भ्यां किमिदं भद्रौ कृतं बुद्धि विमोहनम् ।। २१ ।। स्वस्थौ भवंतौ तिष्ठेतां यदि कन्यार्थमुद्यतौ । एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्बणौ ।। २२ ।।

तब राजा प्रणाम कर नारद और पर्वतसे बोले, यह तुम्हारी बुद्धिमें मोह किस प्रकारसे हुआ है ।। २१ ।। यदि कन्याके स्वीकारकी इच्छा है तो आप स्वस्थ होकर स्थित पूजिये, यह सुनकर वे दोनों मुनिश्रेष्ठ राजासे कहने लगे ।। २२ ।।

त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथंचन । आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव भामिनी ।। २३ ।। ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्य च देवताम् । पित्रा नियुक्ता सहसा मुनिशापभयाद्द्विज ।। २४ ।।

राजन् तुमने ही मोह किया है, और हम भी किसी प्रकारसे मोह नहीं करते हैं, यह कन्या हम दोनोंमें किसी एकको वरण कर ले ।। २३ ।।तब वह कन्या फिर देवताको प्रणाम करके शापके डरसे पितासे नियुक्त की गई ।। २४ ।।

मालामादाय तिष्ठन्ती तयोर्मध्ये समाहिता । पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा माल्ये तस्मै ददौ हि सा ।। २५ ।। अनंतरं च सा कन्या दृष्ट्वा न मनुजैः पुरः । ततो नादः समभवत्किमेतदिति विस्मयात् ।। २६ ।।

सावधान हो उन दोनोंके बीचमें माला लेकर स्थित हुई और पूर्ववत् उस पुरुषको देखकर वह माला उसहीको पहरा दी ।। २५ ।। फिर उस कन्याको मनुष्योंने नहीं देखा तव यह क्या हुआ इस प्रकारका शब्द होने लगा ।। २६ ।।

तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः । पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वरांगना ।। २७ ।। श्रीमतीयं समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम् । तावुभौ मुनिशार्दूलौ धिक्त्वामित्येव दुःखितौ ।। २८ ।।

उसको लेकर पुरुषोत्तम विष्णु भगवान् अपने स्थानको चले गये, पहले भगवान्के निमित्त बड़ा तप करके यह श्रेष्ठ स्त्री उत्पन्न हुई थी और नारायणको प्राप्त हुई और वह मुनिश्रेष्ठ परस्पर तुमको धिक्कार है इस प्रकार कहकर दुःखी हुए ।। २७ ।। २८ ।।

वासुदेवं प्रति सदा जग्मतुर्भवनं हरेः । तावागतौ समीक्ष्याह श्रीमतीं भगवान्हरिः ।। २९ ।। मुनि श्रेष्ठौ समायातौ गूढस्वात्मानमत्र वै । तथेत्युक्ता च सा देवी प्रहसंती चकार ह ।। ३० ।।

और वासुदेवके स्थानको गये । उन दोनोंको आया देखकर भगवान्ने श्रीमतीसे कहा ।। २९ ।। दोनों मुनिश्रेष्ठ आते हैं, तू अपनी आत्मा को छिपा ले, यह कहनेपर वह देवी हँसकर रूप छिपाती भई ।। ३० ।।

नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम् । किमिदं कृतवानद्य मम त्वं पर्वतस्य च ।। ३१ ।। त्वमेव नूनं गोविंद कन्यां तां हृतवानसि । तच्छ्रुत्वा पुरुषो विष्णुः पिधाय श्रोत्रमच्युतः ।। ३२ ।।

तब नारदजी प्रणाम कर दामोदर हरिसे कहने लगे हे भगवन् ! आपने मेरा और पर्वतका यह क्या रूप कर दिया ।। ३१ ।। हे गोविन्द ! निश्चयही आपने उस कन्या का हरण किया है ! यह सुनकर पुरुषोत्तम अपने हाथ दोनों कानोंपर धरकर ।। ३२ ।।

पाणिभ्यां प्राह भगवन्भवता किमुदीरितम् । कामवादो न भावोऽयं मुनिवृत्तेरहो किल ।। ३३ ।। एमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः । कर्णमूले मम कथं गोलांगूलमुखं त्विति ।। ३४ ।।

बोले, हे भगवन् ! आपने क्या कहा है, यह कामवादका भाव नहीं हे मुनि ! यह आपकी मुनिवृत्ति है क्या ? ॥३३॥ यह वचन सुन नारदजी भगवान् वासुदेवसे कर्णमूलमें बोले मेरे गोलांगूलमुख कर दिया ॥ ३४ ॥

तदाकर्ण्य महाबुद्धिर्देवो नारायणो हरिः । कर्णमूले तमाहेदं वानरास्यं कृतं मया ॥ ३५ ॥ पर्वतस्य तथा विप्र गोलांगूलमुखं तव । यथा भवांस्तथा सोऽपि प्रार्थयामास निर्जने ॥ ३६ ॥

यह वचन सुन महाबुद्धिमान् नारायण कर्णमूलमें कहने लगे कि, मैंने तुम्हारे गोलांगूलमुख कर दिया था ॥ ३५ ॥ और हे विप्र ! इसी प्रकार पर्वतका वानरका मुख कर दिया था जैसे तुमने एकान्तमें प्रार्थना की थी इसी प्रकार इन्होंने प्रार्थना की थी ॥ ३६ ॥

मामेव भक्तिवशगस्तथास्म्यकरवं मुने । न स्वेच्छया कृतं तद्वां प्रियार्थं नान्यथा त्विति ॥ ३७ ॥ याचते यच्च यश्चैव तच्च तस्य ददाम्यहम् । न दोषोऽत्र गुणो वापि युवयोर्मम वा द्विज ॥ ३८ ॥

हे मुने । दोनोंकी भक्तिमें तत्पर होनेके कारण मैंने ऐसा किया था; मैंने स्वेच्छासे नहीं किया आपकी प्रीतिके निमित्तही ऐसा किया है ॥३७॥ हमारा भक्त जो कुछ याचना करता है वही वस्तु मैं उसको देता हूं ब्राह्मणो ! इसमें मेरा वा तुम्हारा गुण दोष नहीं है ॥ ३८ ॥

पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः । शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरो वचः ॥३९॥ प्रियं भवतोः कृतवान्सत्येनायुधमालभे । नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः ॥ ४० ॥

यही बात पर्वतके पूछनेपर नारायणने कही थी और दोनोंके श्रवण करते दामोदर वचन कहने लगे ॥ ३९ ॥ मैं सत्य तथा आयुधकी सौगन्ध करता हूँ कि आपका प्रिय ही किया है तब धर्मात्मा नारदजी कहने लगे हम दोनोंके मध्यमें ॥ ४० ॥

धनुष्मान्द्विभुजःको नु तां हृत्वा गतवान्किल । तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह नौ मुनिसत्तमौ ॥४१॥ *मायाविनौ महात्मानौ बहवः संति सत्तमौ । तत्र सा श्रीमती देवी हृता केनापि सुव्रतौ ॥ ४२ ॥

* अत्र द्विवचनांतानि सम्बोधनानि ।

धनुष धारण किये दो भुजवाले पुरुष कौन थे जो उसको हरण कर ले गये, यह वचन सुन मुनिश्रेष्ठ उन दोनोंसे बोले ।। ४१ ।। हे महात्माओ ! हे सत्तमो ! संसारमें बहुतसे मायावाले हैं सो उनमें किसीने हरण कर ली होगी ।।४२।।

चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरिति स्थितिः । तस्मान्नाहमतथ्यो वै भवद्भ्यांविदितं हि तत् ।। ४३ ।। इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीतमानसौ । कोऽत्र दोषस्तव विभो नारायण जगत्पते ।। ४४ ।।

और मैं तो चक्रपाणि तथा चार भुजावाला हूं यह स्थिति है सो मैं वहां नहीं हूंगा यह वार्ता आपको विदित ही है ।। ४३ ।। यह कहनेपर वे दोनों प्रणाम कर कहने लगे हे जगत्पते ! इसमें आपका क्या अपराध है ।। ४४ ।।

दौरात्म्यं तु नृपस्यैव मायां हि कृतवानसौ । इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्मान्मुनी नारदपर्वतौ ।। ४५ ।। अंबरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत् । नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ ।। ४६ ।।

यह राजाहीकी दुरात्मता है उसने अवश्य माया की है यह कहकर वहांसे पर्वत और नारद चले ।। ४५ ।। और अम्बरीके निकट जाकर उसको शाप दिया जब कि नारद और हम पर्वत इस स्थानपर आये थे ।। ४६ ।।

आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि । मायायोगेन तस्मात्त्वां *तमोऽज्ञाभिभविष्यति ।।४७।। तेन नात्मानत्यर्थं यथावत्त्वं हि वेत्स्यसि । एवं शापे प्रवृत्ते तु तमोराशि रथोत्थितः ।। ४८ ।।

तब तुमने हमको बुलाकर दुसरेके निमित्त कन्यादान की इस कारण हमारे शापसे तू अज्ञानी होजायगा ।। ४७ ।। अपने आत्माका तुझको यथावत् विचार न रहेगा, इस प्रकार शाप देनेपर महान तमोराशि उपस्थित हुई ।। ४८ ।।

नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोःप्रादुरभूत्क्षणात् । चक्रवित्रासितं घोरं तावुभावभ्यगात्तमः ।। ४९ ।। ततः संत्रस्तसर्वांगौ धावमानौ महामुनी । पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं च दुर्मदम् ।। ५० ।।

जब वह अन्धकार राजाकी ओरको चला उसी समय विष्णुका चक्र प्रगट हुआ तब वह अन्धकार चक्रसे विद्रावित होकर उन दोनोंके प्रति धावमान हुआ ।। ४९ ।। तब सब अंगसे व्याकुल हो वे महामुनि धावमान हुए, पीछे चक्र और उस तमोराशिको देखकर ।। ५० ।।

---

* तमअज्ञेतिच्छेदः ।

कन्यासिद्धिरहो प्राप्तस्त्यावयोरिति वेगितौ । लोकालोकतामनिशं भावमानौ तमोर्ऽदितौ ।। ५१ ।। त्राहि त्राहीति गोविंदं भाषमाणौ भयार्दितौ । विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण जगत्पते ।। ५२ ।।

बोले अहो ! कन्याकी यह सिद्धि हमको प्राप्त हुई, इस प्रकार दिनरात लोकालोक पर्वतके प्रति धावमान हुए ।। ५१ ।।और भयसे कहने लगे हे गोविन्द ! हमारी रक्षा करो ! इस प्रकार जगत्पति नारायण विष्णुके पास जाकर ।।५२ ।।

वासुदेव हृषीकेश पद्म नाभ जनार्दन । त्राह्यावां पुण्डरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम ।। ५३ ।। इत्यूचतुर्वासुदेवं मुनी नारदपर्वतौ । ततो नारायणोऽचिंत्यः श्रीमाञ्छीवत्सलांछनः ।। ५४ ।।

हे जगत्पते ! हे वासुदेव, हृषीकेश, पद्मनाभ, जनार्दन, पुण्डरीकाक्ष, नाथ पुरुषोत्तम ! आप हमारी रक्षा करो ।। ५३ ।। नारद और पर्वत मुनि इस प्रकार वासुदेवसे कहने लगे तब अचिन्त्य नारायण श्रीमान् भक्तवत्सल ।। ५४ ।।

निवार्य चक्रं ध्वांतं च भक्तानुग्रहकाम्यया । अंबरीषश्च मद्भ-*क्तस्तथेमौ मुनिसत्तमौ ।। ५५ ।। अनयोर्नृपस्य च तथा हितं कार्यं मया पुनः । आहूय तौ ततः श्रीमान्गिरा प्रहलादयन्हरिः५६

भक्तोंके ऊपर अनुग्रहकी इच्छासे चक्रको निवारण कर बोले जैसे तुम मेरे भक्त हो इसी प्रकार वह राजा मेरा भक्त है ।। ५५ ।। इन दोनोंका तथा राजाका भी हित मुझको करना है तब भगवान्ने उनको बुलाकर वाणीसे प्रसन्न करते हुए ।। ५६ ।।

उवाच भगवान्विष्णुः श्रूयतामिति मे वचः । क्षमेतां मुनिशार्दूलौ भक्तसंरक्षणाय मे ।। ५७ ।। अपराद्धं च चक्रेण क्षमाशीला हि साधवः । ततस्तौ मुनिशार्दूलौ मायां तस्यावबुध्य च ।।५८।।

कहा आप दोनों हमारे वचन सुनिये हे मुनिश्रेष्ठो भक्तरक्षाके निमित्त जो कुछ कहा है वह क्षमा करिये ।। ५७ ।। यह चक्रका अपराध है साधु क्षमाशील होते हैं सो आप क्षमा करिये तब वे दोनों मुनि उसकी मायाको जानकर ।। ५८ ।।

---

* इति विचायति शेषः ।

ददतुश्च ततः शापं विष्णुमुद्दिश्य कोपनौ । श्रीमतीहरणं विष्णो यत्कृतं छद्मना त्वया ।। ५९ ।। यया मूर्त्या तथैव त्वं जायेथा मधुसूदन । अम्बरीषस्यान्ववाये राज्ञो दशरथस्य हि ।। ६० ।।

क्रोधकर विष्णुको शाप देते हुए बोले हे विष्णो ! जो कि, आपने छलसे श्रीमतीका हरण किया है ।। ५९ ।। हे जनार्दन ! जिस मूर्तिसे आप उत्पन्न हुए हो उसी मूर्तिसे अम्बरीषके कुलमें राजा दशरथके यहां ।। ६० ।।

पुत्रस्त्वं भविता पुत्री श्रीमती धरणी प्रजा । भविष्यति विदेहश्च प्राप्य तां पालयिष्यति ।। ६१ ।। राक्षसापदः कश्चित्तां ते भार्यां हरिष्यति । यतो राक्षसधर्मेण हृता च श्रीमती शुभा ।। ६२ ।।

तुम पुत्ररूपसे जन्म लो और यह श्रीमती धरणीकी पुत्री होगी, और विदेह इसका पालन करेगा ।। ६१ ।। कोई राक्षसोंमें नीच वहां तुम्हारी भार्याको हरण करेगा जिस प्रकार तुमने राक्षस धर्मसे श्रीमतीका हरण किया है ।। ६२ ।।

अतस्ते रक्षसा भार्या हर्तव्या छद्मनाऽच्युत । यथा प्राप्तं महद्दुःखमावाभ्यां श्रीमतीकृते ।। ६३ ।। हाहेति रुदता लक्ष्यं तथा दुःखं च तत्कृते ।। इत्युक्तवन्तौ तौ विप्रौ प्रोवाच मधुसूदनः ।। ६४ ।।

इसी प्रकार छलसे राक्षस तुम्हारी भार्याको हरण करेगा जिस प्रकार हम दोनोंको श्रीमतीके कारण महादुःख प्राप्त हुआ है ।। ६३ ।। इसी प्रकार तुम भी वनमें हाहाकार करते फिरोगे ! उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहने पर जनार्दन कहने लगे ।। ६४ ।।

अम्बरीषस्यान्ववाये भविष्यति महायशाः । श्रीमान्दशरथो नाम भूमिपालोऽतिधार्मिकः ।। ६५ ।। तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम भवाम्यहम् । तत्र मे दक्षिणो बाहुर्भरतो भविता किल ।। ६६ ।।

अम्बरीषके वंशमें अवश्य ही श्रीमान् अधिक धर्मात्मा दशरथ राजा होंगे ।। ६५ ।। उनके यहां बडा पुत्र रामनामवाला मैं हूँगा वह भरतजी मेरी दक्षिण भुजा होंगे ।। ६६ ।।

शत्रुघ्नो वामबाहुश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्वयम् । ऋषिशापो न चैव स्यादन्यथा चक्र गम्यताम् ।। ६७ ।।ऋषिशापतमोराशे यदा रामो भवाम्यहम् । तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना ।। ६८ ।।

शत्रुघ्न बांई भुजा और शेष लक्ष्मणजी होंगे और ऋषिका शाप भी अन्यथा नहीं होगा ॥ ६७ ॥ जिस समय ऋषिके शापरूपी तमोराशिसे मैं रामनाम लूंगा तव तुममेरे पास आओगे इस समय नृपके विना जाओ ॥ ६८ ॥

त्यक्त्वापि च मुनिश्रेष्ठाविति स्म प्राह माधवः । एवमुक्ते तमोनाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै ॥ ६९ ॥ आत्मार्थं संचितं तेन प्रभुणा भक्तरक्षिणा । निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत ॥ ७० ॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठसे त्यक्त हो विस्मित हो माधव बोले और उनके यह कहते ही तत्काल अंधकारका नाश होगया ॥ ६९ ॥ और भक्तोंकी रक्षा करनेवाले प्रभुने अपने निमित्त उसको सञ्चित किया । और निवारण किया नारायणका चक्र यथापूर्व स्थित हुआ ॥ ७० ॥

मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम् । निर्गतौ शोकसंतप्तावूचतुस्तौ परस्परम् ॥ ७१ ॥ अद्यप्रभृति देहांतमावां कन्यापरिग्रहम् । न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी ॥ ७२ ॥

और भयसे मुक्त हुए ऋषि जनार्दनको प्रणाम कर शोकसे संतप्त हो चले और परस्पर कहने लगे ॥ ७१ ॥ आजसे लेकर जन्मपर्यंत हम कन्याको स्वीकार नहीं करेंगे दोनों ऋषियोंने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करी ॥ ७२ ॥

मौनध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ । अम्बरीषोऽपि राजासौ परिपाल्य च मेदिनीम् ॥ ७३ ॥ सभृत्यज्ञातिसंबंधो विष्णुलोकं जगाम वै । मानार्थमंबरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः ॥ ७४ ॥

और मौन ध्यानमें तत्पर होकर यथापूर्वक स्थित होगये और राजा अम्बरीष यथायोग्य पृथ्वीको पालनकर ॥ ७३ ॥ भृत्य ज्ञातियोंके संबन्धियोंके सहित विष्णुलोकको गये । अंबरीष और दोनों मुनियोंके सम्मानके निमित्त ॥ ७४ ॥

रामो दाशरथिर्भूत्वा तमसा लुप्तबुद्धिकः । कदाचित्कार्यवशतः स्मृतिः स्यादात्मनः प्रभोः ॥ ७५ ॥ पूर्णार्थोऽपि महाबाहुरपूर्णार्थ इव प्रभु । अनुग्रहाय भक्तानां प्रभूणामीदृशी गतिः ॥ ७६ ॥

वह दशरथके पुत्र रामचन्द्र होकर तमसे आच्छादित हुए कभी कार्यवशसे उनको अपनी स्मृति होजाती थी ॥ ७५ ॥ वह महाबाहु पूर्ण अर्थ होकर भी अपूर्ण अर्थके समान दीखते थे भक्तोंके अनुग्रहके अर्थही स्वामियोंकी ऐसी गति होती है ॥ ७६ ॥

मायां कृत्वा महेशस्य प्रोत्थिता मानुषी तनुः । तस्मान्माया न कर्तव्या विद्वद्भिर्दोषदर्शिभिः ।। ७७ ।। एतत्ते कथितं सर्वं रामजन्मकथाश्रयम् । अंबरीषस्य माहात्म्यं मायावित्त्वं च वै हरेः ।। ७८ ।।

वह महेशकी मायाके आश्रित हो मानुषी शरीरके प्राप्त हुए इस कारण दोष जाननेवाले महात्माओंको मायाका करना उचित नहीं है ।। ७७ ।। यह रामजन्मकी कथाका सम्पूर्ण आशय तुमसे कहा अम्बरीषका माहात्म्य हरिका मायामें अवतार कहा ।। ७८ ।।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि मायावित्त्वं हरेर्विभोः । मायां विसृज्य पुण्यात्मा विष्णु लोकं स गच्छति ।। ७९ ।। दशरथसुतजन्मकारणं यः पठति शृणोत्यनुमोदते द्विजेन्द्रः ।। व्रजति स भगवद्गृहातिथित्वं नहि शमनस्य भयं कुतश्चिदस्य ।। ८० ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामजन्मोपक्रमश्चतुर्थः सर्गः ।। ४ ।।

जो नारायणका यह चरित्र पढता सुनता है वह पुण्यात्मा माया त्यागकर विष्णुलोकको जाता है ।। ७९ ।। दशरथके पुत्रका जन्मकारण जो पढता सुनता है और अनुमोदन करता है वह नारायणके घरका अतिथि होता है यमका भय उसको नहीं होता है ।। ८० ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रायणे व० आ० अद्भुतोत्तरकाण्डे भाषाटीकायां श्रीरामजन्मोपक्रमश्चतुर्थः सर्गः ।। ४ ।।

पंचम सर्ग

जानकीके जन्म लेनेका कारण कथन

भरद्वाज शृणुष्वाथ सीताजन्मनि कारणम् । पुरा त्रेतायुगे कश्चित्कौशिको नाम वै द्विजः ।। १ ।। वासुदेवपरो नित्यं नामगानरतःसदा । भोजनाशनशय्यासु सदा तद्गतमानसः । उदारचरितं विष्णोर्गायमानः पुनः पुनः ।। २ ।।

हे भरद्वाज ! अब सीताके जन्मका कारण सुनो, त्रेतायुगमें एक कौशिक नाम ब्राह्मण था ।। १ ।। वह सदा वासुदेवपरायण नामगानमें रत भोजन अशन शय्यामें सदा हरिमें मन लगाये रहता था और विष्णुके उदार चरित्रोंका वारंवार गान करता था ।। २ ।।

विष्णुस्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम् । अगायत हरिं तत्र तालवल्गुलयान्वितम् ।। ३ ।। मूर्च्छनामूर्च्छायोगेन श्रुतिमंडलवेदितम् । भक्तियोगसमापन्नो भिक्षामश्नाति तत्र वै ।। ४ ।।

विष्णुके स्थल नारायणके क्षेत्रको प्राप्त होकर मनोहर ताल लयादिसे नारायणके चरित्र गाता ।।३।। मूर्छना मूर्छाके योगसे श्रुति मंडलसे वेदित भक्तियोगको प्राप्त हो भिक्षाका भोजन करता था ।। ४ ।।

तत्रैनं गायमानं च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा । पद्माक्ष इत विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ सदा ।। ५ ।। सकुटुंबो महातेज अश्नन्नन्नं च तस्य वै । कौशिको तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम् ।। ६ ।।

कोई ब्राह्मण इस प्रकारसे इसको गाता देखकर उसको वहुतसा अन्न देता हुआ, इसका नाम पद्माक्ष था ।। ५ ।। वह महातेजस्वी कुटुंबसहित उसका अन्न खाता हुआ प्रसन्नतासे गान करता था ।। ६ ।।

शृण्वन्नास्ते स पद्माक्षः काले काले च भक्तितः । कालयोगेन संप्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च ।।७ ।। सप्तराजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसंभवाः । ज्ञानविद्याधिका शुद्धा वासुदेवपरायणाः ।। ८ ।।

और वह पद्माक्ष समय समय भक्तिपूर्वक उसको श्रवण करता था कुछ समयके उपरान्त वह कौशिकका शिष्य होगया ।। ७ ।। सात क्षत्रिय वैश्य और ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न हुए ज्ञानविद्यामें अधिक शुद्ध वासुदेवपरायण हुए ।। ८ ।

तेषा मपि तथान्नाद्यं पद्माक्षः प्रददौ स्वयम् । शिष्यैश्च सहितो नित्यं कौशिको हृष्टमानसः ।।९।। विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन्यथाविधि । तत्रैव मालवो नाम वैद्यो विष्णुपरायणः ।। १० ।।

पद्माक्ष उनके निमित्त भी अन्नप्रदान करता था शिष्योंसहित कौशिक नित्य प्रसन्न रहता ।। ९ ।। और विष्णुके मंदिरमें नित्य नारायणका विधिपूर्वक गान करता वहाँ एक मालव नाम वैद्य विष्णु भक्तिपरायण था ।। १० ।!

दीपमालां हरेर्नित्यं करोति प्रीतमानसः । मालतीनाम भार्यासीत्तस्य नित्यं प्रतिव्रता ।। ११ ।। गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समंततः । भर्त्रा सहास्ते संप्रीता शृण्वती गानमुत्तमम् ।। १२ ।।

सदैवकाल प्रीतमनसे नारायणके मंदिरमें दीपक बालता, उसकी नित्य पतिव्रता मालतीनाम भार्या थी ।। ११ ।। वह हरिक्षेत्रको सब ओर गोबरसे लीपकर भर्ताके सात गान सुनती प्रसन्न मन रहती थी ।। १२ ।।

कुशस्थलीसमुत्पन्ना ब्राह्मणाः शंसितव्रताः । पंचाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः ।। १३ ।। साधयंतो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः । गानविद्यार्थतत्त्वज्ञाः शृण्वंतो ह्यवसंस्तु ते ।। १४ ।।

कुछ कुशस्थलीके उत्पन्न हुए शोभनव्रतवाले पचास ब्राह्मण नारायणका गान करने आये ।। १३ ।। वे महात्मा कौशिकका कार्य साधन करने वाले थे गानविद्याको वे तत्त्व ज्ञानी सुनते हुए वहां स्थित हुए ।। १४ ।।

ख्यातमासीत्तदा तस्य गानं वै कौशिकस्य च । श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कालिंगो वाक्यमब्रवीत् ।। १५ ।। कौशिकाद्यगणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः । शृणुध्वं च तथा यूयं कुशस्थलजना अपि ।। १६ ।।

इस प्रकार उस कौशिकका गान लोकमें विख्यात होगया राजसभामें कलिगराज यह वचन सुनकर कहने लगा ।। १५ ।। कि, कौशिक अपने गणोंके सहित हमारा गान करे और तुम कुशस्थलीवासी सब ब्राह्मण उसको श्रवण करो ।। १६ ।।

तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्राह राजानं सां त्वयन्गिरा । न जिह्वाग्रे महाराज वाणी च मम सर्वदा ।। १७ ।। हरेरन्यमपींद्रं वा स्तौति नापि न वक्ति च । एवमुक्ते च तच्छिष्या वसिष्ठो गौतमोऽरुणिः ।। १८ ।।

तब कौशिक वाणीसे राजाको सान्त्वन करता हुआ बोला-हे महाराज ! मेरी जिह्वाके आगे वाणी स्फुरायमान नहीं होती है ।। १७ ।। और तो क्या नारायणको छोड इन्द्रकी स्तुतिमें भी मेरी वाणी चलायमान नहीं होती यह कहनेपर उनके शिष्य गौतम अरुणि ।। १८ ।।

सारस्वतस्तथा वैश्यश्चित्रमालस्तथा शिशुः । ऊचुस्तं पार्थिवं तत्त्वं यथा प्राह स कौशिकः ।। १९ ।। श्रीकराश्च तथा प्रोचुः प्रार्थिवं विष्णुतत्पराः । श्रोत्राणीमानि शृण्वंतिहरेरन्यं न पार्थिवम् २०

सारस्वत वैश्य चित्रमाल शिशु इसी कौशिकके वचनोंको राजासे कहते हुये ।। १९ ।। और इसी प्रकार विष्णुभक्त श्रीकर राजासे कहने लगे हे राजन्! हमारे कर्ण एक नारायणके गुणानुवादही सुनते हैं अन्यके नहीं ।। २० ।।

श्रा ते कीर्ति वयं तस्माच्छृणुमो नैव वा स्तुतिम् । तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गीयतामिति चाब्रवीत् ।। २१ ।।स्वभृत्यान्ब्राह्मणा ह्येते कीर्ति शृण्वंति वै यथा । न शृण्वंति कथं तस्माद्गीयमानां समंततः ।।२२।।

इस कारण हम आपकी कीर्ति वा स्तुति नहीं सुन सकते हैं यह सुन राजा रुष्ट हुआ और अपने भृत्योंको गानेको कहा ।। २१ ।। जैसे यह ब्राह्मण अपनी कीर्ति श्रवण करे यह हमारी कीर्ति क्यों नहीं सुनते ।। २२ ।।

एवमुक्तास्ततो भृत्या जगुः पार्थिवसत्तमम् । निरुद्धकर्णा विप्रास्ते गाने वृत्ते सुदुःखिताः ।। २३ ।। काष्ठशंकुभिरन्योन्यं श्रोत्राणि बिभिदुः किल । कौशिकाद्यास्तु तां ज्ञात्वा मनोवृत्तिं नृपस्य वै । २४ ।।

राजाके सेवक राजाज्ञासे गान करने लगे तब उन ब्राह्मणोंने दुःखी हो अपने कान बंद कर लिये ।। २३ ।। इनके कान लोहकीलसे भेदन कर दूं इस प्रकार राजाकी चेष्टा जानकर कौशिकादि ब्राह्मण ।। २४ ।।

निर्बन्धं कुरुते कस्मात्स्वगानेऽसौ नृपः स्थिरम् । इत्युक्त्वा ते सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः स्वकम् ।। २५ ।। ततो राजा सुसंक्रुद्धः स्वदेशात्तान्व्यवासयत् । आदाय वित्तं सर्वेषां ततस्ते जग्मुरुत्तराम् २६

कि, यह राजा क्यों गानेमें हठ करता है अपनी जिह्वा छेदन करते हुए ।। २५ ।। तब राजाने क्रोध कर उनको अपने देशसे निकाल दिया और उन सबका धन ले लिया तब वे उत्तरदिशाको चले गये ।। २६ ।।

दिशामासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिताः । तानागतान्यमो दृष्ट्वा किंकर्तव्यमिति स्म ह ।। २७ ।। विस्मितस्तत्क्षणे विप्र ब्रह्मा प्राह सुराधिपान् । कौशिकादीन्द्विजानद्य वासुदेवपरायणान् ।। २८ ।।

और समयपर कालधर्मसे योजित हुए यमने उनको आता देखकर विचार किया कि, हमको अब क्या कर्त्तव्य है ।। २७ ।। उस समय उनको विस्मित देख ब्रह्माजीने देवाधिपतियोंसे कहा जो कि कौशिकादि ब्राह्मण वासुदेवपरायण थे ।। २८ ।।

गानयोगेन ये नित्यं पूजयंति जनार्दनम् । तानादाय भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ ।। २९ ।। इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुनः पुनः। मालतीति तथा केचित्पद्माक्षीति तथापरे ।। ३० ।।

जो नित्य गानयोगसे जनार्दनकी पूजा करते हैं जो देवत्वकी इच्छा करें तो उनको हमारे पास ले आओ ।। २९ ।। ऐसा कहनेपर हे लोकपाल, हे कौशिक, हे मालती, हे पद्माक्षी ! ऐसा वारंवार कहने लगे ।। ३० ।।

क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा । ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्तार्द्धेन वै सुराः ।। ३१ ।। कौशिकादींस्तथा दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रत्यागम्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ।। ३२ ।।

इस प्रकार उनको सम्बोधन देकर आकाश मार्गसे एक आधे मुहूर्तमात्रमें ब्रह्मलोकको लेगये ।। ३१ ।। लोकपितामह ब्रह्माजी कौशिकादिको देखकर यथायोग्य आगत स्वागतसे उनकी पूजा करते हुए ।। ३२ ।।

ततः कोलाहलश्चाभूदतिगौरवमुल्बणम् । ब्रह्मणा च कृतं दृष्ट्वा देवानां द्विजसत्तम ।। ३३ ।। हिरण्यगर्भो भगवांस्तान्निवार्य सुरोत्तमान् । कौशिकादींस्तदादाय मुनिर्देवैः समावृत्तः ।। ३४ ।।

तथा बड़ा भारी कोलाहल होने लगा, ब्रह्माजीका किया सत्कार देख कर ।। ३३ ।। हिरण्यगर्भ भगवान् सब देवताओंको निवारण कर कौशिकादिको लेकर मुनि देवताओंके साथ ।। ३४ ।।

विष्णुलोकं ययौ शीघ्रं वासुदेव परायणः । तत्र नारायणो देवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः ।। ३५ ।। ज्ञानयोगेश्वरैः सिद्धैर्विष्णुभक्तिपरायणैः । नारायणसमैर्दिव्यै श्चतुर्बाहुधरैः शुभैः ।। ३६ ।।

वह वासुदेव परायण शीघ्र विष्णुलोकको चले गये । वहाँ नारायणदेव श्वेतद्वीपनिवासियोंके साथ ।। ३५ ।। ज्ञानयोगेश्वर सिद्ध और विष्णुभक्ति-परायण तथा नारायणके समान नित्य दिव्य चार भुजा धारण किये ।। ३६ ।।

विष्णुचिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषैः । अष्टाशीतिसहस्रैस्तु सेव्यमानो मनोजवैः ।। ३७ ।। अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः ।। भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समंततः ।। ३८ ।।

शंख चक्र आदि लिये दीप्तिमान् अट्ठासी सहस्र मनोगामी महात्माओंसे सेवित ॥ ३७ ॥ हम और नारद तथा सनकादिक पापरहित और भी नाना प्रकारकी दिव्य स्त्रीजनोंसे सब ओरसे व्याप्त ॥ ३८ ॥

सेव्यमानोऽथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृते ॥ सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे ॥ ३९ ॥ विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः । लोककार्यप्रसक्तानां दत्त्वा दृष्टिं समास्थितः ॥ ४० ॥

और सेव्यमान सहस्र द्वारसे युक्त सहस्र योजनके लम्बे चौडे दिव्य मणियोंसे जटित सुन्दर ॥ ३९ ॥ विमल चित्र विमानोंमें भद्रपीठ आसनके ऊपर लोककार्यमें लगे पुरुषोंपर दृष्टि देकर नारायण स्थित थे ॥ ४० ॥

तस्मिन्कालेऽथ भगवान्कौशिकाद्यैश्च संवृतः ॥ आगम्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥४१॥ ततोऽवलोक्य भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ कौशिकेत्याह संप्रीत्या तान्सर्वांश्च कथाक्रमम् ॥ ४२ ॥

उस समय भगवान् ब्रह्मा कौशिकादिसे युक्त भगवान् गरुडध्वजके समीप आकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥ तब भगवान् नारायण उनको देखकर उन सबसे सम्बोधन देकर सबसे यथाक्रम कहने लगे ॥ ४२ ॥

जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते । ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन्यथोदितम् ॥ ४३ ॥ कौशिकस्य च ये विप्राः साध्यसाधनतत्पराः ॥ हिताय संप्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः ॥ ४४ ॥

सब ओरसे जयघोष और महाआश्चर्य होने लगा और विश्वात्मा कहने लगे हे ब्राह्मण ! यह वृत्तान्त सुनो ॥ ४३ ॥ जो ब्राह्मण कौशिकके साध्य साधनमें तत्पर हैं जो कुशस्थलनिवासी उनके हितमें संवृत हुए हैं ॥ ४४ ॥

मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता गानतत्त्वार्थकोविदाः ॥ अनन्यदेवताभक्ताः साध्या देवा भवंत्विमे॥४५॥मत्समीपे तथा ह्यस्य प्रवेशं देहि सर्वदा ॥ एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः ॥ ४६ ॥

मेरी कीर्तिश्रवणमें युक्त गानतत्त्वके जाननेवाले वे अन्यदेवताभक्त साध्य देव कहलावेंगे ॥ ४५ ॥ और इनका प्रवेश सदा हमारे समीप रहेगा ऐसा कहनेपर फिर माधवने कौशिकसे कहा ॥ ४६ ॥

स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ दिग्बलो नाम वै सदा ।। गणाधिपत्यमापन्नो यत्राह तत्समास्व वै ।।४७।। मालतीमालवं* चेति प्राह दामोदरो वचः ।। मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव ।। ४८ ।।

तुम अपने शिष्योंसहित दिग्बल नामवाले होकर गणाधिपत्यको प्राप्त हो जहां मैं स्थित हूँ वहां सदा निवास करो ।। ४७ ।। और फिर मालतीसहित मालवसे दामोदर कहने लगे, मालव ! तुम अपनी भार्याके सहित मेरे लोकमें ।। ४८ ।।

दिव्यरूपधरः श्रीमाञ्छृण्वन्गानमिहानुगैः ।। आस्व नित्यं यथाकामं यावल्लोका भवंति वै ।। ४९ ।। पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव मानद ।। धनानामीश्वरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ।। ५० ।।

दिव्यरूप धारण किये अनुचरोंके सहित गान श्रवण करते रहो । जबतक यह लोक है तबतक यथायोग्य निवास करो ।। ४९ ।। पद्माक्षसे फिर विष्णु बोले, तुम धनद हो धनपति होकर यथेच्छा विहार करो ।। ५० ।।

ब्रह्माणं च ततः प्राह कौशिकोऽभूद्गणाधिपः । गणाः स्तोष्यंति तं चाशु प्राप्तो मेऽस्ति सलोकताम् ।। ५१ ।। एते च विप्रा नियतं मम भक्ता यशस्विनः । श्रोत्रच्छिद्रं यथाहत्य शंकुभिर्वै परस्परम् ।। ५२ ।।

और फिर ब्रह्माजीसे कहा यह कौशिक गणपति हो दूसरे गण इसको सन्तुष्ट करें और यह मेरी सलोकताको प्राप्त होगा ।। ५१ ।। यह यशस्वी ब्राह्मण मेरे भक्त हैं यह परस्पर शंकुओंसे अपने कानोंके छिद्रोंको ताड़नकर प्रतिज्ञा करते हुए ।। ५२ ।।

श्रोष्यामो नैव चान्यद्वै हरेः कीर्ति विनेति ये । महाव्रतधरा विप्र मम भक्तिपरायणाः ।। ५३ ।। एते प्राप्ताश्च देवत्वं मम सान्निध्यमेव च । मालवो भार्यया सार्धं मत्क्षेत्रं परिगृह्य वै ।। ५४ ।।

नारायणके सिवाय हम दूसरेकी कीर्ति श्रवण नहीं करेंगे इस कारण मेरी भक्तिमें परायण महाव्रतधारी ब्राह्मण ।। ५३ ।। यह देवत्वको और हमारे सन्निकटताको प्राप्त हो और मालव भार्याके सहित मेरे क्षेत्रको ग्रहण कर।।५४।।

* मालतीसहितं मालवम् ।

मानमानादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सततं हि माम् । गानं शृणोति नियतो मत्कीर्तिचरितान्वितम् ।। ५५ ।। तेनासौ प्राप्तवाँल्लोकं मम ब्रह्मन् सनातनम् । पद्माक्षोऽसौ महाभागः कौशिकस्य महात्मनः । ५६

नित्य दानमानादिसे मेरा पूजन कर मेरी कीर्ति चरित्रयुक्त गान श्रवण करके स्थित रहे ।। ५५ ।। इसी कारण इसको हमारे सनातन ब्रह्मलोक प्राप्त हुए हैं, यह महात्मा कौशिकका पद्माक्ष नाम शिष्य ।। ५६ ।।

धनेशत्वमवाप्तोऽसौ मम सान्निध्यमेवच । एवमुक्त्वा हरिस्तत्र समास्ते लोकपूजितः ।।५७।। ततो हरिर्भक्तजनैः समावृतः सुखेन तस्थौ कनकासने शुभे ।। भक्तैकगम्यो निजभक्तलोकान्स लालयन्पाणिसरोरुहेण ।। ५८ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे कौशिकादि-वैकुंठगमनं नाम पंचमः सर्गः ।।५।।

धनेशत्वको प्राप्त हो हमारे निकट निवास करता रहे, यह कहकर समस्त-लोकपूजित हरि ।। ५७ ।। भक्तजनोंके सहित सुन्दर आसनपर स्थित होकर भक्तोंकेही दर्शनयोग्य अपने हस्तकमलसे इनको लालन करते हुए ।। ५८ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये अद्भुतोतरकाण्डे भाषाटीकायां कौशिकादिवैंकुण्ठगमनं नाम पंचमः सर्गः ।। ५ ।।

षष्ठ सर्ग

हरिमित्रोपाख्यान तथा कौशिकादिका वैकुण्ठगमन वर्णन

तस्मिन्क्षणे समारब्धो मधुराक्षरपेशलैः ।। महामहोत्सवस्तत्र कौशिकप्रीतयेऽद्भुतः ।। १ ।। विपंचीगुणतत्त्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः ।। ततस्तच्छ्रवणायालं चेटीकोटिसमावृत्ता ।। २ ।।

उस समय कौशिककी प्रीतिके निमित्त मधुराक्षरोंसे युक्त महामहोत्सव आरंभ हुआ ।। १ ।। विपंचीके गुण और तत्त्वके जाननेवाले वाद्यविद्यामें चतुरोंके गान श्रवण करनेको करोडों दासी आकर प्राप्त हुईं ।। २ ।।

गायमाना समायाता लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः ।। वृता सहस्रकोटी-भिर्वेत्रपाणिभिराशुगैः ।। ३ ।। ब्रह्मादिसुरसंघानां धनं दृष्ट्वा समागमम् ।। चेटीगणाधिपा रुष्टा भुशुंडीपरिघान्विताः ।। ४ ।।

उस समय विष्णुपरिग्रहा लक्ष्मी गान करती हुई अनन्त वेत्रपाणी संयुक्त दासियोंके साथ आई ।। ३ ।। उस समय ब्रह्मादि देवताओंका घना समागम देख भुशुण्डी हाथमें लिये चेटीगणोंके अधिपति रुष्ट हुए ।। ४ ।।

ब्रह्मादींस्तर्जयंत्यस्तान्मुनींश्चापि समन्ततः ।। उत्सार्य दूरं संहृष्टा विष्ठिताः पर्वतोपमाः ।। ५ ।। सर्वे बहिर्विनिर्याताः सार्द्धं वै ब्रह्मणा सुराः ।। युक्तमित्येव भाषन्तः प्रभोरग्रे वयं तु के ।। ६ ।।

वे ब्रह्मा मुनि आदिसे वहां बैठनेका निषेध करने लगे और उनको वहांसे ले जाकर दूर बैठा दिया ।। ५ ।। अर्थात् ब्रह्मादि देवता वहाँसे दूसरे स्थानको प्राप्त कर दिये उन्होंने कह यह युक्त ही है प्रभुके आगे हमारा क्या सामर्थ्य है ।। ६ ।।

तस्थुः प्रांजलयः सर्वे त्रिदशागत मन्यवः ।। तस्मिन्क्षणे समाहूत-स्तुम्बुरुर्मानपूर्वकम् ।। ७ ।। प्रविवेश समीपं वै देव्या देवस्य चैव हि ।। तत्रासीनो यथायोगं नानामूर्च्छाक्षरान्वितम् ।। ८ ।।

इस कारण क्रोधरहित सब देवता हाथ जोड़ स्थित हुए, उस समय मानपूर्वक तुम्वरु गन्धर्वको बुलाया ।। ७ ।। यह देवी और देवके समीपमें प्राप्त हुआ वहां उसके यथायोग्य बैठनसे अनेक मूर्छनादिसे युक्त ।। ८ ।।

जगौ कलपदं हृष्टो विपंचीं चाप्यवादयत् ।। विष्णुना कौशिक-प्रीत्यै प्रत्युक्तो गायकोत्तमः ।। ९ ।।नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैरा-भरणोत्तमैः ।। दिव्यमाल्यैश्च वसनैः पूजितो विष्णुमंदिरात् ।। १० ।।

मनोहर वीणाको बजाने लगा, विष्णुने कौशिककी प्रीतिके निमित्त यह उत्तम गायक निर्धारिक किया ।। ९ ।। नाना रत्नोंसे समायुक्त दिव्य आभरणोंसे व्याप्त दिव्य माला और वस्त्रोंसे पूजित विष्णुके मंदिरसे ।। १० ।।

निर्गतस्तुम्बुरुर्हृष्टो जगाम स यथागतम् ।। ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे मुनयश्च यथागतम् ।। ११ ।। जग्मुर्विष्णुं प्रणम्योच्चैर्जयेति भाषिणस्ततः ।। नारदोऽथ मुनिर्दृष्ट्वा तुंबरोः सत्क्रियां हरेः ।। १२ ।।

प्रसन्न हो तुम्बुरु निकला, और ब्रह्मादि सम्पूर्ण द्वेवता तथा मुनिजन यथा गतिको ।। ११ ।। विष्णुको प्रणाम करके गये और जयजय भाषण करने लगे नारदजी नारायण मंदिरमें तुम्बरुका यह सत्कार देखकर ।। १२ ।।

शोकाविष्टेन मनसा संतप्तहृदयेक्षणः ।। चिन्तामापेदिवांस्तत्र शोकमूर्च्छाकुलांतरः ।। १३ ।। ततः क्रोधेन महता जज्वाल मुनिपुंगवः । लक्ष्मीं शशाप सहसा तद्दासीभिस्तिरस्कृतः ।। १४ ।।

महाशोकित और हृदयमें सन्तप्त हो शोकसे मूर्च्छित हो विचार करने लगे ।। १३ ।। और फिर महाक्रोधसे मुनि प्रज्वलित हो उठे, और उनकी दासियोंसे तिस्कार होनेके कारण सहसा लक्ष्मीको शाप दिया ।। १४ ।।

यदहं राक्षसं भावं गृहीत्वा विष्णु कांतया ।। चेटीभिर्वारितो दूरं वेत्राघातेन ताडितः ।। १५ ।। तस्मात्संजायतां लक्ष्मी रक्षसां गर्भसंभवा ।। यतोऽहं बहिराक्षिप्तश्चेटीभिः सावहेलनम् ।। १६ ।।

जो कि लक्ष्मीने मुझे राक्षसभावसे ग्रहण किया है और चेटियोंसे निवारित कर वेत्राघात कराया है ।। १५ ।। इस कारण यह लक्ष्मी राक्षस गर्भसे उत्पन्न होगी, जो कि, दासियोंने तिरस्कार कर मुझे बाहर निकाल दिया ।। १६ ।।

हेलया राक्षसी च त्वां बहिः क्षेप्स्यति भूतले ।। इत्युक्ते नारदेनाथ चकंपे भुवनत्रयम् ।। १७ ।। हाहाकारं ततश्चक्रुर्देवगंधर्वदानवाः ।। नारदो विललापाथ धिग्धिङ्मामिति च ब्रुवन् ।। १८ ।।

इसी प्रकार तिरस्कार कर राक्षसी तुमको बाहर पृथ्वीपर डालेगी नारदके ऐसा कहनेपर त्रिलोकी कम्पित होगई ।। १७ ।। देव गन्धर्व दानव हाहाकार करने लगे, तब क्रोध शान्त होनेपर विलाप कर नारदजी अपनेको धिक्कार देने लगे ।। १८ ।।

नारायणसमायोगो महालक्ष्मीसमीपतः ।। अहो तुंबुरुणा प्राप्तो धिङ्मां मूढमचेतनम् ।। १९ ।। योऽयं हरेः सन्निकासाद्दूतैर्निर्वासितः कथम् ।। जीवन्यास्यामि कुत्राहं किं मे तुंबुरुणा कृतम् ।। २० ।।

कि, नारायणके और महालक्ष्मीके समीपमें तुम्बुरुके सामने तिरस्कार हुआ मुझे धिक्कार है ।। १९ ।। जो कि नारायणके सन्मुख दूतोंसे निकाला गया अब मैं जीता कहाँ जाऊँ मुझे तुम्बुरुने क्या कर दिया ।। २० ।।

रोदमानो मुहुर्विद्वान्धिङ्मामिति च चिंतयन् ।। ततो नारायणो लक्ष्म्याः शापं श्रुत्वा सुदारुणम् ।। २१ ।। लक्ष्म्या सह हृषीकेश आजगाम यतो मुनिः ।। रमां प्रसाद्य तं विप्रं प्रत्युवाच कृतांजलिः ।२२

वह विद्वान् वारंवार रुदन करते अपनेको धिक्कारते विचारने लगे औ
नारायणने लक्ष्मीका दारुण शाप सुनकर ।। २१ ।। लक्ष्मीके सहित नारदजी
समीप आगमन किया और लक्ष्मी नारदजीको प्रसन्न कर हाथ जोड बोली । २

**यदुक्तं भवता मह्यं तत्तथा न तदन्यथा । तत्र किंचित्प्रार्थयामि
मुने तत्कृपया कुरु ।। २३ ।। आरण्यानां मुनीनां वै स्तोकं स्तोकं च
शोणितम् ।। कलशापूरितं भक्षेद्राक्षसी या च कामतः ।। २४ ।।**

जो अपने मेरे प्रति कहा है वह अन्यथा न होगा, मैं कुछ प्रार्थना करती हूं
आप मुझ पर कृपा करो ।। २३ ।। वनके मुनियोंका थोडा थोडा रुधिर कल
शेमें भरकर प्राप्त हो जो राक्षसी अपनी इच्छासे उसको भक्षण करे ।। २४ ।

**तस्या गर्भे भविष्यामि तच्छोणितसमुद्भवा ।। इत्युक्तं रमया
चिंत्यासंभवान्नो भवेदिति ।। २५ ।। नारदस्तु तथेत्याह अस्याः सर्वं
हि दारुणम् ।। ततो नारायणो देवः प्रोक्तवान्नारदं मुनिम् ।। २६ ।।**

उसीके गर्भसे उस रुधिर द्वारा में उत्पन्न हूं । अव लक्ष्मीने इस प्रकार अप
होनेकी प्रार्थना की ।। २५ ।। तब नारदने कहा यह सब दारुणता तुम्हा
निमित्त होगी तव नारायणने नारदसे कहा ।। २६ ।।

**नाहं दानेन तपसा नेज्यया नापि तीर्थतः ।। संतुष्यामि द्विजश्रेष्ठ
यथा नाम्नां प्रकीर्तनात् ।। २७ ।। गानेन नामगुणयोर्मम सायुज्य
माप्नुयात् ।। निदर्शनं कौशिकोऽत्र गानान्मल्लोकमाप्तवान् ।।२८।।**

मैं दान, तप, इज्या (यज्ञ) तीर्थसे ऐसा प्रसन्न नहीं होता हूं जैसा नाम
कीर्तनसे होता हूं ।। २७ ।। जो मेरे नाम गान करता है वह मेरे सायुज्य लोक
प्राप्त होता है, इसमें उदाहरणरूप कौशिक है जो गानसे मेरे लोकको प्राप्
हुआ है ।। २८ ।।

**मूर्च्छनादियुतं गानं नाम्नामति मम प्रियम् ।। तुंबुरुस्तत्प्रभावे
प्रियस्त्वत्तोपि मे द्विज ।। २९ ।। मूर्च्छनातालयोगेन गानेन त्वं तथ
भव ।। उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने मतिस्तव ।। ३० ।।**

मूर्च्छनादियुक्त तालसे जो मेरे नाम गाता है वह मुझे अतिप्रिय है इसी
प्रभावसे तुम्बुरु तुमसे अधिक प्यारा है ।। २९ ।। मूर्च्छना तालयोग और गान
तुम भी इस प्रकारके हो यदि तुम्हारी गानमें मति है तो जाकर उलूक
देखो ।। ३० ।।

मानसोत्तरशैले तु गानबंधुरिति स्मृतः ।। तद्गच्छ शीघ्रं शैलेंद्रं गानवांस्त्वं भविष्यसि ।। ३१ ।। इत्युक्तो विस्मयाविष्टो नारदो वाग्विदां वरः ।। मानसोत्तरशैले तु गानबंधुं जगाम वै ।। ३२ ।।

वह मानसके उत्तर पर्वतपर गानबंधु नामसे विख्यात है उसके पास जानेसे तुम गानविद्यायुक्त हो जाओगे ।। ३१ ।।श्रेष्ठ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ नारदजी यह कहने पर मानसके उत्तर और गानबंधुके समीपमें गये ।। ३२ ।।

गंधर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः ।। समासीनास्तु परितो गानबंधुश्च मध्यतः ।।३३।। गानशिक्षासमापन्नाः शिक्षिता स्तेन पक्षिणा ।। स्निग्धकंठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः ।। ३४ ।।

गंधर्व किन्नर यक्ष अप्सराओंके समूह उसके चारों ओर थे और गान बंधु मध्यमें स्थित था ।। ३३ ।। गान शिक्षासे युक्त उसने अनेक पक्षियोंको भी कर दिया था, स्निग्ध कंठवाले अनेक पक्षी वहां स्थित थे ।। ३४ ।।

ततो नारदमालोक्य गानबंधुरुवाच ह ।। प्रणिपत्य यथा न्याय्यं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ।। ३५ ।। किमर्थं भगवन्नत्र चागतोऽसि महद्युते ।। किं कार्यं हि महाब्रह्मन्ब्रूहि किं करवाणि ते ।। ३६ ।।

तब नारदजीको आता देख गानबंधु कहने लगा और नम्रतासे प्रणाम कर पूजन करता हुआ ।। ३५ ।। हे महाकान्तिमान ! आप किस कारणसे यहा आकर प्राप्त हुए हो, हे महाब्रह्मन् ! कहिये आपका क्या कार्य है उसके करनेमें देर न करूं ।। ३६ ।।

तच्छ्रुत्वा नारदो धीमान्प्रत्युवाच सपक्षिणम् ।। उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम् ।। ३७ ।। मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि तच्च भूतं महाद्भुतम् ।। वैकुण्ठनगरेब्रह्मन्नारायणसमीपगम् ।। ३८ ।।

यह सुन बुद्धिमान् नारद पक्षिराजसे कहने लगे हे महाप्राज्ञ उलूकेन्द्र ! आप सब यथा योग्य श्रवण कीजिये ।। ३७ ।। मैं अपना महाद्भुत वृत्तान्त कहता हूं कि, वैकुण्ठनगरमें नारायणके समीपमें ।। ३८ ।।

मां विनिर्धूय संदृष्टं समाहूय च तुंबुरुम् ।। लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरशृणोद्गानमुत्तमम् ।।३९।। ब्रह्मादयो वयं सर्वे निरस्ताः स्थानतश्च्युताः ।। कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम् ।। ४० ।।

मुझे तिरस्कार कर तुम्बुरुकी स्थिती की गई है और लक्ष्मीसहित विष्णु उसका गान श्रवण किया है ।।३९।। ब्रह्मादि हम सब देवता स्थानसे बाह किये गये और कौशिकादि बैठे रहे गानयोगसे नारायणके समीप रहे ।। ४० ।

समाराध्यैव संप्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम् ।। तेनाहमतिदुःखात यत्तप्तं तु मया तपः ।। ४१ ।। यद्दत्तं यद्धुतं चैव यच्चापि श्रुतमे हि ।। यदधीतं च गानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।। ४२ ।।

और उनकी आराधनासे उनको गाणपत्य पदकी प्राप्ति हुई है, उससे बडा दुःखी हूं, जो कुछ मैंने तप किया है ।। ४१ ।। जो दिया, हवन किया औ सुना है, जो पढा है वह गानविद्याकी सोलहवीं कलाभी नहीं है ।। ४२ ।।

विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गानयोगस्य वै ततः ।। पश्चात्तापं च दृष्ट्वा मां च नारायणोऽब्रवीत् ।। ४३ ।। उलूकं गच्छ देवर्षे गानबन मतिर्यदि ।। गाने च वर्तते ब्रह्मंस्तत्र त्वं गानमाप्स्यसि ।। ४४ ।

जिस कारण कि विष्णुके माहात्म्यसे युक्त गानयोगकी अधिकाई दे पश्चात्ताप करते मुझसे नारायण कहने लगे ।। ४३ ।। हे देवर्षि ! यदि गान आपको इच्छा है तो उलूकके पास जाइये वह गानका आचार्य है वहां तू गान प्राप्ति करेगा ।। ४४ ।।

इत्यहंप्रेषितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः ।। किं करिष्यामि शिष्यो तव मां पालयाव्यय ।।४५।। नारदं प्राह धर्मात्मा गानबन्धुर्मह यशाः ।। शृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते ।। ४६ ।।

इस प्रकार मैं उनका भेजा तुम्हारे पास आया हूं हे अविनाशी ! मैं तुम्हा किकर हूँ, तुम मेरा पालन करो ।। ४५ ।। महायशस्वी गानबन्धु नारदजी बोले हे नारद ! जो हमारा पूर्वजन्मका वृत्तांत है वह सुनो ।। ४६ ।।

अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम् ।। भुवनेशइति ख्यात राजाभूद्धार्मिकः पुरा ।। ४७ ।। अश्वमेधसहस्रैश्च वाजपेया युते च ।। अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरिष्टवान्भूरिदक्षिणैः ।। ४८ ।।

जो अति आश्चर्यसंयुक्त और पापका हरनेवाला है पहले एक धर्मात राजा था ।। ४७ ।। सहस्र अश्वमेध और दशसहस्र वाजपेय और भी अने बडी बडी दक्षिणवाले यज्ञ ।। ४८ ।।

गवां कोट्यर्बुदं चैव सुवर्णस्य तथैव च ।। वाससां रथनागानां कन्या श्वानां तथैव च ।। ४९ ।। दत्त्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं पर्यपालयत् ।। न्यवारयत्स्वके राज्ये गानयोगेन केशवम् ।। ५० ।।

गौ करोडों, अरबों सुवर्ण, वस्त्र, रथ, नाग कन्या अश्व ।। ४९ ।। राजाने ब्राह्मणोंको दिये पृथ्वीका पालन करता रहा औ गानयोगसे केशवको निवारण किया ।। ५० ।।

अन्यं वा गानयोगेन गायेद्यदि स मे भवेत् ।। वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वेदैरीड्यः परः पुमान् ।। ५१ ।। न ब्राह्मणैश्च गातव्यं वह-द्भिर्वेदमुत्तमम् ।। गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायंतु मां सदा ।। ५२ ।।

कि, जो कोई गान करेगा वह मेरे हाथसे वध्य होगा कारण कि, नारायणकी स्तुति वेदवचनोंसे होती है ।। ५१ ।। वेदधारी ब्राह्मणोंको गान नहीं करना चाहिये और गानयोगसे सर्वत्र स्त्रियें मुझको ज्ञान करें ।। ५२ ।।

सूतमागधसंघाश्च गीतं मे कारयन्तु वै ।। इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत् ।। ५३ ।। तस्य राज्ञः पुराभ्याशे हरिमित्र इति स्मृतः ।। ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वंद्वविवर्जितः ।। ५४ ।।

सूत मागधोंके सहित स्त्रीजन मेरे निमित्त गान करें इस प्रकार कहकर वह महातेजस्वी राज्य करने लगा ।। ५३ ।। उस राजाके समीपमें एक हरिमित्र था, जो ब्राह्मण विष्णुभक्त और सब द्वन्द्वसे वर्जित था ।। ५४ ।।

नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमाञ्च हरेः शुभाम् ।। समभ्यर्च्य यथा-शास्त्रं घृतदध्युत्तरं बहु ।। ५५ ।। मिष्टान्नं पायसं दत्त्वा हरेरावेद्य धूपकम् ।। प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः ।। ५६ ।।

नदीके किनारे जाकर नारायणकी प्रतिमाको शास्त्रानुसार अर्चनकर शास्त्रपूर्वक घृत दही आदिके सहित ।। ५५ ।। मिष्टान्न और खीर धूपादि नारायणको निवेदन कर यथायोग्य प्रणाम कर उसमें मन लगाय ।। ५६ ।।

अगायत हरिं तत्र तालवीणालयान्वितम् ।। अतीव स्नेहसंयुक्त-स्तद्गीतेनान्तरात्मना ।। ५७ ।। ततो राज्ञः समादेशाद्भटास्तस्य समागताः ।। तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समन्ततः ।। ५८ ।।

ताल वीणा लयके सहित नारायणका गुण गाता था, और अपने मनं महान् स्नेह करता था ।। ५७ ।। तब राजाकी आज्ञासे योधा वहां आये उन्हों वह पूजादिकी सामग्री सब नष्ट कर दी ।। ५८ ।।

ब्राह्मणं च गृहीत्वा ते राज्ञे सम्यङन्यवेदयन् ।। ततो राज द्विजश्रेष्ठ परिभर्त्स्य सुदुर्मनाः ।। ५९ ।। राज्यान्निर्वासयामास हृत्व सर्वधनादिकम् ।। प्रतिमां च हरेश्चैव नापश्यत्स यदृच्छया ।। ६० ।

और ब्राह्मको पकडकर राजाके पास ले गये, तब राजाने दुःखी हो उ ब्राह्मणको बहुत झिडका ।। ५९ ।। और सब धनादि लेकर उसे राज्यसे निका दिया और कभी उसने अपनी इच्छासे नारायणकी मूर्तिका दर्शन न किया । ६०।

ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान् ।। लोकान्तरमनुप्राप्य उलूकं देहमाश्रितः ।। ६१ ।। सर्वत्र गच्छमानोपि भक्ष्यं किंचिन्न चाप्तवान् ।। क्षुधार्तश्च सदा खिन्नो यममाह सुदुःखितः ६२ ।।

फिर कुछ समयके उपरान्त वह कालधर्मको प्राप्त हुआ लोकान्तरको प्राप्त होकर उलूक हो गया ।। ६१ ।। सर्वत्र जानेपरभी उसको कहीं कुछ भक्ष्य प्राप्त न हुआ और क्षुधासे खिन्न हो यमराजसे उसने कहा ।। ६२ ।।

क्षुत्पीडा वर्तते देव दुर्गतस्य सदा मम ।। मया पापं कृतं किंवा किं करिष्यामि वै यम ।। ६३ ।। ततस्तं धर्मराट् प्राह धर्माधर्मप्रदर्शकः ।। त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानतो नृप ।। ६४ ।।

हे देव ! मुझे बडी क्षुधा है और सदा मेरी दुर्गति है हे यम ! मैंने क्या पाप किये हैं और अब मैं क्या करूं ।। ६३ ।। तब धर्माधर्मके दिखानेवाले यमराज उससे बोले, हे राजन् ! अज्ञानसे तुमने बडे पाप किये हैं ।। ६४ ।

हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेवपरायणम् ।। हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु ।। ६५ ।। तेन पापेन संप्राप्तः क्षुद्बोधस्त्वां सदा नृप ।। दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप ।। ६६ ।।

हरिमित्र वासुदेवपरायण हरिमित्रमें आपने पापाचरण किया है ।। ६५ ।। हे राजन् उस पापसे आपको सदा क्षुधाकी प्राप्ति हुई है हे राजन् ! इसी कारण तुम्हारे दानयज्ञादि सब नष्ट होगये हैं ।। ६६ ।।

गीतनाटचलयोपेतं गायमानं सदा हरिम् ।। हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम् ।। ६७ ।। उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ ।। तव भृत्याः समाहृत्य पापं चक्रुस्तवाज्ञया ।। ६८ ।।

हरेः कीर्ति विना चान्यब्राह्मणेन नृपोत्तम ।। न गेययोगे मंतव्यं तस्मात्पापं त्वया कृतम् ।। ६९ ।। नष्टं ते स्वर्गलोकाद्यंगच्छ पर्वतकोटरम् ।। ।। पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं ते खाद नित्यं निकृत्य वै ।। ७० ।।

गीत नाटच लयसे युक्त गायन करते हुए हरिमित्रका तुमने संपूर्ण धन हरण कर लिया ।। ६७ ।। जो कुछ उपहारादि था वह सब वासुदेवके समीपसे भृत्योंने लेकर फेंक दिया ।। ६८ ।। हे राजन् ! हरिकी कीर्तिके विना ब्राह्मणको गानयोग न करना चाहिये, यह पाप तुमने किया है ।। ६९ ।। तुम्हारे स्वर्गलोकादि इसी कर्मसे नष्ट होगये, तुम पर्वतकी कोटरमें जाकर अपनी देहकोही नोच नोचके प्रतिदिन भक्षण करो ।। ७० ।।

तस्मिन्क्षीणे त्विमं देहं खाद नित्यं क्षुधान्वितः ।। महानिरयसंस्थस्त्वं यावन्मन्वंतरं भवेत् ।। ७१ ।। मन्वंतरे ततोऽतीते भूम्यां त्वं श्वा भविष्यसि ।। ततःकालेन कियता मानुष्यमनुलप्स्यसे ।। ७२ ।।

क्षुधासे व्याकुल होकर तू नित्य इसी देहको भक्षण कर, इस प्रकार एक मन्वन्तर-तक महानरकमें निवास कर ।। ७१ ।। मन्वतर वीतनेसे भूमिमें तू कुत्ता होगा, फिर बहुत कालके उपरान्त मनुष्यशरीरको प्राप्त होगा ।। ७२ ।।

एमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवान्तरधीयत ।। सोऽहं नारद भूपालः पुरेदानीमुलूकताम् ।। ७३ ।। लब्धवान्कर्मदोषेण हरिमित्रकृतेन वै ।। ततो मानसशैलेऽहं कोटरे ह्यवसं मुने ।। ७४ ।।

यह कह यमराज वहीं अन्तर्धान होगये हे नारद ! सो वह राजा मैं उलूकताको प्राप्त हुआ हूं ।। ७३ ।। हरिमित्रके साथ क्षुद्रता करनेसे यह दोष मुझको प्राप्त हुआ है हे मुने ! तब मैं इस मानसकी कोटरामें निवास करने लगा ।। ७४ ।।

पूर्वो मृतकदेहो मे भक्षणाय ह्युपस्थितः ।। क्षुधान्वितोऽत्तंदेहं खादितुं ह्युपचक्रमे ।।७५।। तत्क्षणं दैवयोगेन हरिमित्रो महायशाः ।। विमानेनार्कवर्णेन स्तूयमानोऽप्सरोगणैः ७६ ।।

और पूर्व मृतक शरीर मेरे भक्षणके निमित उपस्थित हुआ, मैं क्षुधायुक्त हो उस देहके खानेकी इच्छा करने लगा उसी क्षण दैवयोगसे महायशस्वी हरिमित्र सूर्यके समान प्रकाशमान विमानपर स्थिर अप्सराओंसे स्तुतिको प्राप्त हो ।। ७५ ।। ७६ ।।

विष्णुदूतैः परिवृतः पथा तेनागतो नृप ।। विष्णुभक्तो महातेजा पथि मां दृष्टवान्प्रभु ।।७७।। भुवनेशशरीरंतद्ददर्शोलूक सन्निधौ।। पृष्टोऽहं तेन दयया शवसन्निधिसंस्थितः ।। ७८ ।।

विष्णुके दूतोंसे युक्त उस मार्गसे जाता था; उस महातेजस्वी विष्णु भक्तने मार्गमें राजाको देखा ।। ७७ ।। जब उलूकके निकट भुवनेशका शरीर देखा तब शवके निकट खडे होकर उसने दयासे पूछा ।। ७८ ।।

भुवनेशस्य नृपतेर्देहोऽयं दृश्यते खग ।। उलूक त्वं च किमिदं खादितुं चोद्यतो भवान् ।। ७९ ।। तच्छ्रुत्वा हरिमित्राय प्रणम्य विनयान्वितः ।। कृतांजलिपुटो भूत्वा बहुमानपुरः सरम् ।। ८० ।।

हे पक्षी ! यह तो राजा भुवनेशका शरीर दीखता है और उलूक तू उसको कैसे भक्षण करता है ।। ७९ ।। यह वचन सुन वह हरिमित्रको प्रणामकर विनयसे सहित हाथ जोड वहुत मानसे ।। ८० ।।

तत्सर्वं पूर्ववृत्तांतं नारदास्मै न्ववेदयम् ।। पुरापराधं त्वयि यत्तस्य पाकोऽयमागतः ८१ ।। यावन्मन्वन्तरं विप्रखादिष्यामि शवं त्विमम् ।। ततः श्वाहं भविष्यामि भविष्वामि ततो नरः ।।८२।।

पहला सब वृत्तांत उससे वर्णन करता हुआ बोला पहले जो तुम्हारा अपराध किया था उसका यह फल हमको प्राप्त हुआ है ।। ८१ ।। हे विप्र ! एक मन्वन्तर-तक इस शवको मुझे खाना पडेगा फिर कुत्ता होकर पीछे मनुष्यकी योनि मिलेगी ।। ८२ ।।

एतदाकर्ण्य करुणो हरिमित्रामहायशाः ।। कृपया, मां समाचष्ट श्रृणुलूक महीपते ।। ८३ ।। मयि त्वयापराधं यत्तत्सर्वं क्षान्तवानहम् ।। शवो ह्यदर्शनं यातु न च श्वा त्वं भविष्यसि ।। ८४ ।।

महायशस्वी दयालू हरिमित्र यह वचन श्रवणकर कृपापूर्वक मुझे बोले, हे महाबुद्धिमान् उलूक ! तू सुन ।। ८३ ।। जो कुछ तैंने मेरा अपराध किया है वह मैंने सब क्षमा करदिया, यह शव अन्तर्धान होजाय और तुझको कुत्तेकी योनि नहीं मिलेगी ।। ८४ ।।

त्वामद्य गानयोगश्च प्राप्नोतु मत्प्रसादतः ।। स्तुहि विष्णुं च गानेन जिह्वा स्पष्टा च जायताम् ।। ८५ ।। सुरविद्याधराणां च गंधर्वाप्सरसां तथा । गानाचार्यो भवेथास्त्वं भक्ष्यभोज्यसमन्वितः ८६

मेरे प्रसादसे तुझको गानयोगकी प्राप्ति होगी और विष्णुके गानयोग तेरी जिह्वा स्तुतिके योग्य स्पष्ट होजायगी ॥ ८५ ॥ देवता विद्याधर गन्धर्व अप्सराओंका तू गान विद्याका आचार्य होगा और अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य आकर प्राप्त होंगे ॥ ८६ ॥

ततः कतिपयाहोभिः सर्वं भद्रं भविष्यति ॥ हरिमित्रवचस्तच्च विष्णुदूतोपबृंहितम् ॥ ८७ ॥ सर्वं निरयसंज्ञंमेक्षणादेव व्यनाशयत् ॥ प्रकृत्या विष्णुभक्तानामीदृशो करुणा द्विज ॥ ८८ ॥

फिर कुछ दिनोंमें सम्पूर्ण मंगल हो जायगा, जब हरिमित्रने विष्णु दूतोंके समक्ष यह वचन कहे ॥८७॥ तो क्षणमात्रमें सब नरककी सामग्री नष्ट होगई, हे नारद ! विष्णुभक्तोंकी स्वभावसेही यह प्रकृति होती है ॥ ८८ ॥

कृतापराधलोकानामपि दुखं व्यपोहति ॥ अमृतस्यन्दि वचन-मुक्त्वा स प्रययौ हरिम् ॥ ८९ ॥ सर्वं ते कथितं येन गानाचार्योहमु-त्तमः ॥ प्राप्स्यामि हरिमेतेन हरिमित्रप्रसादतः ॥ ९० ॥

नारदैतदनुर्वर्णितं मयापूर्वजन्मचरितं महाद्भुतम् ॥ यः शृणोति हरिमेत्य चेतसा स प्रयाति भवनं गदाभृतः ॥ ९१ ॥

इत्यार्षे श्रीम. वाल्मी. आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकांडे हरिमित्रोपाख्यानं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

कि, अपराधी जनोंके भी दुःख दूर करते हैं इस प्रकार वह अमृतके भरे वचनोंको कहकर हरिके लोकको गया ॥ ८९ ॥वह सब आपसे कहा जिस कारण मैं गानाचार्यपदको प्राप्त हुआ हूं, हरिमित्रके प्रसादसे मैं नारायणको प्राप्त हूंगा ॥ ९० ॥ हे नारद ! यह आपसे पूर्वजन्मका महा अद्भुत चरित्र वर्णन किया, जो चित्त लगाकर इसे सुनते हैं वह नारायणके लोकको प्राप्त होते हैं ॥ ९१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये भाषाटीकायां अद्भुतोत्तर काण्डे हरिमित्रोपाख्यानं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

नारदजीको गानविद्याका प्राप्त होना

गानबंधुः पुनः प्राह नारदं मुनिसत्तमम् ।। एते किन्नरसंघा वै विद्याधराप्सरसां गणाः ।। १ ।। गानाचार्यमुलूकं मां गानशिक्षार्थमागताः ।। तपसा नैव शक्त्या वा गान विद्या तपोधन ।। २ ।।

फिर गानबन्धु नारदजीसे कहने लगा; यह किन्नर विद्याधर अप्सराओंके समूह ।। १ ।। गानाचार्य मेरे पास शिक्षाके निमित्त आते हैं हे तपोधन ! गानविद्या तपसे नहीं आती है ।। २ ।।

तस्माच्छ्रमणे युक्तश्च मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि ।। एवमुक्तो मुनिस्तस्मै प्रणिपत्य जगौ यथा ।। ३ ।। तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य च ।। उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः ।। ४ ।।

इससे श्रम कर तुम हमसे गान विद्या सीखो, तब मुनिराज प्रणाम कर जैसे गान करने लगे ।। ३ ।। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह सुनो ! वासुदेवको नमस्कार कर नारदजी उलूकके वचन मान ।। ४ ।।

शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षत ।। गानबंधुस्तमाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना ।। ५ ।। स्त्रीसंगमे तथा गीतेक्षुतेऽन्वाख्यानसंगमे । व्यवहारे च धान्यानामर्थानां च तथैव च ।। ६ ।।

शिक्षाक्रमसे संयुक्त गान सीखने लगे तब गानवन्धुने कहा नारदजी ! अब लाज त्याग देनी चाहिये ।। ५ ।। स्त्रीसंगम, गीत, छीक अन्वाख्यान, धान्यका व्यवहार, धनके व्यवहारमें ।। ६ ।।

आयेव्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत् ।। न कुण्ठितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः ।। ७ ।। हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि ।। निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं च कथंचन ।। ८ ।।

आय और व्ययमें कभी लज्जा नहीं करनी चाहिये, कुण्ठित गूढ अत्यन्त ढके स्थानमें ।। ७ ।। तथा हाथ फैलाकर सकोडकर बहुत मुख फैलाकर जिह्वा मीचकर कभी गाना न चाहिये ।। ८ ।।

स्वांगं निरीक्षमाणेन परमप्रेक्षता तथा ।। न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टिः कथंचन ।। ९ ।। हासो भयं क्षुधा कंपः शोकोऽन्यस्य स्मृतिस्तृषा ।। नैतानि सप्तरूपाणि गानयोगे महामते ।। १० ।।

केवल अपने अंगको देखते ऊपरको भुजा उठाकर वा केवल ऊपरको दृष्टि देकर ।। ९ ।। हँसते हुए डरमें भूखमें कंपा शोक दूसरेकी यादमें प्यासेमें इन प्रसंगोंमें गान करना उचित नहीं है ।। १० ।।

नैकहस्तेन शस्येत तालसंघट्टनं मुने ।। क्षुधार्तेन भयार्तेन तृषार्तेन तथैव च ।। ११ ।। गानयोगो न कर्तव्यो नांधकारे कथंचन ।। एवमादीनि योग्यानि कर्तव्यानि महामुने ।। १२ ।।

एक हाथसे ताल देकर गान करना उचित नहीं है, भूखे प्यासे घवराये हुएको ।। ११ ।। किसी प्रकारसे गान योग्य कर्त्तव्य नहीं है; इसी प्रकार अंधकारमें भी न गावे,हे.महामुने ! इस प्रकारसे योग्य अयोग्य कर्त्तव्य विचारे १२।।

एवमुक्तः स भगवान्नारदो विधिरक्षणे ।। अशिक्षत तथा गीतं दिव्यवर्षसहस्रकम् ।। १३ ।। ततः समस्तसंपन्नो गीतप्रस्तावकादिषु ।। विपंच्यादिषु संपन्नः सर्वस्वरवि भागवित् ।। १४ ।।

जब इस प्रकारसे कहा तब दिव्य सहस्र वर्षतक नारदजी गीत सीखते रहे ।। १३ ।। तब गीतकी प्रस्तावना आदिके पारगामी हुए वीणाके सब स्वरोंके ज्ञान हुए ।। १४ ।।

अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ।। स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः ।। १५ ।। ततो गंधर्वसंघाश्च किन्नराणां तथा गणाः ।। मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्तास्तु तेऽभवन् ।। १६ ।।

छियालीस सहस्र ४६००० स्वरभेदोंको नारदजीने भली प्रकारसे जान लिया ।। १५ ।। तथा गंधर्व और किन्नरोंके समूह मुनिके संगमें परम प्रीतिको प्राप्त हुए ।। १६ ।।

गानबंधुं मुनिः प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम् ।। त्वां समासाद्य संपन्नं त्वं हि गीतविशारदः ।। १७ ।। ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमवाप्यं करोमि ते ।। गानबंधुस्ततः प्राह नारदं मुनि पुंगवम् ।। १८ ।।

तब गानबंधुसे नारदजीने कहा, अब मैं तुमको प्राप्त हो उत्तम गानयोगको प्राप्त हुआ तुम सम्पन्न और गीतविशारद हो ।। १७ ।। हे उलूकराज ! अब मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं ? तब गानबन्धुने नारदजीसे कहा ।। १८ ।।

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवः स्युश्चतुर्दश ।। ततस्त्रैलोक्यसंप्लावो भविष्यति महामुने ।। १९ ।। तावन्मे स्याद्यशोभागस्तावन्मे परमं शुभम् ।। मनसाध्यापितं मे स्याद्दाक्षिण्यान्मुनिसत्तमः ।। २० ।।

हे भगवन् ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु बीत जाते हैं उस समय त्रिलोकी नष्ट हो जायगी ।। १९ ।। तवतक मेरा उत्तम यश वना रहे, हे मुनिश्रेष्ठ ! मनसे ही मुझको चतुरताकी प्राप्ति हो जाय ।। २० ।।

उलूकं प्राह देवर्षिः सर्वं तेऽस्तु मनोगतम् ।। अतीते कल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि ।। २१ ।। गुणगानादच्युतस्य सायुज्यं तस्य लप्स्यसे ।। स्वस्ति तेस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रसीद मे ।। २२ ।।

देवर्षिने उलूकसे कहा, जो तुम्हारी इच्छा है, वह सब होजायगा, एक कल्प बीत जानेपर तू गरुड होगा ।। २१ ।। और नारायणके गुण गान करनेके कारण उनकी सायुज्यताको प्राप्त होगा हे महाप्राज्ञ ! आपका मंगल हो मैं जाता हूं तुम प्रसन्न रहो ।। २२ ।।

एवमुक्त्वा ययौ विप्रो जेतुं तुंबुरुमुत्तमम् ।। तुंबुरोश्च गृहाभ्याशे ददर्श विकृताकृतीन् ।। २३ ।। कृत्तबाहूरुपादांश्च कृतनासाक्षिवक्षसः ।। कृतोत्तमांगांगुलींश्च छिन्नभिन्नकलेवरान् ।। २४ ।।

यह कह नारदजी तुम्बुरुके जीतनेको गये, तब तुम्बेरुके घरके निकट विकृत .आकारवाले ।। २३ ।। हाथ जंघा पैर कटे नासिका वक्षस्थल कटे, छिन्न शिर, कोई अंगुलीसे छिन्न कोई भिन्न कलेवर ।। २४ ।।

पुंसः स्त्रियश्च विकृतान्ददर्शायुतशो बहून् ।। नारदेन च ते प्रोक्ताः के यूयं कृतविग्रहाः ।। २५ ।। नारदं प्रोचुरपि ते त्वया कृतांगका वयम् ।। वयं रागाश्च रागिण्योगानेन भिन्नसंभिना ।। २६ ।।

ऐसी सहस्रों स्त्रियोंको नारदजीने देखकर उनसे पूछा तुम्हारे अंग किसने नष्ट करदिये ।। २५ ।। यह सुन उन्होंने नारदजीसे कहा, आपनेही हमारी यह दशा की है, हम राग रागिनी हैं जिस समय आप भिन्न सन्धानसे ।। २६ ।।

भवता गीयते यहि तर्ह्यवस्थेदृशी हि नः ।। पुनस्तुंबुरुगानेन च्छिन्नभिन्नप्ररोहणम् ।। २७ ।। तुंबुरुर्जीवयत्येष त्वं मारयसि नारद ।। तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा श्रुत्वा च विस्मयान्वितः ।। २८ ।।

गान करते हो तबही हमारी यह दशा होजाती है फिर जब तुम्बुरु गान करते हैं तब यह हमारे छिन्न भिन्न शरीर ।। २७ ।। तुम्बुरु गन्धर्वद्वारा जीवित होते हैं और हे नारद ! तुम मारते हो, यह देखकर नारदजी बडे आश्चर्यको प्राप्त हुए ।। २८ ।।

धिग्धिगुक्त्वा जगामाथ नारदोऽपि जनार्दनम् ।। श्वेतद्वीपे स भगवान्नारदं प्राह माधवः ।।२९।। गानबंधौ च यद्गानं न चैतेनासि पारगः ।। तुंबुरोः सदृशो नासि गानेगानेन नारद ।। ३० ।।

और अपने आपको धिक्कार देकर श्रीकृष्णके पास गये, तब श्वेतद्वीपमें भगवान्‌ने नारदजीसे कहा ।। २९ ।। कि गानबन्धुसे गाना सीखकर गान-विद्याके पारगामी नहीं हुए हो हे नारद ! गानविद्यामें अभी तुम तुम्बुरुके समान नहीं हुए हो ।। ३० ।।

मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे ।। द्वापरांते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः ।। ३१ ।। देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णनाम्ना महामुने ।। तदानीं मां समागम्य स्मारयैतद्यथातथम् ।। ३२ ।।

जब वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें युगमें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें मैं अवतार लूंगा ।। ३१ ।। देवकीवसुदेवसे जन्म लेनेसे कृष्ण मेरा नाम होगा उस समय तुम आकर हमें इस बातका स्मरण कराना ।। ३२ ।।

तत्र त्वां गानसम्पन्नं करिष्यामि महाव्रत ।। तुंबुरोश्च समं चैव तथातिशयसंयुतम् ।।३३।। तावत्कालं यथायोगं देवगंधर्वयोनिषु ।। शिक्ष त्वं हि यथान्यायमित्युक्त्वांतरधीयत ।। ३४ ।।

हे सुव्रत ! उस समय मैं तुमको गानसम्पन्न कर दूंगा और तुम्बरुसे भी अधिक करदूंगा ।। ३३ ।। तबतक तुम यथायोग्य देवगन्धर्वकी योनिमें इसकी यथायोग्य शिक्षा करो, यह कह भगवान् अन्तर्धान होगये ।। ३४ ।।

ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादन तत्परः ।। देवर्षिर्देवसंकाशः सर्वाभरणभूषितः ।। ३५ ।। तपसां निधिरत्यर्थं वासुदेवपरायणः ।। स्कंधे विपंचीमाधाय सर्वलोकांश्चचार सः ।। ३६ ।।

तब मुनि भगवान्‌को प्रणाम कर वीणा बजानेमें तत्पर हुए देवताओंके समान सम्पूर्ण आभरणोंसे भूषित ।। ३५ ।। तपोनिधि अत्यन्त वासुदेवपरायण कंधेके ऊपर वीणा धरे सब लोकोंमें विचरते थे ।। ३६ ।।

वारुणं याम्यमाग्नेयमैंद्रं कौबेरमेव च ।। वायव्यं च तथैशानं संशंश प्राप्य धर्मवित् ।। ३७ ।। गायमानो हरिं सम्यग्वीणा वादविचक्षण: ।। गंधर्वाप्सिरसां संघै: पूज्यमानस्ततस्तत: ।। ३८ ।। ब्रह्मलोकं समासाद्य कस्मिश्चित्कालपर्यये ।। हाहा हूहूश्च गंधर्वौ गीतवाद्यविशारदौ ।। ३९ ।। ब्रह्मणो गायकौ दिव्यौ नित्यं गंधर्वसत्तमौ ।। तत्र ताभ्यां समासाद्य गायमानो हरिं विभुम् ।। ४० ।।

वरुण यम अग्नि इन्द्र कुबेर वायु तथा शान दिशामें यह धर्मात्मा संदेहको प्राप्त हो ।। ३७ ।। वीणा बजाकर नारायणके गुणानुवाद गाते यक्ष और गंधर्व अप्सराओंसे पूजित होने लगे ।। ३८ ।। ब्रह्मलोकको प्राप्त हो कुछ दिन उपरान्त वहां जो गीतवाद्यमें विशारद हाहा हूहूनामक गन्धर्व थे ।। ३९ ।। अर्थात् गंधर्व नित्य ब्रह्माजीके गान करनेवाले हैं उनके साथ मिलकर नारायणके निमित्त गान करते हुए ।। ४० ।।

ब्रह्मणा च महातेजा: पूजितो मुनिसत्तम: ।। तं प्रणम्य महात्मानं सर्वलोकपितामहम् ।। ४१ ।। चचार च यथाकामं सर्वलोकेषु नारद: ।। पुन: कालेन महता गृहं प्राप्य च तुम्बुरो: ।। ४२ ।।

और महातेजस्वी ब्रह्माजीसे पूजित होकर उन सर्वलोकके पितामह ब्रह्माजीको प्रणाम कर ।।४१।। सब लोकमें यथेच्छ विचरण करने लगे बहुत कालके उपरान्त तुम्बुरुके घरमें प्राप्त हो ।। ४२ ।।

वीणामादाय तत्रस्थस्तत्रस्थैरप्यलक्षित: ।। सुरकन्याश्च तत्रस्था: षड्जाद्या: सहधैवता: ।। ४३ ।। व्रीडितो भगवान्दृष्ट्वा निर्गतश्च स सत्वरम् ।। शिक्षयामास बहुशस्तत्र तत्र महामुनि: ।। ४४ ।।

अन्योंसे अलक्षित हो वीणा लेकर चले वहां वह षड्ज धैवत आदि देवकन्या स्थित थीं ।। ४३ ।। उनको देखकर लज्जित हो नारदजी वहांसे चले गये और जहां तहां मुनिने बहुत शिक्षा दी ।। ४४ ।।

कालेऽतीते ततो विष्णुरवतीर्णो जगन्मय: ।। देवक्यां वसुदेवस्य यादवोऽसौ महाद्युति: ।। ४५ ।। सप्तस्वराङ्गना द्रष्टुं गानविद्याविशारद: ।। ययौ रैवतके कृष्ण प्रणिपत्य महामुनि[1] ।। ४६ ।।

---

१ नारद:

बहुत, समय बीतनेपर जगत्प्रभु विष्णुका अवतार हुआ, देवकीमें वसुदेवके घर जगत्पति अवतार लेते हुए ।। ४५ ।। सात स्वर और उनकी अंगनाओंके देखनेको यह गानविद्यामें विशारद रैवतक पर्वतपर श्रीकृष्णको प्रणाम करने गये ।। ४६ ।।

व्यज्ञापयदशेषं तच्छ्वेतद्वीपे त्वया पुरा ।। नारायणेन कथितं गानयोगार्थमुत्तमम् ।। ४७ ।। तच्छ्रुत्वा प्रहसन्कृष्णः प्राह जांबवतीं मुदा ।। एनं मुनिवरं भद्रे शिक्षयस्व यथाविधि ।। ४८ ।।

और उस श्वेतद्वीपकी वार्ताको श्रवण कराया कि, नारायणरूपसे आपने गानयोगकी वार्ता कही थी ।। ४७ ।। यह सुन श्रीकृष्णने हँसकर जांबवतीसे कहा हे भद्रे ! यथायोग्य इन मुनिश्रेष्ठको शिक्षा दो ।। ४८ ।।

वीणागानसमायोगे तथेत्याह च सा पतिम् । प्रहसंती यथायोगं शिक्षयामास तं मुनिम् ।। ४९ ।। ततः संवत्सरे पूर्णे नारदं प्राह केशवः । सत्याः समीपमागच्छ शिक्षस्व तथा पुनः ।। ५० ।।

वीणागानका योग सिखाओ, जांबवतीने स्वीकार कर हँसते हँसते यथायोग्य नारदजीको शिक्षा देनी प्रारंभ की ।। ४९ ।। फिर संवत्सर पूर्ण होजानेपर केशवने नारदजीसे कहा अब सत्याके समीप जाकर सीखो ।। ५० ।।

तथेत्युक्त्वा सत्यभामां प्रणिपत्य ययौ मुनिः । तया स शिक्षितो विद्वान्पूर्णे संवत्सरे ततः ।। ५१ ।। वासुदेवनियुक्तोऽसौ रुक्मिण्याः सदनं गतः । अंगनाभिस्तत्रत्याभिर्दासीभिर्मुनिसत्तमः ।। ५२ ।।

बहुत अच्छा यह कह मुनि सत्याको प्रणाम करनेको गये उसने एक वर्षतक नारदजीको शिक्षा दी ।। ५१ ।। फिर श्रीकृष्णकी आज्ञासे नारदजी रुक्मिणीके भवनमें गये वहां बहुतसी श्रेष्ठ दासी विद्यमान थीं ।। ५२ ।।

उक्तोऽसौ गायमानोऽपि न स्वरं वेत्सि वै मुने । ततः श्रमेण महता यावत्संवत्सरद्वयम् ।।५३।। शिक्षितोऽसौ तदा देव्या रुक्मिण्याधिजगौ मुनिः । न तु स्वरांगनाः प्राप तंत्रीयोगे महामुनिः ।। ५४ ।।

जब वह गाना सिखाने लगीं तो नारद जीको उनके स्वरका ज्ञानभी तो नहीं होता था तब बडे परिश्रमसे दो वर्षतक सिखाती रही ।। ५३ ।। और रुक्मिणीके सिखाये नारदजी गाने लगे परन्तु देवाङ्गनाओंके तन्त्रीयोगको प्राप्त न हुए ।। ५४ ।।

आहूय कृष्णो भगवान्स्वयमेव महामुनिम् । अशिक्षदमेयात्मा गानयोगमनुत्तमम् ।। ५५ ।। कृष्णदत्तेन गानेन तस्यायाताः स्वरांगनाः । ब्रह्मानन्दः समभवन्नारदस्य च चेतसि ।। ५६ ।।

तब श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं ही महामुनिको बुलाकर वह अविनाशी गानयोग सिखाने लगे ।। ५५ ।। तब कृष्णके गाना सिखानेपर सुरांगना आकर प्राप्त हुई और नारदजीके चितमें ब्रह्मानंदकी प्राप्ति हुई ।। ५६ ।।

ततो द्वेषादयो दोषाः सर्वे अस्तं गता द्विज । ईर्ष्या च तुंबुरौ यासीन्नारदस्य च सा गता ।। ५७ ।। ततो ननर्त देवर्षिः प्रणिपत्य जनार्दनम् । उवाच च हृषीकेशः सर्वज्ञस्त्वं महामुने ।। ५८ ।।

तब नारदजीके द्वेषादि दोष सब अस्त होगये और तुम्बुरुके प्रति जो ईर्षा थी वह भी जाती रही ।। ५७ ।। तब नारायणको प्रणाम कर देवर्षि नृत्य करने लगे और श्रीकृष्णने कहा नारद ! अब तुम सर्वज्ञ हुए ।। ५८ ।।

प्राचीनगानयोगेन गायस्व मम सन्निधौ । एतत्ते प्रार्थितं प्राप्तं मम लोके तथैव च ।। ५९ ।। नित्यं तुम्बुरुणा सार्द्धं गायस्व च यथातथम् । एवमुक्तो मुनिस्तत्र यथायोगं चचार सः ।। ६० ।।

मेरे निकट प्राचीन गानयोगसे गाओ यह मैंने आपसे अपने लोककी प्राप्ति कही है ।। ५९ ।। नित्य आप तुंबुरुके साथ गान करिये यह सुनकर मुनि त्रिलोकीमें सञ्चरण करने लगा ।। ६० ।।

तथा संपूजयत्कृष्णं रुद्रं भुवन नायकम् । तदा जगौ हरेस्तत्र नियोगाच्छंकरालये ।। ६१ ।। रुक्मिण्या सत्यया सार्द्धं जांबवत्या महामुनिः । कृष्णेन च द्विजश्रेष्ठ श्रुतिजातिविशारदः ।। ६२ ।।

और रुद्रभवनके नायकका पूजनकर इस नारायणकी आज्ञासे वह शंकरके स्थानमें गानको गये ।। ६१ ।। रुक्मिणी, सत्या, जांबवती और श्रीकृष्णजीके साथमें महामुनि गान करने लगे ।। ६२ ।।

एवं ते मुनिशार्दूल प्रोक्तो गीतक्रमो मया । ब्राह्मणो वासुदेवाख्यं गायमानोऽनिशं द्विज ।। ६३ ।। हरेः सायुज्यमाप्नोति सर्वयज्ञफलं लभेत् । अन्यथा नरकं गच्छेद्गायमानोऽन्यदेव हि ।। ६४ ।।

यह आपसे गीतका वर्णन किया ब्राह्मण वासुदेव नामको रातदिन गान करता हुआ ।। ६३ ।। हरिका गान करनेसे सायुज्य और सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है दूसरेकी कीर्ति गान करनेसे नरक होता है ।। ६४ ।।

कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवपरायणः । गायञ्छृण्वंस्तमाप्नोति तस्माच्छ्रेष्ठः प्रियंवदः ।। ६५ ।। कथितमिदमपूर्वं जानकीजन्मपूर्वं श्रुति-सुखमतिगुह्यं स्नेहतस्तेऽतिवाह्यम् । कलुष कुलविपक्षं भव्य-दानैकदक्षं नृभिर विरतवंद्यं सर्वदेवाभिनंद्यम् ।। ६६ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकांडे नारदगान प्राप्तिवर्णनं सप्तमः सर्गः ।। ७ ।।

मन वचन कर्मसे वासुदेवपरायण हो गाना श्रवण करनेसे उस पदकी प्राप्ति होती है, इस कारण वह प्रियंवद और श्रेष्ठ है ।। ६५ ।। आपसे यह अपूर्व जानकीजन्मका कारण कहा यह कर्णसुखद अतिगुह्य है आपके स्नेहसे वर्णन किया है, पापका नाश करनेवाला कल्याण देनेमें एकही चतुर वैरागियोंको सुखदायक और सब देवताओंको आनन्द देनेवाला है ।। ६६ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामा णे वा. आ. अद्भुतोत्तरकाण्डे पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत भाषाटीकायां नारदगानप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ।। ७ ।।

अष्टम सर्ग

सीताजीका जन्मवर्णन

यथा सा शोणितोद्भूता राक्षसीगर्भ संभवा । यथा भूमितलोत्पन्ना जानकी च यथा हि सा ।। १ ।। सीता तच्छृणु विप्रेंद्र वर्णयामि तवा-नघ । दशास्यो रावणो नाम तपस्तप्तुं मनो दधे ।। २ ।।

और जिस प्रकार लक्ष्मी रुधिरसे राक्षसीके गर्भद्वारा उत्पन्न होकर फिर भूमितलमें प्राप्त हुई सो कथा सुनो ।। १ ।। हे विप्रेन्द्र ! वह कथा मैं आपसे वर्णन करता हूं सुनो—जिस समय दशमुख रावणने तप करनेकी इच्छा की । २ ।

त्रैलोक्यस्याधिपत्याय अजरामरणाय च ।। बहुवर्षं तपस्तप्त्वा ज्वलनार्कसमोऽज्वलत् ।।३।। तत्तेजसा जगत्सर्वं दह्यमानं यदाभवत् । तमुवाच तदा ब्रह्मा समागत्य सुरैर्वृतः ।। ४ ।।

कि, मैं त्रिलोकीका अधिपति अजर और अमर हो जाऊं, तब बहुत वर्षोंतक तप करके प्रकाशमान अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा ।। ३ ।। जब उसके तेजसे सब जगत् दग्ध होने लगा तब देवताओंके सहित ब्रह्माजी आकर उससे कहने लगे ।। ४ ।।

पौलस्त्य विरमाद्य त्वं तपसो मम वाक्यतः । तपसोग्रेण महता लोका भस्मीकृता इव ।। ५ ।। वरं ददामि ते वत्स यत्ते मनसि वर्तते । तपोधन लभस्वाद्य वरदान्मत्त ईप्सितम् ।। ६ ।।

हे रावण ! अब तुम तपसे विरामको प्राप्त हो तुम्हारे तपसे संपूर्ण लोक भस्म हुएके समान हैं ।। ५ ।। हे वत्स ! जो तुम्हारे मनमें इच्छा है वह वर तुमको दूंगा तुम मुझसे इच्छित वरको प्राप्त होगे ।। ६ ।।

न्यवारयत चक्षूंषि सूर्यबिंबावलोकनात् । प्रणिप्रत्यजगन्नाथं वरं वव्रे च रावणः ।। ७ ।। देहि सर्वामरत्वं मे वरदोऽसि यदि प्रभुः । तदाकर्ण्य वचो ब्रह्मा पुनः प्राह स रावणम् ।। ८ ।।

अब तुम सूर्यके बिंबके अवलोकनसे नेत्रोंको निवारण करो, तब ब्रह्माजीको प्रणाम कर रावण वर मांगने लगा ।। ७ ।। हे प्रभु ! यदि वरदान देते हो तो मुझे सबसे अमर कर दीजिये, यह वचन सुनकर ब्रह्माजी फिर रावणसे बोले ८ ।

नहि सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे । ततः स रावणः प्राह कूट वादी हि राक्षसः ।। ९ ।। न सुरा नासुरा यक्षाः पिशाचोरगराक्षसाः । विद्याधराः किन्नरा वा तथैवाप्सरसां गणाः ।। १० ।।

कि, कोई सबसे अमर नहीं होसकता, तुम दूसरा वर मांगो, तब यह कूटवादी राक्षस बोला ।। ९ ।। सुर असुर यक्ष पिशाच राक्षस उरग विद्याधर किन्नर अप्सराओंके गण ।। १० ।।

न हन्युर्मां कथं चित्ते देहि मे वरमुत्तमम् । अन्यच्च ते वृणे ब्रह्मंस्तच्छृणुष्व पितामह ।। ११ ।। आत्मनो दुहिता मोहादत्यर्थं प्रार्थिता भवेत् ।। तदा मृत्युर्मम भवेद्यदि कन्या न कांक्षति ।। १२ ।।

मुझे किसी प्रकार मार न सकें यही उत्तम वर दीजिये; हे ब्रह्माजी ! और जो वर माँगते हैं वह भी आप श्रवण कीजिये ।। ११ ।। जब मैं अज्ञानसेही अपनी कन्याकेही स्वीकारकी इच्छा करूँ तब मेरी मृत्यु हो ।। १२ ।।

तथेत्युक्त्वा जगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ।। नराञ्जाजीगणद्रक्षो मत्वा तांस्तृणवद्द्विज ।। १३ ।। ब्रह्मदत्तवरो राजा रावणोवरदर्पितः ।। त्रैलोक्यजयसर्वस्वं प्राप्तवान्बाहुवीर्यतः ।। १४ ।।

वहुत अच्छा यह कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये मनुष्योंको तृणके समान मानकर ब्रह्माजीसे मनुष्योंका अवैध्यत्व नहीं मांगा ।। १३ ।। ब्रह्माजीके वरदानसे मत्त हुआ रावण वडे पराक्रमसे त्रिलोकीके जय सर्वस्वको प्राप्त हुआ ।। १४ ।।

एकदा रावणो राजा दंडकारण्यमागतः ।। तदर्षीनग्निकल्पांश्च दृष्ट्वा मनस्यचिंतयत् ।। १५ ।। एतान जित्वा हि कथं त्रिलोकीजयभागहम् ।। एषां वधेन च श्रेयो न पश्यामि महात्मनाम् ।। १६ ।।

एक समय राजा रावण दण्डकारण्यमें प्राप्त हुआ वहांके अग्निके समान कान्तिमान् ऋषियोंको देखकर विचार करने लगा ।। १५ ।। विना इनके जीते कैसे मैं त्रिलोकीका जीतनेवाला हो सकता हूं और इन महात्माओंके मारनेसे भी मैं मंगल नहीं देखता हूं ।। १६ ।।

दुरात्मा स विचिंत्यैतत्प्राह तान्मुनिपुंगवान् ।। अहं सर्वस्य जगतः शास्ताः च जयभागहम् ।। १७ ।। भवतां जयमाकांक्षे जयं दत्त द्विजर्षभाः ।। इत्युक्त्वा स शराग्रेण क्षताच्छोणितमंगतः ।। १८ ।।

यह विचार कर वह दुरात्मा उन मुनियोंसे कहने लगा मैं सब जगत्का शास्ता और जयभागी हूं ।। १७ ।। हे द्विजश्रेष्ठ ! आपके जय करनेकी इच्छा करता हूं; हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! मुझे जय दो यह कह बाणके अग्रभागको चुभाय उनके शरीरसे रुधिर ।। १८ ।।

बलादाकृष्य तेषां वै कलशेऽस्थापयत्प्रभुः ।। तत्र गृत्समदो नाम शतपुत्रपिता द्विजः ।। १९ ।। दुहित्रर्थे भार्यया स प्रार्थितो भगवान् मुनिः । लक्ष्मीर्मे दुहिता भूयादित्यसौ कलशे विभुः ।। २० ।।

वलपूर्वक निकालकर एक कलशमें स्थापन करता हुआ, उनमें एक गृत्समद ब्राह्मण सौ पुत्रका पिता था ।। १९ ।। उसने भार्यासहित भगवानसे एक कन्याकी प्रार्थना की थी कि, लक्ष्मी मेरी कन्या होजाय इस प्रकार वह कलशमें ।। २० ।।

दुग्धं चाहरहस्तत्र कुशाग्रेण समंत्रतः ॥ स्थापयत्येष नियत स्तदर्हानिर्ययौ वनम् ॥ २१ ॥ तद्दिने दैवयोगेन कलशे तत्र रावणः ॥ मुनीनां शोणितं स्थाप्य गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ २२ ॥

कुशाग्रभागसे दुग्धकी स्थिति करता हुआ और कलशमें दूध रखकर वह बनको चला गया ॥ २१ ॥ दैवयोगसे रावणने उस दिन उसी कलशमें ब्राह्मणों-का रुधिर भरा और घरको लेगया ॥ २२ ॥

भार्यां मंदोदरीं प्राह कलशं रक्ष सुंदरि ॥ विषादप्यधिकं विद्धि शोणितं कलशे स्थितम् ॥ २३ ॥ न देयं नापि वा भक्ष्यं मुनीनां शोणितं त्विदम् ॥ त्रैलोक्यजयलाभेन रावणो लोकरावणः ॥ २४ ॥

और अपनी भार्या मंदोदरीसे कहा हे सुन्दरी ! इस कलशको अच्छी प्रकारसे रक्षा कर; जो रुधिर इस कलशमें स्थित है उसको विषसे भी तीक्ष्ण जान ॥ २३ ॥ यह मुनियोंका रुधिर न किसीको देना चाहियें न भक्षण करना चाहिये, लोकोंका रुवानेवाला रावण त्रिलोकीके जयलाभसे ॥ २४ ॥

देवदानवयक्षाणां गंधर्वाणां च कन्यकाः ॥ आहृत्य रमयामास मंदरे सह्यपर्वते ॥ २५ ॥ हिमवन्मेरुविंध्याद्रौ रमणीयवने तथा ॥ मंदोदरी तथा दृष्ट्वा पतिं सा हि मनस्विनी ॥ २६ ॥

देव दानव यक्ष और गन्धर्वोंकी कन्या लाकर मन्दर पर्वतपर और सह्यपर्वत-पर रमता था ॥ २५ ॥ हिमालयमें रमणीय विंध्याचलमें विहार करने लगा, तब इस प्रकार मंदोदरी अपने पतिको देखकर ॥ २६ ॥

आत्मानं गर्हयामास भर्तुः स्नेहमपश्यती । धिग्जीवितं हि नारीणां यौवनं कुलमेव च ॥ २७ ॥ वंचिताः पतिना याः स्युस्तस्मान्मे मरणं वरम् ॥ पुरा रावणसंदिष्टं शोणितं क्ष्वेडतोऽधिकम् ॥ २८ ॥

भर्ताका स्नेह औरोंमें देखकर अपनी निन्दा करने लगी कि, स्त्रियोंके जीवन और कुलको धिक्कार है ॥ २७ ॥ पतिसे वंचित होकर मेरा मरनाही अच्छा है पहले जो रावने कहा कि, यह रुधिर तीक्ष्ण है ॥ २८ ॥

पपौ मरणमाकांक्ष्य पतिना वंचिता सती । लक्ष्मीशरणदुग्धेन मिश्रिताच्छोणितादभूत् ॥ २९ ॥ सद्यो रावणकांताया गर्भो ज्वलन-सन्निभः । ततो विस्मयमापन्ना सा हि मंदोदरी शुभाः ॥ ३० ॥

मंदोदरीने पतिकी वंचनासे उसको पान कर लिया वह लक्ष्मीके आश्रयवाले दूधसे मिला हुआ रुधिर था ॥ २९ ॥ उसके पान करतेही मन्दोदरीको अग्निके समान प्रकाशमान गर्भ स्थित होगया, व्रह देख मन्दोदरी बडी विस्मित हुई ॥ ३० ॥

पीतं विषाधिकं रक्तंगर्भस्तेनाभवन्मम । इति संचितयामास भर्ता विप्रेषितो मम ॥ ३१ ॥ कामिनीभिः क्रीडतं स कामी भर्ता हि रावणः । संवत्सरमिमं भर्त्रा सह मे वसतिर्नहि ॥ ३२ ॥

विषसेभी अधिक तीक्ष्ण रक्तपान करनेसे किस प्रकार मेरे गर्भ स्थित होगया और स्वामी मेरे निकट नहीं है, इस प्रकार बडी चिन्ता हुई ॥ ३१ ॥ मेरे स्वामी तो कामिनियोंके साथ क्रीडा करते हैं, एकवर्षसे भर्ताके साथ समागम हुआ नहीं है ॥ ३२ ॥

किं वक्तव्यं मया साध्व्या गर्भिण्या भर्तृसंसदि । चिंतया दग्धगात्रीव तीर्थसेवनछद्मना ॥ ३३ ॥ विमानवरमारुह्य कुरुक्षेत्रं जगाम सा । तत्र गर्भं विनिष्कृष्य निचखान भुवस्तले ॥ ३४ ॥

तब भर्ताके सामने मैं गर्भवती क्या कहूँगी, यह चिता कर वह तीर्थसेवाके बहानेसे ॥ ३३ ॥ विमानपर चढ़ कुरुक्षेत्रको गई, वहां गर्भपात कर पृथ्वीमें गाडदिया ॥ ३४ ॥

स्नात्वा सरस्वतीतोये पुनरागात्स्वमालयम् । न चोदितं तत्कस्मैजिद्रहः कार्यं सुगोपितम् ॥ ३५ ॥ कालेन कियता ब्रह्मञ्जनकर्षिर्महात्मनाः । कुरुक्षेत्रं समासाद्य जांगले *यज्ञमावहन् ॥ ३६ ॥

सरस्वतीजलमें स्नान कर फिर अपने घर चली आई, यह कार्य किसीसे भी नहीं कहा ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् कुछ समय उपरान्त महात्मा जनकजीने कुरुक्षेत्रमें आकर कुरुजांगलमें यज्ञ किया ॥ ३६ ॥

स्वर्णलांगलमादाय यज्ञभूमिं चखान सः । स्वर्णलांगलसीतांतः कन्यका प्रोत्थिताभवत् ॥ ३७ ॥ पुष्पवृष्टिश्च महती पपात कन्यकोपरि । तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं राजा विस्मयमा गतः ॥ ३८ ॥

और सोनेका हल लेकर यज्ञभूमि खोदी, उस पृथ्वीके खोदते समय एक कन्या प्रगट हुई ॥ ३७ ॥ उस समय कन्याके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई, यह आश्चर्य देख राजाको बडा विस्मय हुआ ॥ ३८ ॥

---

* कुर्वन

कर्तव्ये मूढतामाप ततः खेऽभूत्सर स्वती । राजन्गृहाण कन्यां त्वं पालयैनां महाप्रभाम् ।। ३९ ।। ज्वलनार्कसमां दिव्यां महत्कार्यं तवालये । भविष्यति महाभागा च क्षेमं जगतोऽनया ।। ४० ।।

और कर्तव्यहीन होगये, तब आकाशसे सरस्वती (वाणी) हुई, हे राजन् ! तुम इसको ग्रहण कर कन्याके समान पालन करो ।। ३९ ।। इस अग्निके समान कान्तिमतीका तुम्हारे स्थानमें वडा कार्य होगा हे महाभाग ! इसके द्वारा जगत्का महामंगल होगा ।। ४० ।।

यज्ञ संपाद्यतां राजन्नायं विघ्नस्तवानघ । नामास्याः किल सीतेति सीताया उत्थिता यतः ।। ४१ ।। कल्पयैना दुहितरमित्युक्त्वावाक् तिरोहिता । तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान्राजा यज्ञं कृत्वा महाधनम् ।।४२।।

हे राजन् ! अपना यज्ञसंपादन करो यह विघ्न नहीं होगा, सीतासे उठनेसे इनका नाम सीता होगा ।। ४१ ।। इसे अपनी कन्या मानो, यह कह वाणि तिरोहित हुई; यह सुन प्रसन्न हो राजाने महाधनयुक्त यज्ञ सम्पादन किया ।। ४२ ।।

जगाम सीतामादाय महर्षिभ्यश्च तां ददौ ।। एतत्ते कथितं विप्र सीताजन्मैककारणम् । श्रुत्वैतत्सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ४३ जनकदुहितृजन्म श्रावयित्वा तु श्रुत्वा न पुनरिह जन्म प्राप्नुयात्पुण्यवांश्च । दशरथसुतकांता तस्य गेहं कदाचिद्विसृजति नहि सर्वैः पातकैर्मुच्यते च ।। ४४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीसीतोत्पत्तिर्नामाष्टमः सर्गः ।। ८ ।।

और सीताको लेकर महर्षियोंको दिया, यह आपसे जानकीके जन्मका कारण कहा, इसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ।। ४३ ।। जानकीके जन्मकी कथा सुननेसे फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता है, प्राणी पुण्यवान् होता है, लक्ष्मी उसके घरसे नहीं जाती, तथा वह सब पापोंसे छूट जाता है ।४४।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वा. आ. भाषाटीकायां सीतोत्पत्तिर्नामाष्टमः सर्गः ।। ८ ।।

नवम सर्ग

परशुरामको रामका विश्वरूप दिखाना

रामः सीतापरिणयं कृत्वा दशरथादिभिः ।। भ्रातृभिश्चापि सहितो भार्यया सह सीतया ।। १ ।। अयोध्यां गन्तुमारेभे नानावाद्य-पुरः सरम् । आर्चीकनंदनो रामो भार्गवो रेणुकासुतः ।। २ ।।

रामचन्द्र दशरथजीके सन्मुख जानकीका पाणीग्रहण करके भ्राताओंके सहित तथा जानकीके सहित ।। १ ।। विविध प्रकारके बाजे आदिके सहित अयोध्या जानेकी इच्छा करने लगे, मार्गमें आर्चीकनंदन परशुराम ।। २ ।।

तस्य दशरथेः श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः । विवाहकौतुकं वीरः पथा तेन समागतम् ।।३।। धनुरादाय तद्दिव्यं क्षत्रियाणां निबर्हणम् । जिज्ञास्यमानो रामस्य वीर्यं दाशरथेस्तथा ।। ४ ।।

उन रामचन्द्र महापराक्रमीका अद्भुत विवाहकौतुक श्रवण कर मार्गमें उनसे मिले ।। ३ ।। वह क्षत्रियनाशक दिव्य धनुष लेकर रामचन्द्रके बल जाननेकी इच्छासे आये ।। ४ ।।

सतमभ्यागतं दृष्ट्वा उद्यतास्त्रमवस्थितम् । प्रहसन्निव विप्रेंद्रं रामो वचनमब्रवीत् ।। ५ ।। स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ किं कार्यं करवाणि ते । प्रोवाच भार्गवो वाक्यं स्वागतेन किमस्ति मे ।। ६ ।।

उन शास्त्र उठाये परशुरामजीको खड़े देख कर हँसते हुए रामचन्द्र उन विप्रेन्द्रसे बोले ।। ५ ।। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप भले आये कहिये मैं आपका क्या प्रिय करूं, तब भार्गव कहने लगे, हमें स्वागतसे क्या प्रयोजन है ।। ६ ।।

क्षत्रकालं हि राजेंद्र धनुरेतन्ममास्ति हि।।समारोपय यत्नेन यदि शक्तोसि राघव ।। ७ ।। इत्युक्तस्त्वाह भगवंस्त्वं नाधिक्षेप्तुमर्हसि । नेहि नह्यधर्मो धर्मः क्षत्रियाणां द्विजातिषु ।। ८ ।।

हे राजेन्द्र ! यह मेरे हाथमें क्षत्रियोंको कालस्वरूप धनुष है, यदि समर्थ हो तो आप इसे चढाइये ।। ७ ।। यह सुनकर परशुरामसे रामचन्द्र बोले

१ द्विजातिषु ब्राह्मणेषु विषये बाहुवीर्येण कत्थनरूपोऽधर्मो धर्मः क्षत्रियाणां नहि नहि, इक्ष्वाकूणां तु विशेषेण नहीत्वन्वयः ।

भगवन् ! आप हमपर आक्षेप न करिये क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंके साथ अपना बल प्रकाश करना उचित नहीं है ।। ८ ।।

इक्ष्वाकूणां विशेषेण बाहुवीर्येण कत्थनम् । तमेवं वादिनं तत्र रामो वचनमब्रवीत् ।। ९ ।। अलं वागुपदेशेन धनुरायच्छ राघव ।। ततो जग्राह रोषेण क्षत्रियर्षभसूदनम् ।। १० ।।

और विशेषकर इक्ष्वाकुवंशी ब्राह्मणोंके सन्मुख अपने बाहुवीर्यका कथन नहीं करते हैं ।। ९ ।। यह सुनकर परशुराम बोले हे राम ! वाणीका उपदेश मत करो, धंनुष चढाओ; तब क्रोध कर रामचन्द्रने धनुष ग्रहण किया ।। १० ।।

रामो दाशरथिर्दिव्यं हस्ताद्रामस्य कार्मुकम् ।। धनुरारोपयामास सलिलमिव राघवः ।। ११ ।। ज्याशब्दमकरोत्तत्र स्मयमानः स वीर्यवान् ।। तस्य शब्देन भूतानि वित्रेसुरशनेरिव ।। १२ ।।

जब वह धनुष रामचन्द्रके हाथमें आया तब लीलासेही रामचन्द्रने उसे चढा लिया ।। ११ ।। और हँसते हुए ज्याशब्द किया; उसके शब्दसे सब प्राणी वज्रके शब्दके समान घवरा गये ।। १२ ।।

अथाब्रवीद्वचो रामं रामोदाशरथिस्तदा । इदमारोपितं ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ।। १३ ।। तस्य रामो ददौ दिव्यं जामदग्न्यो महाबलः । शरमाकर्णदेशांतमयमाकृष्य तामिति ।। १४ ।।

तब रघुनंदन परशुरामसे बोले हे ब्रह्मन् ! धनुष तो चढा लिया, कहिये अब और क्या करूं ।।१३।। तब परशुरामने एक बडा तीक्ष्ण बाण देकर कहा कर्णपर्यन्त खेंचकर इसे चढाओ ।। १४ ।।

एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्रामः प्रदीप्त इव मन्युना ।। श्रूयते क्षम्यते चैव दर्पपूर्णोऽसि भार्गव ।। १५ ।। त्वया ह्यधिगतं तेजः क्षत्रियेभ्यो विशेषतः ।। पितामहप्रसादेन तेन मां क्षिपसि ध्रुवम् ।। १६ ।।

यह सुनकर रामचन्द्र क्रोधसे दीप्तिमान् हुए बोले, सुना जाता है क्षमा किया जाता है परन्तु तुम तथापि अभिमानसे पूर्ण हो ।। १५ ।। आप पितामहके प्रसादसे क्षत्रियोंसे अधिक स्पर्धा करके उनके बलपर आक्षेप करते हो ।। १६ ।।

पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम् ।। इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै रामो दिव्यां दृशं तदा ।। १७ ।। ततो रामशरीरे वै रामोऽपश्यत्स भार्गवः ।। आदित्यान्सवसून्रुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान् ।। १८ ।।

तुम मेरा दर्शन करो में तुमको नेत्रप्रदान करता हूँ, यह कह रामने उनके निमित्त दिव्य नेत्र दिये ।। १७ ।। तब परशुराम रामचन्द्रके शरीरमें आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत्समूह ।। १८ ।।

पितॄन्हुताशनांश्चैव नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।। गन्धर्वान्राक्षसान्यक्षान्नदीस्तीर्थानि यानिवै ।। १९ ।। ऋषीन्वै निखिलान्यांश्च ब्रह्मभूतान्सनातनान् ।। देवर्षींश्चैव कार्त्स्न्येन समुद्रान्पर्वतांस्तथा ।। २० ।।

पितृ, अग्नि, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदी, तीर्थ ।। १९ ।। ऋषि और ब्रह्मभूत, सनातन लोक, सब देवर्षि, समुद्र पर्वत ।। २० ।।

वेदांश्च सोपनिषदान्वषट्कारान्सहाध्वरैः ।।ऋचो यजूंषि सामानि धनुर्वेदांश्च सर्वशः ।। २१ ।। विद्युतो मेघवृन्दानि वर्षाणि च महाव्रत ।। ततः स भगवान्विष्णुस्तं वै बाणं मुमोच ह ।। २२ ।।

वेद, उपनिषद्, वषट्कार यज्ञ, ऋक्, यजु, साम, सम्पूर्ण धनुर्वेद देखने लगे ।। २१ ।। तब विद्युत् मेघवृंद वर्ष चलायमान होगये उस समय विष्णुने उस बाणको छोडा ।। २२ ।।

शुष्काशनिसमाकीर्णं महोल्काभिश्च सुव्रतः ।। पांसुवर्षेण महता मेघसंघैश्च केवलम् ।। २३ ।। भूमिकंपैः सनिर्घातैर्नादैश्च विपुलैरपि ।। भार्गवं विह्वलं कृत्वा तेजश्चाक्षिप्य केवलम् ।। २४ ।।

उस समय सब जगत् उल्का और अशनिसे व्याप्त हो गया और बडी भारी धूरिकी वर्षा और मेघसमूहसे व्याप्त हो गया ।। २३ ।। भूमिकम्पादि महाशब्द बडे निर्घातसे परशुरामको विह्वल करके उनका केवल तेजही आकर्षण करके ।। २४ ।।

अगच्छज्ज्वलितो रामं जरो बाहुप्रचोदितः ।। स तु विह्वलतां गत्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् ।। २५ ।। रामः प्रत्यागतप्राणः प्राणमद्विष्णुतेजसम् । विष्णुना सोऽभ्यनुज्ञातो महेंद्रमगमत्पुनः ।। २६ ।।

रामकी भुजासे छूटा हुआ वह बाण चलायमान हो गया, तब विह्वलतासे परशुरामजीको जब चेतना प्राप्त हुई ।। २५ ।। राम फिर प्राण आये हुएको समान विष्णुको प्रणाम करते हुए और विष्णुकी आज्ञासे वे फिर महेन्द्र पर्वतको चले गये ।। २६ ।।

भीतश्च तत्र न्यवसद्विनीतश्च महा तपाः । ततः संवत्सरेऽतीते हृतौजसमवस्थितम् ।। २७ ।। निर्मदं दुःखितं दृष्ट्वा पितरो राममब्रुवन् । न वै सम्यगिदं पुत्र विष्णुमासाद्य वै कृतम् ।। २८ ।।

वहाँ भीत और नम्रतापूर्वक निवास करते हुए फिर सम्वत्सरके बीत जानेपर पराक्रमरहित स्थित रहे ।। २७ ।। उस समय उनके पितर निर्मद और दुःखी देखकर परशुरामजीसे बोले हे पुत्र ! विष्णुको प्राप्त होकर यह तुमने अच्छा नहीं किया है ।। २८ ।।

स हि पूज्यश्च मान्यश्च त्रिषु लोकेषु सर्वदा । गच्छ पुत्र नदीं पुण्यां वधूसरकृतालयाम् ।। २९ ।। तत्रोपस्पृश्य तीर्थेषु पुनर्वपुरवाप्स्यसि । दीप्तोदं नाम तत्तीर्थं यत्र ते प्रपितामहः ।। ३० ।।

वह सदा त्रिलोकीमें पूज्य और मान्य हैं; अब तुम वधूसर आलयवाली पवित्र नदीमें जाओ ।। २९ ।। वहाँ तीर्थोंमें स्नान कर फिर अपने तेजको प्राप्त होगे, वह दीप्तोद नाम तीर्थ है, जहाँ तुम्हारे प्रपितामह ।। ३० ।।

भृगुर्देवयुगे राम तप्तवानुत्तमं तपः । तत्तथा कृतवान्रामो भार्गवो वचनात्पितुः ।। ३१ ।। प्राप्तवांश्च पुनस्तेजो भारद्वाज महामुने । एतद्यः शृणुयाद्वत्स रामचरित्रमुत्तमम् ।। ३२ ।।

भृगुजीने देवयुगमें तप किया था; यह वचन सुन परशुरामनने वैसाहि किया ।। ३१ ।। हे महामुने भारद्वाज ! इस प्रकार परशुरामको फिर तेजकी प्राप्ति हुई हे वत्स ! जो कोई पवित्र रामचन्द्रके चरित्रको सुनता है ।। ३२ ।।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । ततो रामो जानकीस्पृष्टपाणिः सूतैर्भक्त्या मागधैः स्तूयमानः । पुष्पासारैरास्तृतो देवसंघैः स उत्तरान्कोसलानाजगाम ।। ३३ ।।

इत्यार्षे श्री. वाल्मीकीये आ. जामदग्न्याय विश्वरूपदर्शनं नाम नवमः सर्गः ।। ९ ।।

वह सब पापसे छूटकर विष्णुके लोकको जाता है, तब रामचन्द्र जानकीका हाथ स्पर्श कर सूतमागधजनोंसे स्तुतिको हो देवताओंसे फूलोंकी वर्षासे आच्छादित हो उत्तर कोशल देशमें आये ।। ३३ ।।

इति श्रीरा. अद्भु. भाषाटीकायां जामदग्न्यविश्वरूपदर्शनं नाम नवमःसर्गः ।। ९ ।।

दशम सर्ग

रामचन्द्रका महावीरको चतुर्भुजरूप दिखाना

अथ सीतालक्ष्मणाभ्यां सह केनापि हेतुना । जगाम विपिनं रामो दंडकारण्यमाश्रितः ।। १ ।। तत्र गोदावरीतीरे पर्णशालां विधाय सः । उवाच कंचित्कालं वै मृगयामभिकारयन् ।। २ ।।

फिर सीता लक्ष्मणके साथ किसी कारणसे रामचन्द्र दण्डकारण्यमें आये । ।। १ ।। वहां गोदावरीके किनारे पर्णशाला रचकर मृगया करते कुछ दिन वहाँ रहे ।। २ ।।

कदाचिद्रावणो मोहाल्लंकायां तां न्यवासयत् । तामदृष्ट्वा ततो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।। ३ ।। आटतुश्चाटवीं सर्वां सीतादर्शनलालसौ । रामस्य रुदतस्तस्य बाष्पवारिसमुद्भवा ।। ४ ।।

एक समय मोहसे जानकीको हरण कर रावण ले गया, उनको राम लक्ष्मण देखकर ।। ३ ।। सीताके दर्शनकी इच्छासे सम्पूर्ण वन ढूंढते हुए ।। ४ ।।

नदी वैतरणी चाभूच्चक्षुषोरश्रुबुद्बुवा । वितरत्युश्रु वै यस्माद्ततो वैतरणीस्मृता ।। ५ ।। पितॄणां तरणं यस्मान्मानृणां स्नानतर्पणात् । तेनापि कारणेनासौ नदी वैतरणी स्मृता ।। ६ ।।

उनके नेत्रोंके जलसे एक वैतरणी नदी बह गई थी; आँसू विपरीत होनेसे वह वैतरणी कहाई ।।५।। जिसमें स्नान दान करनेसे मनुष्योंके पितर तरते और तृप्त हो जाते हैं इसी कारणसे वैतरणी कहाती है ।। ६ ।।

नेत्रयोर्दूषिकायाश्चय ताभिः शैलास्ततोऽभवन् । सुग्रीवेण वानरेण सख्यं कर्तु महामनाः ।। ७ ।। ऋष्यमूकमगाद्रामो लक्ष्मणेनानुजेन च । पञ्चभिर्मंत्रिभिः सार्द्धं सुग्रीवो नाम वानरः ।। ८ ।।

और नेत्रोंके मलसे वहांसे पर्वत हो गये हैं फिर वे सुग्रीवके साथ मित्रता करनेकी इच्छासे ।। ७ ।। रामचन्द्र लक्ष्मणके सहित ऋष्यमूक पर्वतको गये; वहां पांच मंत्रियोंके साथ सुग्रीष नामक वानर ।। ८ ।।

यत्रास्ते वालिभयतः सोऽपश्यद्रामलक्ष्मणौ । चापबाणधरौ वीरौ ग्रसंताविव चाम्बरम् ।। ९ ।। तौ दृष्ट्वा सुमहत्रस्तो वालिपक्षावमन्यत । प्रास्थापयद्धनूमंतं भिक्षुरूपेण वानरम् ।। १० ।।

आत्मानं दर्शयामास हनूमान्रामलक्ष्मणौ । को भवानिति चोक्तेऽथ चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ ११ ॥ शंखचक्रगदापाणिं वनमाला-विभूषितम् । श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवाससमच्युतम् ॥ १२ ॥

वालीके भयसे रहता था, उसने रामलक्ष्मणको देखा, वह वीर चाप धारण किये आकाशसे ग्रसते हुएके समान थे ॥ ९ ॥ उनको देखकर सुग्रीव बडे त्रासको प्राप्त हुआ, कारण कि, उनको वालीके पक्षका जाना, तब भिक्षु-रूपसे महावीरको उनके निकट भेजा ॥ १० ॥ हनुमान्ने रामलक्ष्मणको अपना स्वरूप दिखाया, आप कौन हो इस प्रकार चतुर्बाहु किरीटधारी ॥ ११ ॥ शंख, चक्र, गदापाणि वन मालासे विभूषित श्रीवत्स वक्षस्थलमें धारण किये, पीतवस्त्रधारी अच्युत ॥ १२ ॥

लक्ष्मीसरस्वतीभ्यां च संश्रितोभयपार्श्वकम् । ब्रह्मपुत्रैः सनंदाद्यैः स्तूयमानं समन्ततः ॥१३॥ देवर्षिपितृगंधर्वैः सिद्धविद्याधरोरगैः । सेव्यमानं महात्मानं पुंडरीकविलोचनम् ॥ १४ ॥

लक्ष्मी सरस्वतीसे सेवित ब्रह्माके पुत्र सनन्दादिसे सब ओर सेव्यमान ॥ १३॥ देवता पितर गन्धर्व सिद्धविद्याधर उरग महात्माओंसे सेवित कमललोचन॥१४॥

सहस्र सूर्यसंकाशं शतचन्द्रशुभाननम् । फणासहस्रमतुलं धारयन्तं च लक्ष्मणम् ॥ १५ ॥ अनन्तं रामशिरसि आतपत्रं फणागणैः । दधानं सर्वलोकेशनागसंघैश्च संस्तुतम् ॥ १६ ॥

सहस्रसूर्यके समान प्रकाशमान, सौ चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले, सहस्र फण धारण किये लक्ष्मणको ॥ १५ ॥ जो अनन्त हैं और रघुनाथजीके शिरपर अपने फणोंका छत्र धारण किये हैं वे सर्वलोकेश नागसमूहोंसे स्तुति किये हुए हैं ॥ १६ ॥

आत्मानं दर्शयामास रामचन्द्रो हनूमते । तद्रूपं हनुमन्वीक्ष्य किमेतदिति विस्मितः ॥ १७ ॥ क्षणं निमील्य नयने पुनः सोऽपश्यद-द्भुतम् । स्तुत्वा नत्वा च बहुधा सोऽब्रवीद्राघवं वचः ॥ १८ ॥

इस प्रकार रामचन्द्रने महावीरजीके प्रति अपनी आत्माको दिखाया महा-वीरजी उस रूपको देख यह क्या है इस प्रकार विस्मित हो गये ॥ १७ ॥ क्षण-मात्रको नेत्र मीचकर फिर वह अद्भुत रूप देखते हुए और अनेक प्रकारकी स्तुति और प्रणाम कर रामचन्द्रसे कहने लगे ॥ १८ ॥

अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान्नाम वानरः । सुग्रीवेण प्रेषितोऽहंयुवां कौ ज्ञातुमागतः ।। १९ ।। दृष्ट्वा युवां च द्विभुजौ चापबाणधरौ परम् । आगत्य चान्यथा दृष्टं वद मे को भवानिति ।। २० ।।

मैं सुग्रीवका मंत्री हनुमान् नाम वानर हूँ, सुग्रीवने भेजा है देखियो कि, यह कौन हैं ?।। १९ ।। आपको धनुषवाण धारण किया देखकर अकर कुछ और ही प्रकारसे देखा, कहिये आप कौन हैं । । २० ।।

इति पवनसुतं तं व्याकुलं व्याहरन्तं किमिति कथमितीदं कंपमानं प्लवंगम्।। कृतकरपुटमौलिं संविधेयं ब्रुवन्तं मधुरतर मुदारं रामचन्द्रोऽब्रवीत्तम् ।। २१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीराम-चतुर्भुजरूपदर्शनं नाम दशमः सर्गः ।। १० ।।

इस प्रकार व्याकुलतासे कहते महावीरके वचन सुन यह क्या है इस प्रकार कहकर कंपित होते हुए और हाथ जोडकर शिर झुकाये वचन कहते महावीर-बीरजीसे उदारतापूर्वक रामचन्द्र बोले ।। २१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. अ. भाषाटीकायां चतुर्भुजरूपदर्शनं नाम दशमः सर्गः ।। १० ।।

एकादश सर्ग

रामका सांख्ययोग वर्णन करना

रामःप्राह हनूमन्तमात्मानं पुरुषोत्तमः ।। वत्स वत्स हनूमंस्त्वं भक्तोयत्पृष्टवानसि ।। १ ।। तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मम ।। अवाच्यमेतद्विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम् ।। २ ।।

पुरुषोत्तम राम हनुमान्से अपना वर्णन करने लगे, हे वत्स हनुमान् ! हमारे भक्त तुम जो हमसे पूछते हो ।। १ ।। सो मैं कहता हूँ तुम सावधान होकर सुनो यह आत्मगुह्य सनातन ज्ञान किसीसे कहना नहीं चाहिये ।। २ ।।

यन्न देवा विजानंति यतन्तोऽपि द्विजातयः ।। इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूताद्विजोत्तमाः ।। ३ ।। न संसारं प्रपश्यंति पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः ।। गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद्गोपनीयं प्रयत्नतः ।। ४ ।।

जिसको यत्न करनेपर देवता और द्विजातिभी नहीं जानते हैं, इस ज्ञानको प्राप्त द्विजोत्तम ब्रह्ममय हो जाते हैं ।। ३ ।। इसके द्वारा पूर्वब्रह्मवादी भी संसारको नहीं देखते हैं यह गुप्तसे गुप्त छिपा रखनेके योग्य है ।। ४ ।।

वंशे भक्तिमतो ह्यस्य भवंति ब्रह्मवादिनः ।। आत्मा यः केवलः स्वच्छः शांतः सूक्ष्मः सनातनः ।। ५ ।। अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ।। सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः ।।६।।

जो जानता है उसके वंशमें महात्मा और ब्रह्मवादी होते हैं, आत्मा केवल स्वच्छ शान्त सूक्ष्म सनातन है ।। ५ ।। वह सर्वान्तर साक्षात् चिन्मात्र अन्धकार से परे है, वही अन्तर्यामी पुरुष प्राण और महेश्वर है ।। ६ ।।

स कालाग्निस्तदव्यक्तं सद्यो वेदयति श्रुतिः ।। कस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते ।। ७ ।। मायावी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः ।। न चाप्ययं संसरति नच संसारयेत्प्रभुः ।। ८ ।।

वही कालाग्नि अव्यक्त है यह वेदश्रुति कहती है, इससे संसार उत्पन्न होकर इसीमें लय हो जाता है ।। ७ ।। वही मायावी मायासे बद्ध होकर अनेक शरीर धारण करता है, न कोई इसे चला सकता है न यह चलता है ।। ८ ।।

नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ।। न प्राणो न मनो व्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च ।। ९ ।। न रूपरसगन्धश्च नाहङ्कर्ता न वागपि ।। न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं प्लवंगम ।। १० ।।

न यह पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश प्राण मन अव्यक्त शब्द स्पर्श है ।। ९ ।। न रूप रस गन्ध और न अहंकार न वाणी है, हे महावीर ! कर चरण उपस्थ पायुरूप भी नहीं है ।। १० ।।

न कर्ता न च भोक्ता च न प्रकृतिपूरुषौ ।। न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थतः ।। ११ ।। तथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धोनोपपद्यते ।। तद्वदेव न सम्बंधः प्रपञ्चपरमात्मनोः ।। १२ ।।

कर्त्ता भोक्ता प्रकृति पुरुष माया प्राण भी नहीं है, केवल चैतन्य स्वरूप है ।। ११ ।। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकारका सम्बन्ध नहीं है इसी प्रकार प्रपंचसे परमात्माका कुछ सम्बन्ध नहीं है ।। १२ ।।

छायातरू यथा लोके परस्परविलक्षणौ ।। तद्वत्प्रपंचपुरुषो विभिन्नौ परमार्थतः ।। १३ ।। यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात्स्वभावतः । नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मांतरशतैरपि ।। १४ ।।

जैसे लोकमें छाया और वृक्ष परस्पर विलक्षण हैं इसी प्रकार प्रपंच और पुरुष परमार्थसे भिन्न हैं ॥ १३ ॥ जो आत्माकी मलिन अवस्था है जो स्वभावसे विकारी हो तो सौ जन्ममें भी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ १४ ॥

पश्यंति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः । विकारहीनं निर्दुःखमानंदात्मानमव्ययम् ॥ १५ ॥ अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः । साप्यहंकृतिसम्बंधादात्मन्यारोप्यते जनैः । १६ ।

मुनिजन परमार्थसे अपने आत्माको मुक्त देखते हैं, विकारहीन दुःखरहित आनंद अविनाशी देखते हैं ॥ १५ ॥ मैं कर्ता सुखी दुखी हूं, स्थूल कृश हूँ, यह बुद्धि अहंकारके सम्बंधसे प्राणी आत्मामें आरोपण करते हैं ॥ १६ ॥

वदंति वेद विद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम् । भोक्तारमक्षयं बुद्ध्वा सर्वत्र समवस्थितम् ॥ १७ ॥ तस्मादज्ञान मूलोयं संसारः सर्व देहिनाम् । अज्ञानादन्यथा ज्ञातं तच्च प्रकृतिसङ्गतम् ॥ १८ ॥

वेदके जाननेवाले उसको प्रकृतिसे परे कहते हैं, वही भोक्ता अक्षय सर्वत्र स्थित है ॥ १७ ॥ इस कारण सब देहधारियोंको यह संसार अज्ञानसे प्रतीत होता है, ज्ञानसे अन्यथा दीखता है और वहभी प्रकृतिसे संगसे ऐसा है ॥ १८ ॥

नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः । अहं काराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते ॥ १९ ॥ पश्यंति ऋषयो व्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥

वह सर्वांतर्यामी पुरुष नित्य उदित स्वयं ज्योति सर्वगामी पुरुष पर है, उसके विना जाने यह पुरुष अहंकारके दिवेक करनेसे अपने आपको कर्ता मानता है ॥ १९ ॥ ऋषिजन उस सदात्मक सर्वगामी चैतन्यको यथार्थ देखते हैं, ब्रह्मवादी उस प्रधान प्रकृति कारण ब्रह्मको जानकर मुक्त होते हैं २०

तेनात्र सङ्गतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरंजनः । आत्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्यंति तत्त्वतः ॥ २१ ॥ अनात्मन्यात्मविज्ञानांतस्माद्दुखं तथेतरत् । रागद्वेषादयो दोषाः सर्वभ्रांतिनिबंधनाः ॥ २२ ॥

उससे संगतिको प्राप्त हुआ कूटस्थ निरंजन पुरुष तत्त्वसे अक्षर ब्रह्मरूप अपने आत्माको नहीं जानता है ॥ २१ ॥ अनात्मामें आत्माको जानकर दुःखी होता है, राग द्वेषादि यह सब भ्रांतिके निबंधन हैं ॥ २२ ॥

कार्यं ह्यस्य भवेदेषा पुण्यापुण्यमिति श्रुतिः । तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः ।। २३ ।। नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः । एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः ।। २४ ।।

इसी कार्यमें यह पुण्य अपुण्य देखा जाता है ऐसी श्रुति है, इसीके वशसे सब देहधारियोंके देहकी उत्पत्ति है ।। २३ ।। आत्मा नित्य और सर्वत्रगामी है, कूटस्थ दोषसे वर्जित एकही वह अपने मायास्वभावसे अनेक प्रकारका दीखता है ।। २४ ।।

तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः । भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया ।। २५ ।। यथाहि धूमसंपर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत् । अंतःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्नलिप्यते ।। २६ ।।

इस कारणसे मुनिजन परमार्थसे अद्वैतही कहते हैं, स्वभावसे जो अव्यक्तका भेद है वह माया है ।। २५ ।। जैसे धूमके सम्पर्कसे आकाशमें श्यामता दीखती है, आकाशमें दोष नहीं आता इसी प्रकार अन्तःकरणके भावोंमें आत्मा मलिन नहीं होता है ।। २६ ।।

यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलः । उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते ।। २७ ।। ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः ।। अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यंत्यन्ये कुबुद्धयः ।। २८ ।।

जैसे स्फटिक मणी केवल अपनी कांतिसेही शोभाको प्राप्त होती है उपाधिहीन होनेसे निर्मल है उसी प्रकार आत्मा प्रकाशित होता है ।। २७ ।। बुद्धिमान् इस जगत्को ज्ञानरूप कहते हैं, कुबुद्धि अज्ञानी इसको अर्थस्वरूप देखते हैं ।। २८ ।।

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः ।। दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रांतदृष्टिभिः ।। २९ ।। यथा संलक्ष्यते व्यक्तः केवलः स्फटिको जनैः । रक्तिकाव्यवधानेन तद्वत्परम पूरुषः ।। ३० ।।

वह कूटस्थ निर्गुण व्यापी आत्मा स्वभावसे चैतन्य है, भ्रांति दृष्टिवालें पुरुषोंको यह अर्थरूप दीखता है ।। २९ ।। जैसे मनुष्योंको केवल स्फटिक प्रत्यक्ष दीखता है और व्यवधानसहित होनेसे लालिमा आदि दीखती है इसी प्रकार परम पुरुष है पृथक् शुद्ध है देहमें व्याप्त होनसे उपाधिमान् दीखता है ।। ३० ।।

तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतो ऽव्ययः ।। उपासितव्यो मंतव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ।। ३१ ।। यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा ।। योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम् ।। ३२ ।।

इस कारण आत्मा अक्षर शुद्ध नित्य सर्वतक अविनाशी है वही उपासना करने योग्य मानने योग्य और मुमुक्षुओंके सुनने योग्य है ।।३१।। जिस समय मनमें सर्वगामी चैतन्यका प्रादुर्भाव होता है तब योगी व्यवधानरहित हो उसको प्रोप्त होता है ।। ३२ ।।

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभि पश्यति ।। सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते स्वयम् ।। ३३ ।। यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव न पश्यति ।। एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ।। ३४ ।।

जिस समय सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी आत्मामें देखता है और अपनेको सब भूतोंमें देखता है तब उस ब्रह्मको प्राप्त होता है।।३३।। जो सब भूतोंको अपनेमें देखता है तब यह एक एकीभूत केवल ब्रह्माको प्राप्त होता है ।। ३४ ।।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते काया येऽस्य हृदि स्थिताः ।। तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पंडितः ।। ३५ ।। यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनु पश्यति ।। तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।। ३६ ।।

जब इसके हृदयकी सब कामना छूट जाती है तब यह पंडित अमृतीभूत होकर क्षेमको प्राप्त होता है ।। ३५ ।। भूतोंको पृथग्भावको एक स्थानमें देखता है उसी समय ब्रह्मविचारके विस्तारको प्राप्त होता है ।। ३६ ।।

यदा पश्यति चात्मायं केवलं परमार्थतः ।। मायामात्रं जगत्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतः ।। ३७ ।। यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम् ।। केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ।। ३८ ।।

जब परमार्थसे अपनेको केवल एक देखता है और जगत्को माया मात्र देखता है तब निर्वृति हो जाती है ।। ३७ ।। जिस समय जन्म जरा दुःख व्याधियोंको एक ही औषधी केवल ब्रह्मज्ञान होता है तब यह शिव होता है ३८

यथा नदी नदा लोके सागरेणैकतां ययुः ।। तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत् ।। ३९ ।। तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः ।। अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ।। ४० ।।

जैसे नदी नद समुद्रमें जाकर एकताको प्राप्त होते हैं इसी प्रकारसे यह निष्कल आत्मा अक्षरमें मिलकर एकताको प्राप्त होता है ।। ३९ ।।इस प्रकारसे विज्ञानही है प्रपंच और स्थिति नहीं है, लोक अज्ञानसे व्याकुल होकर विज्ञानसे देखता है ।। ४० ।।

तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् ।। अज्ञानमिति तत्सर्वं विज्ञानमिति मे मतम् ।। ४१ ।। एतत्ते परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम् । सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैक चित्तता ।। ४२ ।।

वह ज्ञान निर्मल सूक्ष्म निर्विकल्प अविनाशी है, यह अज्ञानसे सब होता है विज्ञान है वही सर्व श्रेष्ठ है एक यही निश्चय है ।। ४१ ।। यह परम सांख्य उत्तम ज्ञान है, सब वेदान्तका सारयोग वही है कि एकचित्तता होनी ।। ४२ ।।

योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रजायते । योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित् ।। ४३ ।। यदेव योगिनो यांति सांख्यं तदभिगम्यते । एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित् ।। ४४ ।।

योगसे ज्ञान होता है ज्ञानसे योग प्रवृत्त होता है, ज्ञानयोगसे युक्त पुरुषोंको कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।। ४३ ।। जिस मार्गसे योगी चलते हैं उसी मार्गसे सांख्यवाले जाते हैं, सांख्य योगसे जो एकता देखता है वही देखता है ।। ४४ ।।

अन्ये च योगिनो वत्स ऐश्वर्थासक्तचेतसः । मज्जन्ति तत्र तत्रैव सत्त्वात्मैक्यमिति श्रुतिः ।। ४५ ।। यत्तत्सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यमचलं महत् । ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहांते तदवाप्नुयात् ।। ४६ ।।

हे वत्स ! ऐश्वर्यमें मन लगानेवाले योगी और हैं वे उन स्थानों में निमज्जित होते हैं, सत्त्वात्मा एक है यह श्रुति है ।। ४५ ।। जो सर्वगत दिव्य अचल ऐश्वर्य है ज्ञानयोगमें युक्त प्राणी उस सबको देहान्तमें प्राप्त हो जाते हैं ।। ४६ ।।

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः । कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः ।। ४७ ।। सर्वकामः सर्वरसः सर्वगंधोऽजरोमरः । सर्वतः पाणिपादोऽहमंतर्यामी सनातनः ।। ४८ ।।

यह मैं अव्यक्त आत्मा मानवी परमेश्वर हूँ सब वेदोंमें सर्वात्मा सर्वतोमुख स्थित हो रहा हूँ ।। ४७ ।।सर्वकामयुक्त सर्वरस, सर्वगन्ध अजर अमर सब ओरसे पाणिपादयुक्त मैं अन्तर्यामी सनातन हूँ ।। ४८ ।।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः । अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम् ।। ४९ ।। वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन । प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ।। ५० ।।

अपाणिपादवाला वेगवान् सबकुछ ग्रहण करनेवाला हृदयमें स्थित हूँ, विना नेत्रों देखता और विना कानके सुनता हूँ ।। ४९ ।। मैं इस सबको जानता हूँ और मुझे कोई नहीं जानता है, तत्वदर्शी मुझको एक महान् पुरुष कहते हैं ।। ५० ।।

निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम् । यन्न देवा विजानंति मोहिता मायया मम ।। ५१ ।। यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः । प्रविष्टा मम सायुज्यं लभंते योगिनोऽव्ययम् ।। ५२ ।।

निर्गुण अमलरूप जो उत्तम ऐश्वर्य है जिसको मेरी मायासे मोहित हुए देवता भी मुझको नहीं जानते हैं ।। ५१ ।। जो मेरा गुह्यरूप सर्वगामी देह है उसमें तत्त्वदर्शी प्रवेश कर मेरे सायुज्यको प्राप्त होते हैं ।। ५२ ।।

येषां हि न समापन्ना माया वै विश्वरूपिणी । लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह ।। ५३ ।। न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि । प्रसादान्मम ते वत्स एतद्वेदानुशासनम् ।। ५४ ।।

जिनको यह विश्वरूपिणी माया नहीं लिपटी है वे मेरे साथ परम शुद्ध निर्वाणको प्राप्त होते हैं ।।५३।। सौ करोड कल्पमें भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती, हे वत्स ! मेरी कृपासे ऐसा होता है यही वेदका अनुशासन है ।। ५४ ।।

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्य हनुमन्कचित् । यदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम् ।। ५५ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे सांख्ययोगे नामैकादशः सर्गः ।। ११ ।।

हे हनुमत् ! अपुत्र अशिष्य अयोगीको यह नहीं देनी चाहिये, जो यह मैंने सांख्ययोग मिश्रित ज्ञान आपसे वर्णन किया है ।। ५५ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वा. आदि. अद्भुत. ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां सांख्ययोगो नामैकादशः सर्गः ।। ११ ।।

द्वादश सर्ग

उपनिषदकथन करना

पुनः रामः प्रवचनमुवाच द्विजपुंगवः । अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः ।। १ ।। तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्मात्सर्वमहं जगत् । सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।। २ ।।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।। ३ ।। सर्वाधारं स्थिरानंदमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् । सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम् ।। ४ ।।

फिर रामचन्द्र कहने लगे हे ब्राह्मणश्रेष्ठ । अव्यक्तसे काल हुआ उससे पर प्रधान पुरुष हुआ ।। १ ।। इनसे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है, वह सब ओरसे हस्त चरण शिर मुखवाला है ।। २ ।। सब ओरसे कर्णवान् और सब ओरसे आवृत्त हुआ स्थित है सब इन्द्रियगुणोंका आभासरूप, सब इन्द्रियोंसे वर्जित ।। ३ ।। सर्वाधार, स्थिरानंद, अव्यक्त, द्वैतवर्जित, सब उपमानसे रहित, प्रमाणसे रहित, तथा इंद्रियोंसे परे ।। ४ ।।

निर्विकल्पं निराभासं सर्वाभासं परामृतम् । अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।। ५ ।। निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः । स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यंतरात्परः ।। ६ ।।

निर्विकल्प निराभास सर्वाभास परामृत अभिन्न भिन्न संस्थावाले शाश्वत ध्रुव अविनाशी ।। ५ ।। निर्गुण परम व्योम उसके ज्ञानको कवि कहते हैं वही सब भूतोंका आत्मा बाह्य अन्तरसे परे है ।। ६ ।।

सोऽहं सर्वत्रगः शांतो ज्ञानात्मा परमेश्वरः । मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तरूपिणा ।। ७ ।। मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित् । प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम् ।। ८ ।।

सौ मैं सर्वत्रगामी शांत ज्ञानात्मा परमेश्वर हूं मुझे अव्यक्त रूपवालेने यह सब जगत् विस्तार कर रक्खा है ।। ७ ।। सब प्राणी मेरे स्थानमें हैं, इसको जानता है, वह वेदका जाननेवाला कहता है, प्रधान और पुरुष यह दोही तत्त्व कहते हैं ।। ८ ।।

तयोरनादिर्निर्दिष्टः कालः संयोजकः परः । त्रयमेतदनाद्यंत-
मध्यक्ते समवस्थितम् ॥ ९ ॥ तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं
विदुः । महदाद्यं विशेषांतं संप्रसूतेऽखिलं जगत् ॥ १० ॥

उनका संयोग करनेवाला अनादि निर्दिष्ट काल है, यह तीनों अनादि अनन्त अव्यक्तमें स्थित हैं । ९ ॥ तदात्मक अन्य दो परन्तु वह रूप मेरा ही महत्से लेकर है विशेषपर्यंत सब जगत्को निर्मित करती है ॥१०॥

या प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्व देहिनाम् । पुरुषः प्रकृस्थितोऽ-
पिभुक्ते यः प्राकृतान्गुणान् ॥ ११ ॥ अहंकारो विविक्तत्वात्प्रोच्यते
पञ्चविंशकः । आद्यो विकारः प्रकृतिर्महानात्मेति कथ्यते ॥ १२ ॥

जो यह प्रकृति सब प्राणियोंकी मोहित करनेवाली कही गई है और पुरुष प्रकृतिमें स्थित हुआ प्रकृतिके गुणोंको भोगता है ॥११॥ अहंकारसे विविक्त होनसे वह पच्चीस तत्त्वका कहा जाता है आद्य विकार प्रकृति और महान् आत्मा कहा जाता है ॥ १२ ॥

विज्ञानशक्तिर्विज्ञानादहंकारस्तदुत्थितः । एक एव महानात्मा
सोहंकारोऽभिधीयते ॥ १३ ॥ स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्व
चिंतकैः ॥ तेन वेदयते सर्वं सुखं दुखं च जन्मसु ॥ १४ ॥

विज्ञानसे विज्ञानशक्ति और उससे अहंकारयुक्त कहा जाता है ॥ १३ ॥ वही जीव अन्तरात्मा नामसे तत्वविज्ञानियों द्वारा गाया जाता है उसके द्वारा जन्मोंका सुख दुःख जाना जाता है ॥ १४ ॥

स विज्ञानात्मकस्तस्य मनःस्यादुपकारकम् । तेनाविवेकतस्तस्मा
संसारः पुरुषस्य नु ॥ १५ ॥ स चाविवेकः प्रकृतौ संगात्कालेन
सोऽभवत् । कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥ १६ ॥

विज्ञानात्मक वही है, मन उसका उपकारी है, उसको अविवेक होनसे संसार प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥ वह अविवेक प्रकृतिके संगसे काल द्वारा प्राप्त हुआ है, कालही प्राणियोंको प्रगट कर संहार कर जाता है ॥ १६ ॥

सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे । सोऽन्तरा सर्वमेवेदं
नियच्छति सनातनः ॥ १७ ॥ प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषः
परः । तर्वेंद्रियेभ्यः परमं मनः प्राहुर्मनीषिणः ॥ १८ ॥

सब कालके वशमें हैं, काल किसीके वशमें नहीं है वह सनातन सबके अन्तरमें स्थित हुआ वश करता है ।। १७ ।। वही भगवान् प्राण सर्वज्ञ पुरुष कहाता है, विद्वान् सब इन्द्रियोंसे परे मनको कहते हैं ।। १८ ।।

मनसश्चाप्यहंकारमहंकारान्महान् परः । महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।। १९ ।। पुरुषाद्भगवान्प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत् । प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ।। २० ।।

मनसे परे अहंकार अहंकारसे परे महान्, उससे परे अव्यक्त इससे परे पुरुष ।। १९ ।। पुरुषसे परे भगवान् प्राण और उसके वशीभूत यह सब जगत् है प्राणसे परे व्योम और आकाशसे परे ईश्वर है ।। २० ।।

सोऽहं सर्वत्रगः शांतो ज्ञानात्मा परमेश्वरः । नास्ति मत्परमं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते ।।२१।। नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजंगमम् । ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम् ।। २२ ।।

सो मैं सर्वत्रगामी शान्त ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ मुझसे परे और कुछ नहीं, मुझे जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है ।। २१ ।। स्थावर जंगम जगत्में नित्य हीं रहेंगे, केवल एक आकाशरूप महेश्वर मैंही स्थित हूँ ।। २२ ।।

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत् । मायी मायामयो देवः कालेन सह संगतः ।। २३ ।। मत्संनिधावेष कालः करोति सकलं जगत् ।। नियोजयत्यनंतात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ।। २४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्वा. आदि. वाल्मी. उपनित्वत्कथनं नाम द्वादशः सर्गः ।। १२ ।।

सो मैं यह सब उत्पन्न करके संहार कर जाता हूं मैं मायामय देव कालके सम्बन्धसे सब कुछ कहता हूँ ।। २३ ।। मेरी इच्छा निकटतासे यह काल सब जगत् रकता है और अनन्तात्मा इसके कृत्यमें लगता है, यही वेदका अनुशासन है ।। २४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वाल्मीकीये आदिकाव्ये ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां उपनिषत्कथनं नाम द्वादशः सर्गः ।। १२ ।।

त्रयोदश सर्ग

रामका भक्तियोग कहना

वक्ष्ये समाहितमनाश्शृणुष्व पवनात्मज ।। येनेदं लभ्यते रूपं येनेदं संप्रवर्तते ।। १ ।। नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन च चेज्यया ।। शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ।। २ ।।

हे महावीर ! जो मैं कहता हूँ सो सावधान मन होकर सुनो जिससे यह सब रूप प्राप्त होकर प्रवृत्त होता है ।। १ ।। न मैं अनेक प्रकारके तप न दान न यज्ञसे पुरुषोंके द्वारा जाना जाता हूं केवल जो मेरी भक्ति करते हैं वही मुझको प्राप्त होते हैं ।। २ ।।

अहं हि सर्वभावानामंतस्तिष्ठामि सर्वगः ।। मां सर्वसाक्षिणं लोका न जानंति प्लवंगम ।। ३ ।। यस्मांतरा सर्वमिदं यो हि सर्वांतर परः ।। सोऽहं धाता विधाता च लोकेऽस्मिन्विश्वतोमुखः ।। ४ ।।

मैं सर्वगामी सब भावोंके अन्तमें स्थित रहता हूँ हे वीर सर्वसाक्षी मुझको लोक जाननेमें समर्थ नहीं होते ।। ३ ।। जिसके अन्तरमें यह सब हैं और जो सर्वांतर्यामी परेसे परे हैं वह मैं धाता विधाता इस लोकमें सब स्थित हो रहा हूँ ।। ४ ।।

न मां पश्यंति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः ।। ब्राह्मणा मनवः शक्रा ये चान्ये प्रथितौजसः ।। ५ ।। गृणंति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् । जयन्ति विविधैरग्निं ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ।। ६ ।।

सब देवता और मुनि मुझे देखनेसे समर्थ नहीं होते हैं ब्राह्मण मनु इन्द्र तथा और देवता हैं ।। ५ ।। सब वेद मुझही एक परमेश्वरका निरन्तर यजन करते हैं, और कहते हैं ब्राह्मण अनेक यज्ञोंसे मेरा यजन करते हैं ।। ६ ।।

सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मलोके पिता महम्। ध्यायंति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ।।७।। अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता चैव फलप्रद ।। सर्वदेवतनुर्भुत्वा सर्वात्मा सर्व संस्तुतः ।। ८ ।।

सब लोक ब्रह्मलोकमें पितामहको नमस्कार करते हैं योगी भूताधिपति ईश्वरको नित्य ध्यान करते हैं ।। ७ ।। मैं सब यज्ञोंका भोक्ता और फलका

देनेवाला हूँ सब देवका शरीर होकर सर्व आत्मा सबसे स्तुतिको प्राप्त होता हूँ ॥ ८ ॥

मां पश्यंतीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः । तेषां संनिहितो नित्यं ये भक्ता मामुपासते ॥९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते । तेषां ददामि तत्स्थानमानंदं परमं पदम् ॥ १० ॥

धर्मात्मा वेदवादी विद्वान् मुझको देखते हैं, जो भक्त मेरी उपासना करते हैं मैं सदा उनके निकट निवास करता हूँ ॥ ९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य धर्मात्मा मेरी उपासन–करते हैं, उनको मैं आनंदमय परम पदका स्थान देता हूँ ॥ १० ॥

अन्येऽपि ये विकर्मस्थाः शूद्राद्या नीच जातयः । भक्तिमंतः प्रमुच्यंते कालेन मयि संगताः ॥ ११ ॥ न मद्भक्ता विनश्यंते मद्भक्ता वीतकल्मषाः ॥ आदावेतत्प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ १२ ॥

और भी जो शूद्रादि नीच जाति विकर्ममें स्थित हैं वे भक्ति करनेके समय मेरे निकट प्राप्त होकर मुक्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥ मेरे भक्त पाप रहित हो जाते हैं, उनका नाश नहीं होता यह पहलेहीसे मेरी प्रतिज्ञा है कि, मेरे भक्त नाश नहीं होते ॥ १२ ॥

यो वा निंदति तं मूढो देवदेवं स निंदति ॥ यो हि तं पूजयेद्भक्त्या स पूजयति मां सदा ॥ १३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् ॥ यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः ॥ १४ ॥

जो मूढ मेरे भक्तकी निन्दा करता है वह देवदेवकी निन्दा करता है और जो उनको भक्तिसे पूजन करता है वह मेरा पूजन करता है ॥ १३ ॥ जो मेरे पूजनको पत्र पुष्प फल जल प्रदान करता है वह मेरा भक्त और मेरा प्रिय है ॥ १४ ॥

निधाय दत्तवान्वेदानशेषानास्य निःसृतान् ॥ १५ ॥ अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ॥ धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेद विद्विषाम् ॥ १६ ॥

मैं जगत्के आदिमें ब्रह्मा परमेष्ठीका निर्माण कर सम्पूर्ण वेदोंको प्रदान करता हुआ, जो मेरे मुखसे निकले हैं ॥ १५ ॥ मैं ही सम्पूर्ण योगियोंका अविनाशी गुरु हूँ धर्मात्माओंका रक्षक और वेदद्वेषियोंका नाशक हूँ ॥ १६ ॥

अहं वै सर्व संसारान्मोचको योगिनामिह ।। संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ।। १७ ।। अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः ।। मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी ।। १८ ।।

मैं ही योगियोंके साथ सब संसारका मोचक हूँ, मैं ही सब संसारसे रहित सब संसारका हेतु हूँ ।। १७ ।। मैंही संहार करनेवाला और निर्माता तथा परिपालन करनेवाला हूँ मायावी मेरी शक्ति सब लोकको मोहित करती है ।। १८ ।।

ममैव च परा शक्तिया सा विद्येति गीयते । नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः ।। १९ ।। अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः ।। आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च ।। २० ।।

वह मेरीही शक्ति विद्यानामसे गायी जाती है, योगियोंके हृदयमें स्थित हो मैं उस मायाको दूर करता हूँ ।। १९ ।। मैं ही सब शक्तियोंका प्रवृत्त करनेवाला हूँ, सबका आधारभूत हो अमृतका निधान हूँ ।। २० ।।

एका सर्वांतरा शक्तिः करोति विविधं जगत् ।। भूत्वा नारायणोऽनंतो जगन्नाथो जगन्मयः ।। २१ ।। तृतीया महती शक्तिर्निहंति सकलं जगत् ।। तामसी मे समाख्याता कालात्मा रुद्ररूपिणी ।। २२ ।।

एकही सर्वांतरा शक्ति जगत्को अनेक प्रकारसे करती है, वह जगन्नाथ अविनाशी नारायण जगन्नाथ है ।। २१ ।। तीसरी महान् शक्ति सो जगत्को निर्माण करती है वह तामसी रुद्ररूपिणी कलात्मा रुद्ररूपवाली है ।। २२ ।।

ध्यानेन मां प्रपश्यंति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।। अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ।। सर्वेषामेव भक्तानामेष प्रियतरो मम ।। २३ ।। यो विज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ।। अन्येच ये त्रयो भक्ता मदाराधनकांक्षिणः ।। २४ ।।

कोई मुझे ध्यानसे और कोई ज्ञानसे देखते हैं, कोई भक्तियोग और कोई कर्मयोगसे मुझको देखते हैं सब भक्तोंमें मुझे यह सबसे अधिक प्रिय है ।। २३ ।। जो ज्ञानसे मेरी नित्य आराधना करता है और जो दूसरे तीन प्रकार भक्त मेरी आराधनाके करनेवाले हैं ।। २४ ।।

तेऽपि मां प्राप्नुवंत्येव नावर्तंते च वै पुनः ।। मया ततमिदं कृत्स्ने-मेतद्यो वेद सोऽमृतः ।। २५ ।। पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः ।। करोति काले भगवान्महायोगेश्वरः स्वयम् ।। २६ ।।

वे भी मुझको प्राप्त होकर फिर संसारमें नहीं गिरते हैं, मैंने इस जगत्को विस्तार कर रक्खा है जो इसे जानता है सो अमृत होता है ।। २५ ।। मैं स्वभावसे इस जगत्को वर्तमानके समान देखता हूँ, समयपर महायोगेश्वर भगवान् इसको कहते हैं ।। २६ ।।

योगं संप्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः ।। योगेश्वरोऽसौ भगवान्महादेवो महान्प्रभुः ।। २७ ।। महत्वात्सर्वसत्त्वानां परत्वात्परमेश्वरः ।। प्रोच्यते भगवान्ब्रह्मा महान्ब्रह्ममयो यतः ।। २८ ।।

वही योगी मायी शास्त्रोंमें योगरूपसे कहा जाता है वह योगरूपसे कहा जाता है वह योगेश्वर भगवान् महायोगेश्वर महाप्रभु है ।। २७ ।। महत्तत्त्व होनेसे सब जीवोंका पर होनेसे परमेश्वर है, वह महान् ब्रह्ममय होनेसे ब्रह्मा कहलाते हैं ।। २८ ।।

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।। सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।। २९ ।। सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रिताः ।। तिष्ठामि योगी सततं यस्तद्वेद स वेदवित् ।। ३० ।।

जो इस प्रकार मुझको महायोगेश्वर जानता है वह अविकम्पयोगसे युक्त होता है इसमें सन्देह नहीं ।। २९ ।। सो मैं परमानन्दरूपसे प्रेरणा किया हुआ सबके आश्रित हूँ नित्ययोगमें स्थित रहता हूँ जो इसको जानता है वह वेदको जानता है ।। ३० ।।

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम् ।। प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये ।। ३१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकांडे भक्तियोगो नाम त्रयोदशः सर्गः ।। १३ ।।

यह गुप्त ज्ञान सब वेदोंका सम्मत है, यह प्रसन्नचित्तवाले धर्मात्माओंको देना चाहिये जो अग्निहोत्र करनेवाले हैं ।। ३१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रायणे वाल्मी. अद्भु. भाषाटी. भक्तियोगो नाम त्रयोदशः सर्गः ।। १३ ।।

चतुर्दश सर्ग

रामचन्द्र और महावीरजीका संवाद

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता ।। सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः ।। १ ।। सर्वेषामेव वस्तूनामंतर्यामी पिता ह्यहम् ।। मय्येवान्तःस्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः ।। २ ।।

सब लोकोंका निर्माण करनेवाला सब लोकका रक्षक, सर्वलोकका संहारकर्त्ता, सर्वात्मा, सनातन मैं हूँ ।। १ ।। सब वस्तुओंका अन्तर्यामी पिता हूँ मेरे अन्तःकरणमें सब स्थित हैं मैं नहीं ।। २ ।।

भवता चाद्भुते दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम्।। ममैवा ह्युपमा वत्स मायया दर्शिता मया ।। ३ ।। सर्वेषामेव भावानामंतरा समवस्थितः ।। प्रेरयामि जगत्सर्वं क्रियाशक्तिरियं मम ।। ४ ।।

तुमने जो मेरा अद्भुतरूप देखा है हे वत्स ! मायाद्वारा मैंनेही यह रूप निर्माण किया है ।। ३ ।। सब भावोंके अन्तरमें मैं ही स्थित हूँ,सब जगत्को मैं प्रेरणा करता हूँ, यह मेरी क्रियाशक्ति है ।। ४ ।।

ययेदं चेष्टते विश्वं मत्स्वभावनुवर्ति च।। सोऽहं काले जगत्कृत्स्नं करोमि हनुमन् किल ।। ५ ।। संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु ।। आदिमध्यांतनिर्मुक्तो मायातत्त्व प्रवर्तकः ।। ६ ।।

यह जगत् मेरे द्वारा चेष्टा किया जाता है और मेरे स्वभावका अनुवर्तन करनेवाला है, हे हनुमन् ! सो मैं समयपर सब जगत्को निर्माण करता हूँ ।। ५ ।। एक रूपसे कहता हूँ, यह दो प्रकारसे मेरीही अवस्था है, आदि मध्य अन्तरसे रहित तत्त्वका प्रवृत्त करनेवाला मैं ही हूँ ।। ६ ।।

क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ।। ताभ्यां संजायते सर्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ।। ७ ।। महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृंभितम् ।। यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः ।। ८ ।।

सृष्टिकी आदिमें मैं प्रधान और पुरुषको क्षुभित करता हूँ, उनके परस्पर संयुक्त होनेसे यह जगत् होता है ।। ७ ।। महदादिके क्रमसे यह मेरा तेज फैल रहा है, जो सब जगत्का साक्षी कालचक्रका प्रवृत्त करनेवाला है ।। ८ ।।

हिरण्यगर्भो मार्तंडः सोऽपि मद्देहसंभवः ।। तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ।। ९ ।। दत्तवानात्मजावेदान् कल्पादौ चतुरः किल ।। स मन्नियोगतो ब्रह्मा सदा मद्भाव भावितः ।। १० ।।

हिरण्यगर्भ मार्तण्ड है वह मेरे देहसे प्रगट है, उसको मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्यको सनातन ज्ञानयोग ।। ९ ।। और कल्पकी आदिमें चारों वेदोंको दिया है, वह मन्नियोगसे भगवान् सदा सद्भावमें स्थित हुए ।। १० ।।

दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम् ।। स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित् ।। ११ ।। भूत्वा चतुर्मुखः सर्वं सृजत्येवात्मसंभवः ।। योऽपि नारायणोनन्तो लोकानां प्रभवाव्ययः ।। १२ ।।

उस मेरे दिव्य ऐश्वर्यको सदा धारण करते हैं, यह सबके निर्माता सबके ज्ञाता मेरी आज्ञासे ।। ११ ।। चतुर्मुखी होकर सृष्टिको निर्माण करते हैं, जो नारायण अनन्त लोकोंके प्रभु अविनाशी हैं ।। १२ ।।

ममैव परमा मूर्तिः करोति परिपालनम् ।। योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः ।। १३ ।। मदाज्ञयाऽसौ सततं संहरत्येव मे तनुः ।। हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।। १४ ।।

वह मेरीही परमा मूर्ति होकर जगत्का पालन करते हैं, जो सब भूतोंका अन्तक रुद्र कालात्मा प्रभु है ।। १३ ।। वह मेरा शरीर मेरी आज्ञासे ही यह सब संहार करता है, देवताओंके निमित्त हव्य वहन करता हुआ ।। १४ ।।

पाकं च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिचोदितः ।। भुक्तमाहारजातं यत्पचत्येतदहर्निशम् ।। १५ ।। वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ।। यो हि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुंगवः ।। १६ ।।

अग्नि जो पाक करता है वह भी मेरी शक्तिसे प्रेरित हुआ करता है, जो कुछ भोजन किया आहार है मेरे बलसे जठराग्नि उसे पचाती है ।। १५ ।। भगवान् वैश्वानर अग्नि मेरी आज्ञासे यह करता है, जो सम्पूर्ण जलोंकी योनि वरुणदेवता है ।। १६ ।।

स संजीवयते सर्वमीशस्यैव नियोगतः ।। योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवो निरंजनः ।। १७ ।। मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि ।। योऽपि संजीवनो नृणां देवानाममृताकरः ।। १८ ।।

वह ईशके नियोगसे ही सबको संजीवित करता है जो निरंजन देव जीवोंके बाहर भीतर स्थित है ।। १७ ।। मेरीही आज्ञासे यह प्राणियोंके शरीरको भरण पोषण करता है जो देवताओंके संजीवनमें अमृत रूप है ।। १८ ।।

सोमः स मन्नियोगेन चोदितः किल वर्तते ।। यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा ।। १९ ।। सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयंभुवः ।। योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः ।। २० ।।

चन्द्रमा मेरेही आज्ञासे वर्तता है, जो स्वभावसे सारे जगत्को प्रवृत्त कर देता है ।। १९ ।। सूर्य ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृष्टि करता है, जो संपूर्ण जगत्का शास्ता नियमसे साधुतापूर्वक वर्तता है, सब देवताओंका अधिपति है ।। २० ।।

यज्ञानां फलदो देवो वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ।। यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह ।। २१ ।। यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगत ।। योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां संप्रदायकः ।। २२ ।।

वह देव यज्ञोंके फलका देनेवाला मेरी आज्ञासे वर्तता है, असाधुओंका शास्ता नियमसे वर्तता है ।। २१ ।। वैवस्वत यमदेव मेरीही आज्ञासे वर्तता है, जो सम्पूर्ण धनाध्यक्ष और धनोंके देनेवाले हैं ।। २२ ।।

सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा ।। यः सर्व रक्षसां नाथस्तापसानां फलप्रदः ।। २३ ।। मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋतिः सदा ।। वैतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः ।। २४ ।।

वह कुबेरभी ईश्वरकी आज्ञासे सदा वर्तता है जो सम्पूर्ण राक्षसोंका नाथ तपस्वियोंका फल देनेवाला है ।। २३ ।। वह निर्ऋतिभी सदा मेरी आज्ञासे वर्तता है, वेतालगण भूतोंका स्वामी भोगफल देनेवाला है ।। २४ ।।

ईशानः सर्वभक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्मदाज्ञया।।यो वामदेवोंगिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः ।। २५ ।। रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ।। यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्नकारकः ।। २६ ।।

सब भक्तोंके ईशानभी मेरी आज्ञासे वर्तता है,जो वामदेव आंगिरस रुद्रगणोंका अग्रणी शिष्य है ।। २५ ।। नित्य योगियोंका रक्षक है यहभी मेरी आज्ञासे वर्तता है, जो सर्व जगत्के पूज्य विघ्नकारक गणेशजी हैं ।। २६ ।।

विनायको धर्मनेता सोऽपि मद्वचनात्किल ।। योऽपि वेदविदा श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ।। २७ ।। स्कंदोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयंभूप्रतिचोदितः ।। ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः ।। २८ ।।

विनायक धर्मनेता है वहभी मेरी आज्ञासे वर्तता है, जो वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ देवताओंके सेनापति प्रभु हैं ।। २७ ।। वह स्कन्दभी प्रभुकी आज्ञामेंही वर्तते हैं, जो प्रजाओंके पति मरीच्यादि महर्षि हैं ।। २८ ।।

सृजंति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ।। या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम् ।। २९ ।। पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात् ।। वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ।। ३० ।।

विविधलोक नारायणकी आज्ञासेही रचते हैं, जो लक्ष्मी सब भूतोंको महाश्री देती है ।। २९ ।। वह नारायणकी पत्नी मेरी आज्ञासे वर्तती है, जो देवी सरस्वती विपुल वाणी देती है ।। ३० ।।

सापीश्वरनियोगेन चोदिता संप्रवर्तते ।। याऽशेष पुरुषाघोरान्नरकात्तारयत्यपि ।। ३१ ।। सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायिनी ।। पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ।। ३२ ।। यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वच नानुगा ।। योऽनंतो महिमानंतः शेषोऽशेषाऽमरप्रभुः ।। ३३ ।। दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः ।। योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः ।। ३४ ।।

वहभी ईश्वरके नियोगसे प्रेरित हो वर्तती है जो अनेक पुरुषोंको नरकसे तारती है ।। ३१ ।। वह सावित्री देवी वशीभूत होतीहै जो पार्वती परमादेवी ब्रह्मविद्याकी विधान करनेवाली है ।। ३२ ।। ध्यान करनेवालोंको फल मेरेही आज्ञासे देती है जो अनन्त महिमावाले शेषजी देवाधिपति हैं।।३३।। वहभी देवदेवकी आज्ञासे पृथ्वीको शिरपर धारण करते हैं जो नित्य संवर्तक अग्नि वडवारूपसे स्थित है ।। ३४ ।।

पिबत्यखिलमंभोधिमीश्वरस्य नियोगत ।। आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ ।।३५।। अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छासनमधिष्ठिताः ।। गंधर्वा उरगा यक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।। ३६ ।।

वहभी ईश्वरहीकी आज्ञासे सब सागरको शोषता है, आदित्य वसु रुद्र मरुत अश्विनीकुमार ।। ३५ ।। और भी सब देवता मेरे शासनमें स्थित रहते हैं, गन्धर्व उरग यक्ष सिद्ध साध्य चारण ।। ३६ ।।

भूतरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयंभुवः ।। कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षणाः ।। ३७ ।। ऋत्वब्दमासपक्षाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापते ।। युगमन्वंतराण्येव ममतिष्ठंति शासने ।३८।

भूत राक्षस पिशाच सब स्वयंभूकी आज्ञामें स्थित हैं कला काष्ठा निमेष मुहूर्त दिवस ।। ३७ ।। ऋतु वर्ष महीना पखवारा युग मन्वतर सब परमात्माके शासनमें स्थित हैं ।। ३८ ।।

पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ।। चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।। ३९ ।। नियोगादेव वर्तंते सर्वाण्येव स्वयंभुवः ।। पत्तनानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।। ४० ।।

परा परार्द्ध जितने कालके भेद हैं, चार प्रकारके भूत स्थावर चर ।। ३९ ।। सब स्वयंभूके नियोगसे वर्तते हैं, सब पत्तन और भुवन उसीकी आज्ञासे वर्तते हैं ।। ४० ।।

ब्रह्मांडानि च वर्तंते देवस्य परमात्मनः ।। अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्मांडानि महाज्ञया ।। ४१ ।। प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समं ततः ।। ब्रह्मांडानि भविष्यंति सह वस्तुभिरात्मगैः ।। ४२ ।।

असंख्य ब्रह्माण्ड भी उस परमात्माकी आज्ञासे ही वर्तते हैं ।। ४१ ।। सब प्रवृत्त हुए पदार्थसमहोंके साथ ब्रह्मांड अपनी २ वस्तुओंके साथ होते हैं ।। ४२ ।।

हरिष्यंति सहैवाज्ञां परस्य परमात्मनः ।। भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।। ४३ ।। भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगान्मम वर्तते ।। याऽशेषसर्वजगतां मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।। ४४ ।।

वह सब परमात्माकी आज्ञाको वहन करते हैं, भूमि जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि ।। ४३ ।। भूतादि आदि प्रकृति यह सब मेरी आज्ञासेही वर्तते हैं, जो सम्पूर्ण जगत् और देहधारियोंकी मोहिनी है ।। ४४ ।।

मायापि वर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः ।। विधूय मोहकलिलं यथा पश्यति तत्पदम् ।। ४५ ।। सापि विद्या महेशस्य नियोगाद्वशवर्तिनी ।। बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।। ४६ ।।

मायाभी नित्य ईश्वरकी आज्ञासे वर्तती है जिसके द्वारा मोहको दूर कर तत्पद देखा जाता है ।। ४५ ।। यह विद्या महेशके नियोगसे वशवर्तिनी है, वहुत कहनेसे क्या है यह जगत् मेरी शक्त्यात्मक हैं ।। ४६ ।।

मयैव पूर्यते विश्वं मय्यैव प्रलयं व्रजेत् ।। अहंहि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ।। ४७ ।। परमात्मा परंब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ।। इत्येतत्परमं ज्ञानं भवते कथितं मया ।। ४८ ।।

मुझसे यह जगत् पूर्ण होकर अन्तमें लय करलिया जाता है, मैंही भगवान् ईश स्वयंजोति सनातन हूँ ।। ४७ ।। परमात्मा परब्रह्म हूँ मुझसे अधिक कोई नहीं है यह तुमको परज्ञान मैंने कथन किया है ।। ४८ ।।

ज्ञात्वा विमुच्यते जंतुर्जन्म संसारबंधनात् ।। मायामाश्रित्य जातोऽहं गृहे दशरथस्य हि ।। ४९ ।। रामोऽहं लक्ष्मणो ह्येष शत्रुघ्नो भरतोऽपि च ।। चतुर्धा संप्रभूतोऽहं कथितं तेऽनिलात्मज ।। ५० ।।

इसको जानकर प्राणी संसारके जन्ममरणसे छूट जाता है, मायाके आश्रित हो, मैं दशरथके यहां जन्म ले आया हूँ ।। ४९ ।। मैं ही राम लक्ष्मण शत्रुघ्न और भरत यह चार प्रकारसे अपने रूपको प्रकटकर स्थित हूँ ।। ५० ।।

मायास्वरूपं च तव कथितं यत्प्लवंगम।। *कृपया तद्धृदा धार्यं न विस्मर्तव्यमेव हि ।। ५१ ।। येनायं पठ्यते नित्यं संवादो भवतो मम ।। जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ५२ ।।

हे महावीर ! जो मैंने यह तुमसे रूप कथन किया है यह श्रद्धासे हृदयमें धारण करना भूलना नहीं ।। ५१ ।। जो यह हमारा संवाद नित्य पढेंगे वह जीवन्मुक्त हो सब पापोंसे छूट जायँगे ।। ५२ ।।

श्रावयेद्वा द्विजाञ्छुद्धान्ब्रह्मचर्यपरायणान् ।। यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम् ।। ५३ ।। यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ।। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्म लोके महीयते ।। ५४ ।।

जो ब्रह्मचर्यमें परायण ब्राह्मणोंको सुनावेंगे, वा जो इसका अर्थ विचारेंगे, वे परमगतिको प्राप्त होंगे ।। ५३ ।। जो अभियुक्त दृढव्रत हो इसे नित्य सुनेंगे वह सब पापरहित हो ब्रह्मलोकको प्राप्त होंगे ।। ५४ ।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः। श्रोतव्यश्चापि मंतव्यो विशेषादब्राह्मणैः सदा ।। ५५ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे भगवद्धनुमत्संवादो नाम चतुर्दशः सर्गः ।। १४ ।।

इस कारण सब प्रयत्नोंसे विद्वानोंको यह पढना और मनन करना चाहिये और विशेष कर ब्राह्मणोंको विचारना चाहिये ।। ५५ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वाल्मीकीये आदि. अद्भु. भाषाटीकायां भगवद्धनुमत्संवादो नाम चतुर्दशः सर्गः ।। १४ ।।

---

* श्रद्धया इति पाठ ।

पंचदश सर्ग

हनुमान्‌जीका रामचन्द्रकी स्तुति करना

ध्वात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना बद्धांजलिर्वायुसुतो महात्मा ।। ओंकारमुच्चार्य विलोक्य देवमंतः शरीरे निहितं गुहायाम् ।। १ ।। रामं महात्मानम कुंठशक्ति सनंदमुख्यैः स्तुतमप्रमेयम् ।। पुष्टाव च ब्रह्ममयैर्वचोभिरानंदपूर्णायितमानसः सन् ।। २ ।।

वह महात्मा महावीरजी हृदयमें ध्यान कर शिरसे प्रणामकर हाथजोडकर ओंकारका उच्चारण देवको देखकर जो प्राणियोंके हृदय की गुहामें स्थित हैं ।। १ ।। राम महात्मा अकुंठशक्ति सनन्दादि मुख्योंसे स्तुतिको प्राप्त होते हुए, अप्रमेय भगवान्‌को आनन्दसे पूर्णमन होकर ब्रह्ममय वचनोंसे प्रसन्न स्तुति करने लगे ।। २ ।।

त्वामेकमीशं पुराणं प्राणेश्वरं राममनन्तयोगम् ।। नमामि सर्वांतर-सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ।। ३ ।। पश्यंति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दांताः शांता विमलं रुक्मवर्णम् ।। ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परं च ।। ४ ।।

तुमही एक ईश पुरुष पुराण प्राणेश्वर अनन्तयोग सबके अन्तरमें स्थित हो, प्रचेतस पवित्र ब्रह्ममय पवित्रको नमस्कार करता हूँ ।। ३ ।। ब्रह्मयोनि आपको मुनिजन देखते हैं आप दान्त शान्त विगल रुक्मवर्ण हो, आत्मामें स्थित, परेसे परे तुमको महात्मा देखते हैं ।। ४ ।।

त्वत्तःप्रसूता जगतःप्रसूतिः सर्वात्मसृष्टेः परमाणुभूतः ।। अणो-रणीयान्महतोमहीयांस्त्वामेव सर्वे प्रवदंति संतः ।। ५ ।। हिरण्यगर्भो जगदंतरात्मा त्वत्तोऽधिजातः पुरुषः पुराणः ।। स जायमानो भवता विसृष्टो यथाविधानं सकलं ससर्ज ।। ६ ।।

आपसे सारा जगत् उत्पन्न होता है, आप सर्वात्मा, सृष्टिके परमात्मा भूत हो, सूक्ष्म, बडेसे बड़े, आपको सन्त महात्मा कहते हैं ।। ५ ।। हिरण्यगर्भ जगत्‌के अन्तरात्मा आप पुराणपुरुषसे सब जगत् उत्पन्न होता है, विराटने

आपसेही उत्पन्न होकर सब जगत्को उत्पन्न करके सब विधानको उत्पन्न किया है ।। ६ ।।

त्वत्तो वेदाः सकलाः संप्रवृत्तास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभंते । पश्यामि त्वां जगतो हेतुभूतं नृत्यं तं स्वे हृदये संनिविष्टम् ।। ७ ।। त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रं मायावी त्वं जगतामेकनाथः ।। नमामि त्वां शरणं संप्रपद्ये योगात्मानं चित्पतिं दिव्यनृत्यम् ।। ८ ।।

तुमसे ही सब वेद उत्पन्न हुए हैं, आपमें ही अन्तमें स्थितिको प्राप्त होते हैं, आपको जगत्का हेतुभूत मैं देखता हूँ, मेरे हृदयमें आप सदैव स्थित हों ।। ७ ।। आपहीसे सब ब्रह्माण्डचक्र घुमाया जाता है, आपही जगत्के एक नाथ हो, मैं आपके शरणमें प्राप्त हूँ, आप योगात्मा चित्पति दिव्य नृत्य रूप हो ।। ८ ।।

पश्यामि त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यंतं ते महिमानं स्मरामि ।। सर्वात्मानं बहुधा संनिविष्टं ब्रह्मानंदमनुभूयानुभूय ।। ९ ।।ओंकारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वामक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम् ।। त्वं त्वां सत्यंप्रवदंतीह संतः स्वयंप्रभं भवतो यत्प्रकाशम् ।। १० ।।

परमाकाशके मध्यमें विराजमान आपको देखता हूं, आप सर्वात्मा अनेक प्रकारसे संन्निविष्ट ब्रह्मानन्दको अनुभव करके आपको स्मरण करता हूँ ।। ९ ।। ओंकार आपका वाचक मुक्तिबीज है, आप अक्षर प्रकृतिमें गूढरूप हैं, उसे आप सत्यरूपका सन्त वर्णन करते हैं, आप स्वयं रूप प्रकाशमान हो ।। १० ।।

स्तुवंति त्वां सततं सर्वदेवा नमंति त्वामृषयः क्षीणदोषाः ।। शांतात्मानः सत्यसंधं वरिष्ठं विशंति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ।। ११ ।। एको वेदो बहुशाखो ह्यनंतस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।। संवेद्यं त्वां शरणं ये प्रपन्नास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ।। १२ ।।

आपकी निरन्तर सब देवता स्तुति करते हैं, क्षीणदोष ऋषि आपको नमस्कार करते हैं, शान्ताराम सत्यसन्ध वरिष्ठ आपमें ब्रह्मनिष्ठ यति प्रवेश करते हैं ।। ११ ।। एकही वेद बहु शाखावाला अनन्त है, आपको ही एक रूप बोधित करते हैं, जानने योग्य आपकी शरणमें जो हुए हैं उन्हींको सदा शान्ति है अन्योंको नहीं ।। १२ ।।

भवानीशोऽणिमादिमां स्तेजोराशिर्ब्रह्मविश्वं परमेष्ठी वरिष्ठः ।। आत्मानंदं चानुसूयानुशेते स्वयंज्योतिवचनो नित्यमुक्तः ।। १३ ।।

एको देवस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः ।। त्वय्ये-वास्ते विलयं विंदतीदं नमामि त्वां शरणं त्वां प्रपन्नः ।। १४ ।।

भवानीपति अणिमादिमान तेजकी राशि विश्व परमेष्ठी वरिष्ठ आत्मानन्द अनुभव करता स्वयंज्योति वचन नित्य सबमें स्थित है ।। १३ ।। एकही आप देव सब विश्वको करते हो आप अखिल विश्वरूपकी पालना करते हो अन्तमें विश्व आपहीमें लीन होता है, मैं शरणमें प्राप्त हुआ आपको नमस्कार करता हूँ ।। १४ ।।

त्वामेकमाहुः परमं च रामं प्राणं बृहंतं हरिमित्रमीशम् ।। इन्दुं मृत्युमनलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ।। १५ ।। त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।। त्वमव्ययः शाश्वतो धर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ।। १६ ।।

हे राम आपहीको परम प्राणदाता हरि मित्र ईश कहते हैं, चन्द्रमा पवन चेकितान धाता आदित्य अनेकरूप हो ।। १५ ।। आपही परम, अक्षर जानने योग्य हो, आपही इसके परिधान हो, आपही अविनाशी शाश्वत धर्मके गोप्ता सनातन उत्तम पुरुष हो ।। १६ ।।

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः ।। त्वं विश्वनाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ।। १७ ।। त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।। चिन्मात्र-मव्यक्तमचिंत्यरूपं खं ब्रह्मशून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च ।। १८ ।।

आपही विष्णु चतुरानन हो आप रुद्र भगवान् ईश हो, आप विश्वकी नाभी प्रकृति प्रतिष्ठा सर्वेश्वर परमेश्वर हो ।। १७ ।। आपही पुराणपुरुष एक सूर्यवर्ण अन्धकार से परे हो चिन्मात्र अव्यक्त अचिन्त्यरूप खं ब्रह्म शून्य प्रकृति निगुण हो ।। १८

यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।। किमप्यचिंत्यं तव रूपमेकं यदंतरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ।। १९ ।। योगेश्वरं रूपमन-न्तशक्ति परायणं ब्रह्मतनुं पवित्रम् ।। नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते प्रसीद ।। २० ।।

जिसके अन्तरमें यह सब जगत् प्रकाश करता है जो अविनाशी निर्मल एकरूप है, यह आपका रूप अचिन्त्य तत्त्ववाला है, और प्रकाशवान् है ।। १९ ।।

योगेश्वररूप अनन्तशक्ति प.ायण ब्रह्मतनु पवित्रको शरणकी इच्छावाले हम सब नमस्कार करते हैं, हे भूताधिपते ! प्रसन्न हूजिये ।। २० ।।

त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषं संसारबीजं विलयं प्रयाति ।। मनो नियम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयाम्येकरसं भवंतम् ।। २१ ।। नमोऽस्तु रामाय भवोद्भवाय कालाय सर्वैकहराय तुभ्यम् ।। नमोऽस्तु रामाय कपर्दिने ते नमोऽग्नये दर्शय रूपमग्र्यम् ।। २२ ।।

आपके चरणकमलके स्मरणसे सब संसारके बीज जन्ममरण नष्ट हो जाते हैं, मनको रोक कायाको प्रणिधान कर एकरस आपको मैं प्रसन्न करता हूं ।। २१ ।। संसारके उत्पत्तिकारण, सबके उत्पन्न करनेबाले कालरूप एक हरनेवाले आपको प्रणाम है, राम कर्दपि अग्निरूप आपको प्रणाम है, आप अग्न्यरूप हो ।। २२ ।।

ततः स भगवान्रामो लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।। संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवत्स्वयम् ।। २३ ।। स तस्य स्तवमाकर्ण्य वायुपुत्रस्य धीमतः ।। प्राह गम्भीरया वाचा हनूमन्तं रघूत्तमः ।। २४ ।।

तब भगवान् राम अपना लक्ष्मणसहित रूप छिपाकर प्रकृतिमें स्थित होते हुए ।। २३ ।। तब वायुपुत्रका यह वचन सुनकर रामचन्द्र गम्भीर वचनसे कहने लगे ।। २४ ।।

स्तोष्यंति येऽनया स्तुत्या ते यास्यंति परां गतिम् ।। स्थिरो भव हनूमंस्त्वं कार्यमौपायिकं कुरु ।। २५ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे हनुमत्कृतस्तवराजे पञ्चदशः सर्गः ।। १५ ।।

जो इस स्तोत्रसे स्तुति करेंगे वे परमगतिको प्राप्त होंगे, हे महावीर ! आप स्थित होकर उपाययुक्त कार्य करो ।। २५ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी. आदि. अद्भुतोत्तरकाण्डे ज्वालाप्रसाद मिश्रभाषाटीकायां हनुमत्कृतस्तवराजे पंचदशः सर्गः ।। १५ ।।

षोडश सर्ग

रामचन्द्रका रावणको मार राज्य पाना

रामः प्रत्याह च पुनर्हनूमन्तं महाद्युतिः ।। रक्षसा मे हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।। १ ।। सुग्रीवेण समं सख्यं कारयाद्य प्लवङ्गम ।। हसित्वा मधुरं वीरो हनूमानब्रवीद्वचः ।। २ ।।

तब फिर रामचन्द्रजी महावीरसे कहने लगे, कि हे महावीर ! दुरात्मा रावणने हमारी भार्याको हरण कर लिया है ।। १ ।। हे वानरश्रेष्ठ ! सुग्रीवके साथ हमारी मित्रता करा दो, तब मधुर हँसकर महावीरजी कहने लगे ।। २ ।।

तव भार्या महाभाग रावणेन हृतेति यत् ।। विश्वं यथेदमाभाति तथेदं प्रतिभाति मे ।। ३ ।।तथापि प्रभुणादिष्टं कार्यमेव हि किंकरैः ।। इत्युक्त्वा हनुमांस्तूर्णं प्रसन्नेनांतरात्मना ।। ४ ।।

हे महाभाग ! आपकी भार्याको रावणने हरण किया है जैसा यह विश्व विदित होता है इसी प्रकारसे हो ।। ३ ।। तौभी जो आपने आज्ञा दी है वह दासोंको अवश्य करनी चाहिये, यह कह प्रसन्न हो शीघ्रतासे महावीर ।। ४ ।।

आरोप्य स्कंधयोर्वीरौ सुग्रीवांतिकमानयत् ।। तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो सुग्रीवो वानरोत्तमः ।। ५ ।। वालिनं तं जितं मेने प्राप्त मेने रुमां स्त्रियम् ।। सख्यं चकाररामेण दिष्टचादिष्टचेति चाब्रवीत् ।। ६ ।।

दोनोंको कंधेपर चढाकर सुग्रीवके समीप ले आये, वानरोत्तम सुग्रीव उन दोनोंको देखकर ।। ५ ।। अपनी रुमास्त्रीको प्राप्त और वालीको जीता हुआ मानने लगा, और अपने भाग्यकी सराहना कर रामके साथ मित्रता की ।। ६ ।।

वालिनो विलयं कृत्वाराज्यं चास्मै निवेद्य च ।। नानादेश्यान्वानरांश्च आनाय्य रघुनन्दनौ ।। ७ ।। हनूमदंगदारूढौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।। सिंधौस्तटं तौ ययतुः सुग्रीवेण सह प्रभुः ।। ८ ।।

वालीको मार सुग्रीवको राज्य दे, देश-देशान्तरोंसे वानरोंको बुलाया ।। ७ ।। हनुमान् और अंगदके ऊपर राम लक्ष्मण चढकर सुग्रीवके साथ सागरके तटपर गये ।। ८ ।।

पारेसमुद्रं लंकां च निरूप्याह रघू त्तमः ।। वानरा हि यथा यांति लंकांलक्ष्मण तत्कुरु ।। ९ ।। रामस्य वचनं श्रुत्वा समुद्रं प्राह लक्ष्मणः । सिंधो त्वं स्तभ यात्मानं यथा यास्यंति वानराः ।।१०।।

सागरके पार लंकापुरीको देखकर रामचन्द्र कहने लगे, हे लक्ष्मण ! जिस प्रकारसे हमं लंकाके निकट पहुँचे तैसा करो ।। ९ ।। रामचन्द्रके वचन सुनकर लक्ष्मण समुद्रसे कहने लगे, हे सागर ! अपनी आत्माको स्तंभित कर तो तेरे ऊपर वानर चले जायँगे ।। १० ।।

सिन्धुस्तु प्रभुणादिष्टं न शुश्राव यदा । तदा लक्ष्मणः क्रोधसंदीप्तः पपाताब्धेर्जलांतरे ।। ११ ।। तद्देह-वह्निशिखया शुशोष जलधेर्जलम्। यादांसि स्थलभाजीनि देवा भीत दिशोऽद्रवन् ।। १२ ।।

जब सागर प्रभुके वचनोंको न सुनता हुआ तब लक्ष्मणजी क्रोधकर सागरमें कूद पडे ।। ११ ।। और अपने देहकी ज्वालासे सागरका जल सोखने लगे, सब जलजीव व्याकुल होगये और देवता भयभीत हो दिशाओंके अन्तमें पलायन कर गये ।। १२ ।।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वानरा विस्मयं गताः । हाहाकारं प्रचुक्रुस्ते लोकाः सर्व चराचराः ।। १३ ।। ऋषयो भूतसंघाश्च स्वस्तिस्वस्तीति चाब्रुवन् । राघवो लक्ष्मणं प्राह नैतद्युक्तं त्वया कृतम् ।। १४ ।।

उस महा आश्चर्यको देखकर वानर आश्चर्यको प्राप्त हुए और सब चराचर लोक हाहाकार करने लगे ।। १३ ।। ऋषि और दूसरे प्राणी स्वस्ति २ कहने लगे तब राम लक्ष्मणसे कहने लगे यह तुमने अच्छा नहीं किया ।। १४ ।।

पुनरेनं पूरयाम सीताविरहजेन वै । अश्रुणेति प्रतिज्ञाय तं तथा-पूरयत्प्रभुः ।। १५ ।। रामोपरि तदाकाशात्पुष्पवृष्टिः पपात ह लोकाश्च सुस्थिता आसंश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ।। १६ ।।

अब सीताके वियोगसे उत्पन्न हुए आंसुओंसे फिर इसको पूर्ण करूँगा तब यह कहकर प्रभुने उसको पूर्ण कर दिया ।। १५ ।। तब आकाशसे रामचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, लोक स्वस्थ हुए और वारम्वार विचार करने लगे ।। १६ ।।

सिंधुना संस्तुतो रामः सेतु सिंधौ बबंध ह । लंकायां रावणं हत्वा सगणं मधुसूदनः ।। १७ ।। आरोप्य पुष्पके सीतां विभीषणसहायवान् । अयोध्यामगमद्रामः सुग्रीवहनुमदादिभिः ।। १८ ।।

फिर सिंधुसे स्तुतिको प्राप्त हो रामचन्द्रने सागरमें सेतु बांधा और लंकापुरी जाय गणोंसहित रावणको मारकर ।। १७ ।। विभीषणको साथ ले पुष्पक विमानमें सीताको बैठाया सुग्रीव हनुमदादिके सहित रामचन्द्र अयोध्याको चले ।। १८ ।।

आनंदे योजयामास भ्रातॄन्मातृश्च बांधवान् । राजा सर्वस्य लोकस्य प्रजानामनुरंजनः ।। १९ ।। रामं राजानमासाद्य तिर्यञ्चोऽपि ययुर्मुदम् । देवदुन्दुभयो नेदुः सर्वदा हि नभस्तले । ववृषुर्जलदाः काले पुष्पवृष्टिः पपात च ।। २० ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे ज्वाला-
प्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां रामराज्योपलंभनं नाम षोडशः सर्गः ।। १६ ।।

भ्राता माता और बांधवोंको आनन्दमें युक्त किया, वह सब लोकके राजा प्रजाके आनन्द देनेवाले हुए ।। १९ ।। रामचन्द्र राजाको प्राप्त होकर पशु पक्षी भी प्रसन्न हुए, सर्वदा आकाशमें देवदुन्दुभी बजने लगी, समयपर मेघवर्षा और फूलोंकी वर्षा होने लगी ।। २० ।।

इत्यार्षे श्रीम. वाल्मी. आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकांडे रामराज्योपलंभनं
नामषोऽशः सर्गः ।। १६ ।।

सप्तदश सर्ग

जानकीवचन सहस्रमुख रावणका वृत्तान्त

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां क्षये कृते ।। आजग्मुर्मुनयस्तत्र राघवं प्रति नंदितुम् ।। १ ।। विश्वामित्रो यवक्रीतो रैभ्यश्चवन एव च ।। कण्वश्च मुनिशार्दूलो ये पूर्वा दिशमाश्रिताः ।। २ ।।

जिस समय राक्षसोंका वध हो चुका और रामचन्द्रको राज्य मिला तब रामचन्द्रको अभिनन्दन करनेके निमित्त मुनिजन आये ।। १ ।। विश्वामित्र-

यवक्रीत, रैभ्य, च्यवन, मुनिश्रेष्ठ कण्व जो पूर्वदिशाके रहनेवाले ऋषि थे वे आये ॥ २ ॥

स्वस्त्यात्रेयश्च नमुचोऽरिमुचोगस्त्य एव च ॥ आजग्मुर्मुनयस्तत्र ये श्रिता दक्षिणां दिशम् ॥ ३ ॥ उपगुः कामठो धूम्रो रौद्राश्वो मुनिपुंगवः ॥ आजग्मुर्मुनयस्तत्र ये प्रतीचीं समाश्रिताः ॥ ४ ॥

स्वस्तिआत्रेय, नमुच, अरिमुच, अगस्त्य यह दक्षिणदिशाके रहनेवाले मुनि आकर प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ उपगु, कामठ, धूम्र, रौद्राश्व, मुनिश्रेष्ठ यह पश्चिम, दिशाके रहनेवाले महात्मा ऋषि आकर प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

शिष्योपशिष्यसहिता वसिष्ठप्रमुखर्षयः ॥ आजग्मुर्हि महात्मानं उत्तरां दिशमाश्रिताः ॥५॥ प्राप्य ते तु महात्मानो राघवस्य निवेशनम् ॥ गृहीत्वा फलमूलानि हुताशसमविग्रहाः ॥ ६ ॥

शिष्य उपशिष्य आदिके सहित वसिष्ठ आदि ऋषि उत्तरादिशाके रहनेवाले आकर प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ यह सब महात्मा रामचन्द्रके स्थानमें आकर प्राप्त हुए फल मूल ग्रहण किये अग्निके समान शरीरवाले ॥ ६ ॥

राघवं प्रतिनंद्याथ विविशुः परमासने ॥ राघवश्च महातेजाः सीतया सह सुव्रत ॥ ७ ॥ भ्रातृभिर्मंत्रिभिः सार्द्धं पौरैः श्रेणिमुखैस्तथा ॥ विनीत उपसंगम्य पूजयामास तान्मुनीन् ॥ ८ ॥

रामचन्द्रको अभिनंदन कर परमासनमें स्थित हुए, महातेजस्वी रामचन्द्रजी जानकीके सहित ॥ ७ ॥ भाई और मंत्रियोंके साथ तथा पुरवासी जनोंके साथ नम्रतासे उन मुनियोंसे मिल उनकी पूजा करते हुए ॥ ८ ॥

अगस्त्यप्रमुखा विप्रा दिष्टया दिष्ट्येति चाब्रुवन् ॥ राघवं प्रशशंसुस्ते मुनयो वाग्विदां वराः ॥ ९ ॥ त्वं हि देवो जगन्नाथो जगतामुपकारकः ॥ रावणस्य सपुत्रस्य सामात्यस्य बधात्प्रभो ॥ १० ॥

और वाणी बोलनेमें चतुर से अगस्त्यादि महाऋषि धन्य हो धन्य हो इस प्रकार कहकर रामचंद्रकी प्रशसा करने लगे ॥ ९ ॥ हे देव जगन्नाथ ! तुमही जगत्के उपकार करनेवाले हो, हे प्रभो ! पुत्र अमात्य जनोंके सहित रावणका वध करनेसे ॥ १० ॥

जगदेतन्महाबाहो पुनर्जातमिवाभवत् ।। न रावणादभ्यधिको दुष्टो लोकभयंकरः ।। ११ ।। दशास्यैर्दशदिक्कार्यमाज्ञापयति राक्षसः ।। स दशास्यो हतो राम दिष्ट्या च जगदुद्धृतम् ।। १२ ।।

मानो यह जगत् फिर उत्पन्न हुआ है, रावणसे अधिक लोगोंको भयदायक कोई दुष्ट नहीं था ।। ११ ।। इस राक्षसकी दशोंदिशाओंमें आज्ञा प्रचलित होती थी, भाग्यसे उसको मारकर आपने जगत्का उद्धार किया ।। १२ ।।

भगवानसि भूपाल ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ।। पुंडरीकविशालाक्षः श्याम आजानुबाहुकः ।। १३ ।। अयोध्यायां प्रादुरभूदिक्ष्वाकुकुलनंदनः ।। त्वद्दर्शनान्महाबाहो निवृताःस्मो वयं प्रभो ।। १४ ।।

हे राम ! आप प्रथम ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेसे भूपालरूप धारण कर आये हो, आपके कमलकेसे बडे नेत्र हैं, श्यामशरीर जानुपर्यन्त लम्बी भुजा हैं । १३ । इक्ष्वाकुकुलके आनन्द देनेको आप आयोध्यामें प्रगट हुए हो, हे प्रभो ! आपके दर्शनसेही हम आनन्दित हो गये ।। १४ ।।

तपश्चरामः सहितास्त्वत्प्रसादाद्वनेवने ।। किंतु सीता महादेवी प्राप दुखं महत्प्रभो ।। १५ ।। तदेव स्मर्यमाणं सच्चित्तमुद्वेजयेद्धि नः ।। एवमुक्ते तु मुनिभिः सानुक्रोशं पुनः पुनः ।। १६ ।।

आपके प्रसादसे वन वनमें निर्भयतप करते हैं, हे प्रभो ! परन्तु सीतादेवीने महादुःख पाया है ।। १५ ।। यही स्मरण करनेसे हमारा चित्त उद्वेजित है, जब दयासे वारम्वार मुनिजनोंने यह वचन कहे ।। १६ ।।

जहास मधुरं साध्वी सीता जनक नंदिनी ।। उवाच सस्मितं देवी तान्मुनीन्मितभाषिणी ।। १७ ।। मुनयो यद्यदुक्तं हि रावणस्य वधं प्रति ।। परिहास इवाभाति प्रशंसनमिदं द्विजाः ।। १८ ।।

तब जनकनंदिनी साध्वी सीता हँस पडी और हँसती हुई देवी उन मुनियोंसे कहने लगी ।। १७ ।। जो कुछ मुनियोंने रावणके वधके प्रति कहा है हे ब्राह्मणो ! यह प्रशंसा परिहास कहलाती है ।। १८ ।।

रावणो हि दुराचारः सत्यमेतन्न संशयः ।। दशभिर्वदनैर्वीरो जगदुद्वेजको हि सः ।। १९ ।। दशास्यस्य वधो विप्रा न प्रशंसामिहार्हति ।। एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो विस्मयं परमं गताः ।। २० ।।

रावण बडा दुराचारी था यह सत्य है और इसमें सन्देह नहीं है, वह अपने दशवदनोंसे जगत्का उद्वेजन करनेवाला था ।। १९ ।। परन्तु हे ब्राह्मणो ! रावणका वध कुछ विशेष प्रशंसाके योग्य नहीं है यह वचन सुनकर मुनि परम विस्मयको प्राप्त हुए ।। २० ।।

किमेतदिति होचुस्ते परस्परमुखेक्षणाः ।। अयोनिसंभवा सीता काकुत्स्थकुलमाश्रिता ।। २१ ।। अस्मानपिजहासेयं किमेतन्नैव विद्महे ।। तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।। २२ ।।

और यह क्या है ऐसा कह परस्पर एक दूसरेका मुख देखने लगे, अयोनिसे उत्पन्न हुई सीता इक्ष्वाकुवंशके आश्रित हुई ।। २१ ।। हमारे वचनोंपर हास्य करती है इसका कारण हम नहीं जानते हैं तब उन ज्ञानात्मा मुनियोंके यह वचन सुनकर ।। २२ ।।

सीता भीता प्रणम्योचे कृतांजलिपुटा सती । पृथग्जनेव* मुनयो नाहमनृतभाषिणी ।। २३ ।। यदि चाज्ञापयथ मां तदा वक्ष्यामि चादितः ।। अगस्त्यप्रमुखा विप्राः सीताया विनयान्वितम् ।। २४ ।।

जानकी डरती हुई प्रणाम कर कहने लगी हे मुनियो ! मैं पामर मनुष्योंके समान असत्यभाषिणी नहीं हूँ ।। २३ ।। जो आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आदिसे कहती हूँ, तब अगस्त्यादि ऋषि जानकीके यह विनययुक्त वचन ।। २४ ।।

आकर्ण्य वचनं प्रीताः प्रोचुस्ते कथ्यतामिति ।। ततः सीता महाभागा प्रवक्तुमुपचक्रमे ।। २५ ।। पतिं मुनीन्देवरांश्च मंत्रिणः श्रेणिमुख्य-कान् ।। विनयेनाभ्यनुज्ञाप्य पूर्ववृत्तांतमादरात् ।। २६ ।।

सुनकर जानकीसे कहने लगे वर्णन करो तब महाभागा जानकी कहनेकी इच्छा करने लगी ।। २५ ।। पति मुनि देवर मन्त्री और और श्रेणीके मुख्य लोगोंसे आज्ञा ले पूर्ववृत्तान्त वर्णन करने लगी ।। २६ ।।

पूर्वं विवाहान्मुनयो यदास पितृमंदिरे ।। तदैकोऽतिथिरूपेण ब्राह्मणः समुपागतः ।। २७ ।। आगत्य पितरं मह्यं तमुवाच द्विजोत्तमः ।। चतुरो वार्षिकान्मासान्स्थास्यामि तव मंदिरे ।। २८ ।।

हे मुनियो ! विवाहसे पूर्व जब मैं अपने पिताके मंदिरमें रहती थी तब

---

* पामर इव संधिरार्षः ।

अतिथिरूप वहां एक ब्राह्मण आया ॥ २७ ॥ वह ब्राह्मण आकर मेरे पितासे कहने लगा मैं चौमासेके चार महीने तुम्हारे मंदिरमें रहूंगा ॥ २८ ॥

यदि सेवापरो नित्यं भवस्यमरसन्निभः ॥ जनको मत्पिता देवद्विजभक्तिपरायणः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणं वासयामास नानाभक्ष्यं समादिशत् । अहं च तस्य सेवार्थं नियुक्ता धर्मभीरुणा ॥ ३० ॥

हे राजन् ! जो नित्य मेरी सेवामें तत्पर रहोगे तो, देवताहो जावोगे हमारे पिता जनकजी द्विज और देवताकी भक्तिमें परायण हैं ॥ २९ ॥ उस ब्राह्मणको नाना प्रकारके भक्ष्य भोज्यकी सामग्री प्रदान की गई; और धर्मभीरु हमारे महाराजने मुझे उसकी सेवा करनेको नियुक्त किया ॥ ३० ॥

यदा यथाज्ञापयति द्विजः स परमार्थवित् । तं तथा ह्यकरवं तत्र रात्रिंदिवमतन्द्रिता ॥ ३१ ॥ नानातीर्थाभिगमनं कृतं तेन महात्मना। तत्रत्याश्च कथाश्चित्राः श्रावयामास मां द्विजः ॥ ३२ ॥

परमार्थका जाननेवाला वह ब्राह्मण जो जो आज्ञा देता, वह मैं रातदिन निरालस्य होकर सम्पादन करती थी ॥ ३१ ॥ उस महात्माने अनेक तीर्थोमें अभिगमन किया था, वहां उस ब्राह्मणने मुझे अनेक प्रकारकी कथा श्रवण कराई ॥ ३२ ॥

सेवया मम धैर्येण चानुकूल्येन तर्पितः । कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः प्रियभाषी यदात्थ माम् ॥ ३३ ॥ तद्वोऽहमभिधास्यामि शृणुत द्विज-पुंगवाः । एकदा प्रातरुत्थाय कृतमैत्रः कृताह्निकः ॥ ३४ ॥

मेरी सेवा, धैर्य और अनुकूलतासे तृप्त होकर एक समय वह प्रियभाषी श्रेष्ठ ब्राह्मण मुझसे कहने लगा ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह मैं तुमसे वर्णन करती हूं एक समय ब्राह्मण प्रातःकाल उठकर सूर्यार्घादि कर्म कर ॥ ३४ ॥

सीते इति समाभाष्य प्रवक्तुमुप चक्रमे । शृणु सीते मया दृष्टमाश्चर्यं कमलानने ॥ ३५ ॥ दधिमंडोदकाब्धेश्चय परः स्वादूदकोब्धिकः । पुष्करद्वीपमावृत्य वर्तते वलया कृतिः ॥ ३६ ॥

हे सीते ! ऐसा संबोधन देकर कहनेकी इच्छा करने लगा, हे कमलानने जानकी, जो आश्चर्य मैंने देखा है वह सुन ॥ ३५ ॥ दही मांड और जलके सागरसे परे स्वादु जलका समुद्र है, वह पुष्करद्वीपको घेरकर वलयाकार स्थित हुआ है ॥ ३६ ॥

पुष्करं पुष्करे दृष्टं महावह्निशिखोज्ज्वलम् । पत्रायुतायुतयुतं ब्रह्मणः परमासनम् ।। ३७ ।। तद्द्वीपवर्षयोर्मध्ये मानसोत्तरसंज्ञकः । मर्यादापर्वतो दैर्घ्ये चायामेऽयुतजोजनः ।। ३८ ।।

वहां महाकमल अग्निशिखाके समान प्रकाशित है दश सहस्र कर्णिकायुक्त ब्रह्माजीका परमासन है ।। ३७ ।। उस द्वीप और वर्षके बीचमें मानसोत्तर संज्ञावाले मर्यादापर्वत लम्बाई चौडाईमें दशसहस्र योजनके हैं ।। ३८ ।।

तच्छैलस्य चतुर्दिक्षु इंद्रादीनां पुराणि हि । क्रीडार्थं निर्मितान्येषां महांति विश्वकर्मणा ।। ३९ ।। सुमाली राक्षसश्रेष्ठ कैकसी नाम तत्सुता । मुनेर्विश्रवसः पत्नी सासूत रावणद्वयम् ।। ४० ।।

उस पर्वतकी चारों दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंके पुर हैं विश्वकर्माने उनको क्रीडाके निमित्त निर्माण किया है ।। ३९ ।। एक राक्षस श्रेष्ठ सुमाली जिसकी कैकसी नाम कन्या थी, वह विश्रवस मुनिकी पत्नी दो रावण उत्पन्न करती हुई ।। ४० ।।

एकः सहस्रवदनो द्वितीयो दशवक्रकः । जन्मकाले सुरैरुक्तमाकाशे रावणद्वयम् ।। ४१ ।। लोकानां रावणाज्जातं नामयौगिकमेतयोः ।। कनिष्ठो दशकंठोऽयं शितिकंठप्रसादतः ।। ४२ ।।

एक सहस्रमुखका, दूसरा, दशमुखका था, जन्मकालमें आकाशमें देवताओंने कह दिया था कि रावण दो हैं ।। ४१ ।। लोकमें दो रावण हुए हैं इस कारण उनका एकही नाम था उनमें छोटा यह शिवजीके प्रसादसे ।। ४२ ।।

लंकामधिवसत्येष धनदेन विनिर्मिताम् । ब्रह्मणो वरदानेन त्रिलोकीमवमन्यते ।। ४३ ।। श्रेष्ठः सहस्रवदनो रावणो लोकरावणः । स्वाभाविकबलेनासौ पुष्करद्वीपमाश्रितः ।। ४४ ।।

कुबेरकी निर्मित की हुई लंकापुरीमें निवास करता है और ब्रह्माके वरदानसे त्रिलोकीका तिरस्कार करता है ।। ४३।। इसमें जो लोकका रुवानेवाला था उसने स्वाभाविक बलसे पुष्करद्वीपका आश्रय किया है ।। ४४ ।।

सूर्याचन्द्रमसौ गृह्य क्रीडेत्कंदुकलीलया ।। कुलाचलान्समुद्गृह्य कंदुकं क्रीडते हि सः ।। ४५ ।। मानसोत्तरशैलस्य चतुर्दिक्षु पुराणि हि ।। आच्छिद्य संगृहीतानि दिगीशानां महात्मनाम् ।। ४६ ।।

यह चन्द्र सूर्यको ग्रहण कर कंदुकलीला कर सकता है तथा कुलाचल पर्वतोंको लेकर कंदुकक्रीडा करता है ।। ४५ ।। जो मानस सरोवरके उत्तर चारों ओर पुर हैं उनको छेदनकर महात्मा दिक्पालोंको ग्रहण किया है ।। ४६ ।।

तत्रैव रमते राजा मातामहकुलैः सह ।। तत्रैंद्री या पुरी रम्या स स्वयं तत्र तिष्ठति ।। ४७ ।। अन्यान्यन्येभ्य एवादान्मंत्रिभ्यो राक्षसाधिपः ।। विशेषतोऽलंकृता सा पुरी परमदुर्लभा ।। ४८ ।।

वहां वह राजा मातामहके कुलसहित रमण करता है वहां एक इंद्रकी पुरी है जहां वह स्वयं स्थित हो रमता है ।। ४७ ।। उस राक्षसराजने अनेकोंको मंत्रिपद प्रदान किया है, विशेष करके वह पुरी प्राणियोंको परम दुर्लभ है । ४८ ।

जगतां सारमाकृष्य यथास्थानं सुमंडिता ।। चंपकाशोकमन्दारकदलीप्रियकार्जुनैः ।। ४९ ।। पाटलाशोकजंबूभिः कोविदारैश्च चंदनैः ।। पनसैः सालतालैश्च तमालैर्देवदारुभिः ।। ५० ।।

जगत्के सार खेंचकर उसको निर्माण किया है, चम्पक अशोक मन्दार कदली प्रिय अर्जुन ।। ४९ ।। पाटल अशोक जम्बू कोविदार चन्दन पनस साल तमाल ताल देवदारु ।। ५० ।।

बकुलैः पारिजातैश्च कल्पवृक्षैरलंकृता ।। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।। ५१ ।। दिव्यगन्धरसैर्दिव्यैः सर्वर्तुफलसंयुतैः ।। भ्रमरैः कोकिलैर्नानावर्णपक्षिभिरुज्ज्वला ।। ५२ ।।

बकुल पारिजात तथा कल्पवृक्षोंसे अलंकृत और भी सब ऋतुओंके फूलोंसे युक्त ।। ५१ ।। दिव्य गन्धरसोंसे युक्त सम्पूर्ण ऋतुओंके फलसे संयुक्त भौंरे कोयल और जहां नाना पक्षी बोल रहे हैं ।। ५२ ।।

शातकौंभमयैः कैश्चित्कैश्चिदग्निशिखोपमैः ।। नीलांजलनिभैश्चान्यैः शोभिता वरपादपैः ।। ५३ ।। दीर्घिकाः सति बह्वयोऽत्र जल पूर्णा महोदयाः ।। महार्हमणिसोपानाः स्फाटिकांतरकुट्टिमाः ५४

कहीं सुवर्णके बने कहीं अग्निके शिखाके समान कहीं नीलांजन पर्वत उज्ज्वल पर्वतोंसे शोभित हैं ।। ५३ ।। जहां जलसे अनेक बावडी शोभित हैं जहां महा महामणियोंकी जटिल सीढी वनी हैं ।। ५४ ।।

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशो–भिताः दात्यूहगणसंघुष्टा

हंससारसनादिताः ।। ५५ ।। तत्र तत्रावनेर्देशा वैडूर्यमणिसन्निभाः ।। शार्दूलैः परमोपेताः सुखार्थमुपकल्पिताः ।। ५६ ।।

फूले पद्म-उत्पलके वनके वन है, उनपर चकवाचकवी शोभित हैं, पक्षीगणोंसे नादित है ।। ५५ ।। उस वनके देश जहां तहां वैड्र्यमणियोंसे शोभित, शार्दूललोंसे युक्त जो सुखके निमित्त कल्पि किये हैं ।। ५६ ।।

सर्वर्तुसुखदा रम्याः पुंस्कोकिलकला रवाः ।। ये वृक्षा नंदनेऽतिष्ठन् ये च चैत्रवने स्थिताः ।। ५७ ।। मन्दरेऽन्येषु शैलेषु ते वृक्षास्तत्र संस्थिताः ।। नानामणिमयी भूमिर्मुक्ताजालमयी तथा ।। ५८ ।।

सबऋतुओंमें सुख देनेवाले पुंस्कोकिलाके शब्दोंसे युक्त जो वृक्ष नन्दनवनमें स्थित हैं जो चैत्रवनमें स्थित हैं ।। ५७।। जो वृक्ष मन्दराचलपर स्थितहैं जो भूमि नानामणिमय मुक्ताजालमयी ।। ५८ ।।

विचित्रबद्धसोपानप्रासादैरुपशोभिता ।। पुरद्वारसमाकीर्णा पुरी परमशोभना ।। ५९ ।। न देवैरनुभूयेत स्वर्गिभिर्नानुभूयते ।। तत्पुरीस्थितिमाकांक्ष्य तपः कुर्वन्ति सत्तमाः ।। ६० ।।

विचित्र सीढियोंसे महलोंसे शोभित पुरद्वारोंसे आकीर्ण पुरी शोभित है ।।५९।। जिसका देवता और स्वर्गी भी अनुभव नहीं कर सकते उस पुरीमें स्थितिके निमित्त महात्मा तप करते हैं ।। ६० ।।

तस्यां सहस्रवदनो रावणो राक्षसाधिपः ।। आस्ते जगद्वशीकृत्य हेलया बाहु लीलया ।। ६१ ।। इंद्रादींस्त्रिदशान्सर्वान्गले बद्ध्वा स किन्नरान् ।। गन्धर्वान्दानवान्भीमान्सर्पान्विद्याधरांस्तथा ।। ६२ ।।

उसका राजा वह सहस्र मुखका रावण है, और सब जगत्को अपनी भुजाओंसे वश करके स्थित होता है ।। ६१ ।। वह इन्द्रादि देवताओंको किन्नरों गन्धर्वो दानव भयंकर सर्प और विद्याधरोंको पराजय कर ।। ६२ ।।

बालक्रीडनया क्रीडन्मेरुं मन्येत सर्षपम् ।। गोष्पदं मन्यते चाब्धि सर्वलोकांस्तृणोपमान् ।।६३।। द्वीपांल्लोष्टसमान्वीरो न किंचिद्गणयन्दृशा ।। स यदा सर्वलोकानां त्रासने समुपारभत् ।। ६४ ।।

उनसे बालक्रीडाके समान खेल करता हुआ मेरुको सरसोंके समान मानता है सागरको गौके पदके समान और सब लोक को तृणके समान ।।६३।। द्वीपोंको

मट्टीके ढेलेके समान मानता है और वीरोंको तो कुछ गिनताही नहीं है जब उसने सब लोकोंको त्रास देना आरंभ किया ।। ६४ ।।

तदा पितामहोऽभ्येत्य पुलस्त्यो विश्रवास्तथा ।। न्यवारयन्यत्न-स्ततं तातवत्सेति भाषकः ।। ६५ ।। एवं स रावणो देवि सहस्र वदनो महान् ।। पुष्करद्वीपमासाद्य वर्तते जनकात्मजे ।। ६६ ।।

तब पितामह पुलस्त्य और विश्रवाने आकर तात वत्स आदि सम्बोधन देकर यत्नसे उसे निवारण किया ।। ६५ ।। हे देवी ! इस प्रकारका वह सहस्र वदन रावण पुष्करद्वीपमें निवास करता है ।। ६६ ।।

तस्यानुजो दशास्योऽयं लंकायां जानकि स्थितः ।। ६७ ।। चित्राणीत्यादीनि मे शंसयित्वा विप्रो मासांश्चतुरो यापयित्वा ।। राजानं मां चाशिषा योजयित्वा जगामैकः प्रोषितस्तीर्थयात्राम् । ६८ ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा. आ. अद्भुतोत्तरकाण्डे सीताभाषणं नाम सप्तदशः सर्गः ।। १७ ।।

हे जानकि ! उसका छोटा भाई लंकापुरीमें निवास करता है ।। ६७ ।। इस प्रकार और भी विचित्र कथा कह चार महीने निवास कर राजा और मुझको आशीर्वाद देकर वह ब्राह्मण तीर्थयात्राको चला गया ।। ६८ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वा. आदि. अद्भु. ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां सीताभाषणं नाम सप्तदशः सर्गः ।। १७ ।।

अष्टादश सर्ग

रावणकी सेनाका निकलना

एवं स रावणो विप्राः सहस्रवदनो महान् ।। प्रोक्तस्तेन द्विजेनाहं श्रुत्वाश्चर्यं च विस्मिता ।। १ ।। अद्यापि तन्मय हृदि जागरूकं हि वर्तते ।। पत्या मे बाहुवीर्येण दशास्यो रावणो हतः ।। २ ।।

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस ब्राह्मणने मुझसे सहस्र मुखवाले रावणकी कथा कही थी, जिसे सुनकर मुझे बडा विस्मय हुआ ।। १ ।। अबतक वह मेरे हृदयमें जागते हुएके समान वर्तता है मेरे स्वामीने भुजबलसे दशशिरवाले रावणको मारा है ।। २ ।।

सानुगः ससुतामात्यः सभ्रातृकः सबान्धवः ।। मत्कृते च पुरी दग्धा सेतुर्बद्धश्च वारिधौ ।। ३ ।। सुग्रीवेण सहायेन तथा हनुमदादिना ।। इदं लोकोत्तरं कर्म कृतं लोकहितं महत् ।। ४ ।।

पुत्र अनुचर भाई बन्धुओंके सहित उसे मेरे निमित्त मारकर लंकापुरी जलायी, सागरमें पुल बांधा ।। ३ ।। सुग्रीव और हनुमानाजीकी सहायता लेकर यह लोकके निमित्त बडा चमत्कारी कर्म किया है ।। ४ ।।

तथापि हृदि मे नैतदाश्चर्यं प्रतिभाति हि ।। यदि तस्य वधं कुर्याद्रावणस्य दुरात्मनः ।। ५ ।। तदा संभाव्यते कीर्तिर्जगत्स्वास्थ्यमवाप्नुयात् । अतो मे हसितं विप्राः क्षमध्वं ज्वलनोपमाः ।। ६ ।।

परन्तु तथापि मेरे हृदययें कुछ आश्चर्य नहीं विदित होता है, जो इस दुरात्मा रावणका वध किया तव आपकी महान् कीर्ति फैलकर जगत् स्वस्थ हो जाय, हे अग्नितुल्य ब्राह्मणो ! इस कारण आप मेरे हास्यको क्षमा करो । ५ । ६

आकर्ण्य मुनयः सर्वे साधु साध्विति वादिनः । जानकीं प्रशशंसुस्ते सर्वलोकहितैषिणीम् ।। ७ ।। राघवो वचनं श्रुत्वा सीताया वीर्यवर्द्धनम् सिंहनादं विनद्योच्चैः सर्वाना ज्ञापयत्प्रभुः ।। ८ ।।

यह वचन सुनकर सब मुनि धन्य धन्य कहने लगे, और सब जगत्की हितकारिणी जानकीकी प्रशंसा करने लगे ।। ७ ।। रामचन्द्र सीताके वीर्यवर्द्धक वचन सुनकर सिंहनाद कर सबको आज्ञा देने लगे ।। ८ ।।

मुनयोऽद्यैव गंतव्यं रावणस्य जयाय वै । लक्ष्मणं भरतं चैव शत्रुघ्नं चादिशत्प्रभुः ।। ९ ।। मित्र सुग्रीव हे राजन्सर्वे जांबवदादयः । गच्छामः सहितास्तत्र सैनिकैः सह मंत्रिभिः ।। १० ।।

हे मुनियो ! आजही हम रावणको जीतने जाते हैं लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नको प्रभुने आज्ञा दी ।। ९ ।। हे राजन् सुग्रीव ! मित्र और सम्पूर्ण सैनिकजनोंके सहित हम वहां जायँगे ।। १० ।।

इत्याज्ञाप्य महाबाहुः सस्मार पुष्ककं रथम् । स्मरणादागतस्तत्र पुष्कको रथसत्तमः ।। ११ ।। तत्रारुक्षन्महावीरारामचन्द्रपुरोगमाः । भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्चामितद्युतिः १२ ।

वह महाबाहु इस प्रकार कहकर पुष्पकको स्मरण करते हुए वह पुष्पक

विमान स्मरण करते ही आकर प्राप्त हुआ ।। ११ ।। उसके ऊपर रामचन्द्र आदि सम्पूर्ण वीर चढ़े भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न जो स्थित हुए ।। १२ ।।

सुग्रीव प्रमुखाः सर्वे वानराजितकाशिनः । विभीषणो महाबाहुः सह रक्षोगणैः प्रभुः ।। १३ ।। मात्रा पित्राप्यकथनादजानन्बोधितोनया । सीतया रामकार्यार्थं निर्ययौ राघवाज्ञया ।। १४ ।।

सुग्रीवको आदि लेकर शत्रुको जीतनेवाले वानर तथा महाबाहुविभीषण राक्षसोंके सहित स्थित हुए ।। १३ ।। माता पिता आदिसे भी न कहकर इन जानकीके प्रेरे हुए रामचन्द्रकी आज्ञासे वे सब चले ।। १४ ।।

सुमंत्राद्या मंत्रिणश्च ऋषयस्ते च निर्ययुः । नानाशस्त्रप्रहरणा धृतायुधकलापिनः ।। १५ ।। मुमुचुस्ते सिंहनादं महाघोरं महाबलाः । धनुःशब्देन रामस्य सिंहनादेन चैव हि ।। १६ ।।

सुमन्त्रादि मन्त्री और वे सब ऋषि वहांसे चले; वे सब अनेक प्रकारके आयुध धारण कर बोलनेवाले ।। १५ ।। वे महावली घोर सिंहनाद करने लगे, रामके धनुषशब्दसे और सिंहनादसे ।। १६ ।।

चचाल वसुधा शैलाश्चेलुः पेतुर्ग्रहाश्च खात् । नद्योऽशुष्यन्समुद्वेलाः सागराश्च चकंपिरे ।। १७ ।। सुग्रीवो हनुमान्नीलो जांबवान्नल एव च । ग्रसंत इव ते सर्वे निर्ययू रामशासनात् ।। १८ ।।

पृथ्वी और शैल चलायमान हो गये, तारे टूटने लगे, नदी सूखने लगी, सागरने मर्यादा छोडदी ।। १७ ।। सुग्रीव हनुमान् नील जाम्बवंत यह सब मानो आकाशको ग्रसते हुए चले ।। १८ ।।

स तया सीतया सार्धं रामचन्द्रो महाबलः । कामगं पुष्पकं दिव्यमारुरोह धनुर्धरः ।। १९ ।। पुष्पकं ते समारुह्य सर्व एव महाबलाः । सीतया भ्रातृभिः सार्द्धं रामचन्द्रं महाबलाः ।। २० ।।

फिर सीताके सहित महाबली रामचन्द्र धनुष धारण किये कामगामी पुष्पक विमानमें स्थित हुए ।। १९ ।। वे सब महाबली पुष्पकविमानमे स्थित होकर सीता और भाइयोंके सहित रामचन्द्र स्थित हुए ।। २० ।।

प्रोत्साहयंतो वचनैर्निर्ययुर्जितकाशिनः । रामाज्ञया पुष्पकं तदा-

काशपथमाश्रितम् ।। २१ ।। मनोमारुतवेगेन क्षणेन गरुडो यथा ।। जगाम पुष्करद्वीपं यत्रास्ते मानसोत्तरः ।। २२ ।।

वे शत्रुके जीतनेवाले थे उनको अपने वीरताके वचनोंसे उत्साह करते हुए तब रामचन्द्रकी आज्ञासे पुष्कविमान आकाशमें प्राप्त हुआ ।। २१ ।। मन और पवन तथा गरुडके समान वेगकर मानसोत्तर पुष्करद्वीपमें क्षणमात्रमें प्राप्त हुआ ।। २२ ।।

मानसोत्तरमासाद्य विस्मितास्ते महाबलाः ।। किं चित्रं किं चित्रमिति प्रोचुराश्चर्यलक्षणाः ।। २३ ।। राघवो भ्रातृभिः सार्द्धं सह वानरपुंगवैः ।। सिंहनादं ननादोच्चैर्धनुश्चापि व्यकर्षयत् ।। २४ ।।

मानसके उत्तर भागमें प्राप्त होकर वे महाबली विस्मित हुए कैसा विचित्र है ? इस प्रकार वे वारंवार कहने लगे ।। २३ ।। रामचन्द्रने वानर और भ्राताओंके साथ सिंहनाद करके धनुषको खैंचा ।। २४ ।।

स शब्दस्तुमुलो भूत्वा पृथिवीं चांतरिक्षकम् ।। पातालविवरांश्चैव पूरयामास सर्वतः ।। २५ ।। रावणः सहसोत्तस्थौ किमेतदिति संवदन् ।। तत्राथ राक्षसाः क्रुद्धाः सर्व एव विनिर्ययुः ।। २६ ।।

वह तुमुलशब्द पृथ्वी अन्तरिक्षऔर सब ओरसे पातालके विवरोंको पूर्ण करता हुआ ।। २५ ।। तब रावण यह क्या है ऐसा कहकर एक साथ उठ बैठा और वहांके सब राक्षस क्रोध कर एक साथ वहां निकले ।। २६ ।।

अहो कुतः स्विच्छब्दोऽयं साधु सर्वैर्निरूप्यताम् ।। इत्याभाष्य राक्षसेंद्रो राक्षसेंद्रैर्महाबलैः ।। २७ ।। नगरान्निर्ययौ शीघ्रं संदष्टोष्ठपुटो बली ।। द्वादशादित्यसंकाशः सहस्रवदनो महान् ।। २८ ।।

और बोले जानना चाहिये कि, यह शब्द कहांसे होता है, इस प्रकार वह राक्षसेन्द्र महाबली राक्षसोंके साथ शीघ्र।। २७ ।। होठ चबाता हुआ निकला वह बारह सूर्यके समान सहस्र मुखका महाबली था ।। २८ ।।

द्विसहस्रभुजोद्रिक्तो द्विसहस्रविलोचनः ।। महामेघसमध्वानो वडवाग्निसमः क्रुधा ।। २९ ।। शतयोजनविस्तीर्णे रथे सूर्यसमत्विषि । नानायुधानि संगृह्य परिखप्रासतोमरान् ।। ३० ।।

दो सहस्र भुजा और सहस्र नेत्रवाला महामेघके समान वडवा अग्निके समान क्रोध किये ।। २९ ।। सूर्यके समान कांतिमान् अनेक प्रकारके आयुध परिघ प्रास तोमर लेकर ।। ३० ।।

भुशुण्डिः परशून्घंटां लोहं मुद्गरचक्रकम् ।। पाशांश्च विविधा-न्गृह्य बाणान्कर्मार्जितान् ।। ३१ ।। विपाठान्क्षुरधारांश्च अर्धचन्द्रा-कृतीनपि ।। नानायुधसहस्राणि नानाविधधनूंषिच ।। ३२ ।।

भुशुण्डी परशु घंटे लोहे मुद्गर चक्र पाश तथा बाणोंको ग्रहण कर ।।३१।। विपाठ क्षुरधार अर्धचन्द्रके आकार सहस्रों आयुध और अनेक प्रकारके धनुष ।। ३२ ।।

प्रगृह्य सहसा प्रायाद्यत्र रामो धनुर्धरः ।। लोचनैः क्रोधसंदीप्तैरु-ल्काभिरिव दीपितः ।। ३३ ।। कोयमित्यब्रवीत्क्रोधादलं प्रोद्वमन्निव ।। सिंहनादं मम पुरे रिपुत्वाद्विससर्ज ह ।। ३४ ।।

लेकर जहां धनुर्धर रामचन्द्र थे वहां आये, क्रोध भरे नेत्र मानो उल्कासे दीपित हुए ।। ३३ ।। अग्निको क्रोधसे वमन करता कहने लगा, यह कौन है ? कि शत्रु होकर मेरे पुरमें सिंहनाद करता है ।। ३४ ।।

ममापि रिपुरस्तीति दुर्यशः समुपस्थितम् ।। इंद्राद्याः ककुभां नाथा भृत्याः प्राणपरीप्सया ।। ३५ ।। पातालविवरे स्वर्गं स्वर्गे पातालमेककम् ।। करोमि सहसैवाहं मानवानां तथैकताम् ।। ३६ ।।

मेरेभी शत्रु हैं, यह मेरा बडा दुर्यश प्राप्त हुआ है, इन्द्रादि लोकपाल तो मेरे दासवत् हैं ।। ३५ ।। पातालके छिद्रोंमें स्वर्गको स्वर्गमें पातालको तथा मनुष्योंकोभी एकत्र कर सकता हूं ।। ३६ ।।

मेरुप्रभृतिशैलांश्च चूर्णयाम्यणुसंख्यया ।। देवलोकं नृणां कुर्यान्नृ-लोकं त्रिदिवौकसाम् ।। ३७ ।। उद्धृत्य पृथिवीं छिद्यामनंतं नखरा-ग्रकैः ।। ब्रह्मा मां वारयामास सांत्वयन्प्रियभाषितैः ।। ३८ ।।

मेरुप्रभृति पर्वतोंको मैं चूर्ण कर सकता हूँ देवलोकको मनुष्यलोक और मनुष्य लोकको देवलोक कर सकता हूं ।। ३७ ।। पृथ्वी और शेषजीको नखोंसे उद्धृत कर सकता हूं और करताही था कि, ब्रह्माजीने आकर इस कार्यसे मुझको निवारण किया ।। ३८ ।।

अन्यथा राक्षसमृते नारदं जगतीतले ।। सूर्याचन्द्रमसौ भूत्वा तिथिप्रणयनं त्वहम् ।। ३९ ।। बलाहकत्वमिंद्रत्वं पृथ्वीसेकादिकाः क्रियाः ।। कुर्या यमत्वं वह्नित्वं वरुणत्वं धनेशताम् ।। ४० ।।

नहीं तो राक्षसोंके सिवाय पृथ्वीमें और किसीको न रखता, सूर्य चन्द्रमा होकर मैं ही तिथिका प्रणयन करता ।। ३९ ।। मेघपन, इन्द्रपन, पृथ्वीको सेकादि क्रिया, यमत्व अग्नित्व वरुणत्व कुबेरत्व मैं ही कर सकता हूं ।। ४० ।।

इत्येवं बहुधा गर्जन्नाजगामांतिकं हरेः ।। सेनाध्यक्षा राक्षसेंद्रा राज्ञा सार्द्धं समागताः ।। ४१ ।। नानाप्रहरणोपेता नानारथपदातिनः ।। एकैकस्यापि पर्याप्ता जगती नेति मन्महे ।। ४२ ।।

इस प्रकार अनेक प्रकारसे गर्जना करता हुआ रामके समीप आया, सेनाध्यक्ष राक्षसेन्द्र राजाके साथ आये ।। ४१ ।। यह सब नाना प्रकारके प्रहार लिये अनेक रथ पैदलोंसे युक्त एक ऐसे वीर थे कि, पृथ्वीमें बलसे नहीं समा सकते थे ।४२।

केषांचिदपि नामानि भारद्वाज निबोध मे ।। कोटिशो मनसः पूर्णः शलः पालो हलीमुखः ।। ४३ ।। पिच्छलः कौणपश्चक्रः कालवेगः प्रकाशकः ।। हिरण्यबाहुः शरणः कक्षकः कालदन्तकः ।। ४४ ।।

हे भरद्वाज ! उनमें कुछेकके नाम मुझसे सुनो । कोटिश, मनस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमुख ।। ४३ ।। पिच्छल, कौणप, चक्र, कालवेग, प्रकालक, हिरण्यबाहु, शरण, कक्षक, कालदन्तक ।। ४४ ।।

पुच्छाण्डको मंडलकः पिंडसेक्ता रभेणकः ।। उच्छिखः करभो भद्रो विश्वजेता विरोहणः ।। ४५ ।। शिली शलकरो मूकः सुकुमारः प्रेरेषणः ।। मुद्गरः शशरोमा च सुरोमा च महाहनुः ।। ४६ ।।

पुच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेक्ता, रभेणक, उच्छिख, करभ, भद्र, विश्वजेता, विरोहण ।। ४५ ।। शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्ररेषण, मुद्गर, शशरोमा, सुरोमा, महामनु ।। ४६ ।।

पारावतः पारियात्रः पांडुरो हरिणः कृशः ।। विहंगः शरभो दक्षः प्रमोदः सहपातनः ।। ४७ ।। क्रकरः कुण्डरो वैणीवेणीस्कंधः कुनारकः ।।बाहुकः शंखवेगश्च धूर्तकः पातपातकौ ।। ४८ ।।

पारावत, पारियात्र, पाण्डुर, हरिण, कृश, विहंग, शरभ, दक्षप्रमोद, सहातापन ।। ४७ ।। क्रकर, कुंडर वैणी, वेणीस्कंद, कुमारक, बाहुक, शंखवेग धूर्तक, पात, पातक ।। ४८ ।।

शंकुकर्णः पिटरकः कुटीरमुखसंचकौ ।। पूर्णांगदः पूर्णमुखः प्रभाषः शकुलिर्हरिः ।। ४९ ।। अमाहिठः कामठकः सुषेणो मानसो व्ययः ।। भैरवो मुण्डदेवांगः पिशंगश्चोडपालकः ।। ५० ।।

शंकुकर्ण, पिटरक, कुटीरमुख, सेचक, पूर्णामुख, भाष, शकुलि,हरि ।। ४९ ।। अमाहिठ, कामठक, सुषेण, मानस, व्यय; भैरव, मुण्ड, देवांग, चोडपालक ।। ५० ।।

ऋषभो वेगवान्नाम पिंडारकमहाहनू ।। रक्तांगः सर्वसारंगः समृद्धः पाटवाकसौ ।। ५१ ।। वराहको रावणकः सुचित्रश्चित्रवेगिकः ।। पराशरस्तरुणिको मणिस्कन्धस्तथारुणिः ।। ५२ ।।

ऋषभ, वेगवान्, पिण्डारक, महाहनु, रक्तांग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पाट, वांसक ।। ५१ ।। वराहक, रावणक, सुत्रिच, चित्रवेगिक, पराशर, तरुणिक, मणिस्कंध, अरुणि ।। ५२ ।।

सेनाध्यक्षा महाब्रह्मन्कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।। प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तिताः ।। ५३ ।। न शक्याः परिसंख्यातुं ये युद्धाय समागताः।।नीलरक्ता सिता घोरा महाकाया महाबलाः ।। ५४ ।।

हे ब्रह्मन् ! यह महाकीर्तिवर्द्धन सेनाध्यक्ष कहे हैं प्रधानभी बहुत हैं, विस्तारके कारण सबका वर्णन नहीं किया ।। ५३ ।। युद्ध करनेको आये थे उनकी संख्या नहीं हो सकती, नील रक्त सित घोर महाकाय महाबली ।। ५४ ।।

सप्तशीर्षाद्विशीर्षाश्च पञ्चशीर्षास्तथापरे । कालानलमहाघोरा हुताशसमविग्रहाः ।। ५५ ।। महाकाया महावेगाः शैलशृंगसमुच्छ्रयाः । योजनायामविस्तीर्णाद्वियोजनसमुच्छ्रयाः ।। ५६ ।।

सात शिरके दो शिरके पांचशिरके कालानलके समान महाघोर अग्निके समान शरीरवाले ।। ५५ ।। महाकाय महावेगवान् शैलशृंगके समान ऊंचे एक योजनके चौड़े दो योजनके ऊंचे ।। ५६ ।।

कामरूपाः कामबला दीप्तानलसमत्विषः । अन्ये च बहवः शूराः शूलपट्टिशधारिणः ।।५७।। दिव्यप्रहरणोपेता नानावेषविभूषिताः ।। शृणु नामानि चान्येषां येऽन्ये रावणसैनिकाः ।। ५८ ।।

कामरूपी कामबली दीप्त अनलके समान क्रान्तिमान् और भी बहुतसे शूर शूल पट्टिश लिये ।। ५७ ।। दिव्य प्रहारसे नाना युक्त वेषसे विभूषित थे, रावणके सेनापतियोंके नाम सुनो ।। ५८ ।।

शंकुकर्णोनिकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ।। अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ।। ५९ ।। घ्राणश्रवाः कपिस्कंधः कांचनाक्षो जलन्धमः ।। अक्षसंतर्दनो ब्रह्मन्कुनदीकस्तमोऽभ्रकृत् ।। ६० ।।

शंकुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, मुकुद, अनन्त, द्वादशभुजा, कृष्ण उपकृष्ण ॥ ५९ ॥ घ्राणश्रवा, कपिस्कंध, कांचनाक्ष, जलन्धम, अक्षसंतर्दन ,कुनदीक, तमोभ्रकृत् ॥ ६० ॥

एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजराभिधः ॥ सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राख्य क्षितिकंपनः ॥ ६१ ॥ पुण्यनामानुनामा च सुवक्त्रः प्रियदर्शनः ॥ परिश्रितः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ॥ ६२ ॥

एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजरा, सहस्रबाहु, विकट; व्याघ्र क्षितिकंपन ॥ ६१ ॥ पुण्यनाम, अनुनाम, सुवक्त्र, परिश्रित, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन ॥ ६२ ॥

अजोदरो गजशिराः स्कंधाक्षः शतलोचनः ॥ ज्वालाजिह्वः करालश्च सितकेशो जटी हरिः ॥ ६३ ॥ चतुर्दंष्ट्रोष्ठजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ॥ विकृताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ।६४।

अजोदर, गजशिर, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, कराल, सितकेश, जटी, हरि ॥ ६३ ॥ चतुर्दंष्ट्र, ओष्ठजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रव, विकृताक्ष, धनुर्वक्त्रः जाठर मारुताशन ॥ ६४ ॥

उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ॥ समुद्रवेगो विपेंद्रः शैलकम्पी तथैव च ॥ ६५ ॥ वृषमेषप्रवाहश्च तथा नंदोपनंदकौ ॥ धूम्रश्वेतः कलिंगश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥ ६६ ॥

उदाराक्ष; रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग, शैलकंपी ॥ ६५ ॥ वृषमेषप्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्रश्वेत, कलिंग, सिद्धार्थ, वरद ॥ ६६ ॥

प्रियकश्चैकनन्दश्च बहुवीर्यः प्रतापवान् ॥ आनंदश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६७ ॥ क्षेमबाहुः सुबाहुश्च सिद्धपात्रश्च सुव्रतः ॥ गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥ ६८ ॥

प्रियक, एकनन्द, बहुवीर्य, प्रतापवान् आनन्द, प्रमोद; स्वस्तिक ध्रुव ॥ ६७ ॥ क्षेमबाहु, सिद्धपात्र, सुव्रत, गोव्रज, कनकापीड, महापारिषदेश्वर ६८

गायनो दमनश्चैव:बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ॥ वैताली गतिताली च तथा कथकवातिकौ ॥ ६९ ॥ हंसजः पंकदिग्धांगः समुद्रोन्मादनश्च ह ॥ रणोत्कटः प्रहासश्च वेतसिद्धश्च नन्दकः ॥ ७० ॥

गायन, दमन, वाण, वीर्यवान्, खड्ग वैताली, गतिताली, कथक वातिक ।। ६९ ।। हंसज, पंकदिग्धांग, समुद्र, उन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, वेतसिद्ध नन्दक ।। ७० ।।

एते पुरा रावणसैन्यपाला नानायुधप्राहरणा रणेषु ।। हंसेषु मेषेषु वृषेषु वीरा रामं प्रतस्थुः कृतसिंहनादाः ।। ७१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वा. अद्भुतोत्तरकाण्डे रावण सैन्यनिर्याणं नामा-ष्टादशः सर्गः ।। १८ ।।

यह रावणके सेनापति युद्धसें अनेक प्रकारके प्रहार करनेवाले हंस मेष वृषके ऊपर चढे सिंहनाद करते रामसे युद्ध करनेको चले ।। ७१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वा. आ. अ. भाषाटीकायां रावणसैन्यनिर्माणं नामा-ष्टादश सर्गः ।। १८ ।।

एकोनविंश सर्ग

सहस्रमुखी रावणके पुत्रोंका युद्धको चलना

रावणस्यौरसाः पुत्रास्सह राक्षसपुंगवैः ।। नानाप्रहरणोपेता दुद्रुवू राघवं रणे ।। १ ।। नामान्येषां प्रवक्ष्यामि भरद्वाज शृणुष्व मे ।। कालकण्ठः प्रभाषश्च तथा कुम्भाण्डको परः ।। २ ।।

रावणके औरस पुत्र महाराक्षसोंके साथमें अनेक प्रकारके प्रहार लेकर धावमान हुए ।। १ ।। हे भरद्वाज ! उनके नाम मैं कहता हूं सो तू मुझसे सुन; कालकण्ठ, प्रभाष, कुम्भांडक ।। २ ।।

कालकक्ष शितश्चैव भूतलोन्मथनस्तथा ।। यज्ञबाहुः प्रबाहुश्च देवयाजी च सोमदः ।। ३ ।। मज्जालश्च महातेजाः क्रथः क्राथोवसुव्रतः ।। तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ।। ४ ।।

कालकक्ष, शित, भूतल, उन्मथन, यज्ञबाहु, प्रवाहु देवयाजी, सोमप ।। ३ ।। महातेजस्वी, मज्जाल, क्रथ, क्राथ, वसुव्रत, तुहर, तुहार, वीर्यवान्, चित्र-देव ।। ४ ।।

---

१ आरूढा इति शेषः ।

मधुरः सुप्रासादश्च किरीटश्च महाबलः ।। वसनो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।। ५ ।। धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ।। श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।। ६ ।।

मधुर, सुप्रसाद, महाबली, किरीट, वसन, मधुवर्ण, कलशोदर ।। ५ ।। धर्मद, मन्मथकर, वीर्यवान्, सूचिवक्त्र श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पाण्डुर ।। ६ ।।

दण्डबाहु; सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ।। अचलः कालकाक्षश्च बालेशो बालभक्षकः ।। ७ ।। संचानकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ।। लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ।। ८ ।।

दण्डबाहु, सुबाहु, कोकिलक, अचल, कालाकाक्ष, बालेश, बालभक्षक ।। ७ ।। सञ्चानक, कोकनद, गृध्रपत्र, जम्बूक, लोहाजवक्त्र, जवन, कुम्भवक्त्र ।। ८ ।।

मुंडग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च कुंर्यजरः ।। एते रावणपुत्राश्च महावीरपराक्रमाः ।। ९ ।। बाहुशब्दैः सिंहनादैः पूरयंतो दिशो दश ।। एषां सैन्यसहस्राणां सहस्राण्यर्बुदानि च ।। १० ।।

मुंडग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, कुञ्जर, यह रावणके पुत्र महाबली और पराक्रमी थे ।। ९ ।। बाहुशब्द और सिंहनादसे दशों दिशाओंको पूर्ण करते हुए, इनकी सेनाके सहस्रों और अर्बों ।। १० ।।

नानाकृतिवयोरूपा विविधायुधपाणयः ।। कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च सर्पजम्भकवक्त्रकाः ।। ११ ।। गोमायुमुखवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ।। खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।। १२ ।।

अनेक प्रकारकी आकृति वय रूपवाले अनेक आयुध हाथमें लिये, कूर्म कुक्कुटमुखवाले सर्प जम्भकेसे मुखवाले ।। ११ ।। शृगालमुखवाले शशक और खरगोशके मुखवाले, खर उष्ट्र तथा वराहके मुखवाले ।। १२ ।।

मनुष्यमेषवक्त्राश्च शृगालवदनास्तथा ।। मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च केचन ।। १३ ।। नकुलोलूकवक्त्रश्च काकवक्त्रास्तथापरे ।। आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ।। १४ ।।

मनुष्य मेष शृगाल मार्जार शशाके मुखवाले, कोई दीर्घमुख ।। १३ ।। नकुल, उलूकमुख, काक, आखु, बभ्रुमुख, मोरमुख ।। १४ ।।

मत्स्यमेषाननाश्चैव अजाविमहिषानना: ।। ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ।। १५ ।। भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखास्तथा ।। गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ।। १६ ।।

मत्स्य मेष अजा मुखवाले ऋक्ष, शार्दूल द्वीप और सिंहमुखवाले ।। १५ ।। भयंकर हाथीकेसे मुखवाले, नाकेके समान मुखवाले, गो, खर उष्ट्र वृष दंष्ट्रमानस के मुखवाले ।। १६ ।।

महाजठरपापांगा: स्तवकाक्षाश्च दुर्मुखा: ।। पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखा: परे ।। १७ ।। कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ।। कृकलासमुखाश्चैव विरजोऽम्बरधारिण: ।। १८ ।।

महाजठरपाद अंगवाले, स्तवकाक्ष, दुर्मुख, पारावतमुख, वृषमुख ।। १७ ।। कोकिलामुख, तित्तिरि मुख, कृकलासमुख, श्वेतवस्त्र धारण किये ।। १८ ।।

व्यालवक्त्रा: शुकमुखाश्चंडवक्त्रा: शुभानना: ।। आशीविषाश्चीरधरा गोनासावरणास्तथा ।। १९ ।। स्थूलोदरा: कृशांगाश्च स्थूलांगाश्च कृशोदरा: ।। ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणा: ।२० ।

व्यालमुख शुकमुख, चण्डमुख, शुभानन, आशीविष, चीरधारी, गोनासावरण ।। १९ ।। स्थूलोदर, कृशांग, कृशोदर, ह्रस्वग्रीव, महाकर्ण अनेक व्यालके भूषणवाले ।। २० ।।

गजेंद्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनांबरा: ।। स्कंधेमुखा द्विजश्रेष्ठ तथा ह्युदरतोमुखा: ।। २१ ।। पृष्ठेमुखा हनुमुखास्तथा जंघामुखास्तथा ।। पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा ।। २२ ।।

गजेन्द्रके चर्मका वस्त्र पहरे, काले वस्त्रधारे, स्कंधमें मुखवाले, उदरमें मुखवाले ।। २१ ।। पीठमें मुखवाले हनुमुख, जंघामुख, पार्श्वानन नानादेशमें मुखवाले ।। २२ ।।

तथा कीटपतंगानां सदृशास्या महाबला: ।। नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधरा: ।। २३ ।। नानावक्षोभुजा: केचिद्भुजंगवदना: परे ।। खड्गमुखा वृकमुखा अपरे गरुडानना: ।। २४ ।।

कीट पतंगोंके समान मुखवाले, महाबली, सर्वमुखवाले, बहुत बाहु और शिरवाले ।। २३ ।। अनेक छाती भुजावाले, कोई भुजंगमुख, खड्ग, वृक गरुडके समान मुखवाले ।। २४ ।।

चोलसंवृतगात्राश्च नानाफलकवाससः ।। नानावेषधराश्चान्ये नानामाल्यानुलेपनाः ।। २५ ।। नानावस्त्रधराश्चान्ये चर्मवासस एव च ।। उष्णीषिणो मुकुटिनः कंबुग्रीवाः सुवर्च्चसः ।। २६ ।।

कुरतोंसे शरीर ढके फलक वस्त्रवाले, नानावेषधारी नानामालाओंका अनुलेपन लगाये, नाना वेषधारी अनेक माला और अनुलेपन लगाये ।। २५ ।। नानावस्त्र और चर्म धारण किये पगडी मुकुटवाले शंखकेसी गर्दन सुन्दर कान्तिवाले ।। २६ ।।

किरीटिनः पंचशिखास्तथा कठिनमूर्द्धजाः ।। त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखा अपि ।। २७ ।। शिखण्डिनोऽमुकुटिनो मुंडाश्च जटिलास्तथा ।। चित्रमालाधराः केचित्केचिद्रोमाननास्तथा ।। २८ ।।

किरीटधारी, पंचशिख, कठिन केशवाले, तीन शिखा और दो शिखावाले सात शिखावाले ।। २७ ।। शिखण्डी, मुकुटरहित, मुण्ड जटित, चित्रमालाधारी कोई रोमानन ।। २८ ।।

विग्रह*हैकवशा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ।।कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठा *निरूदराः ।।२९।। दीर्घपृष्ठा स्थूलपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ।। महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः ।। ३० ।।

युद्धमें देवताओंको अजय, काले निर्मांस मुख, दीर्घपृष्ठ, और उदरवाले ।। २९ ।। दीर्घपृष्ठ, स्थूलपृष्ठ, प्रलम्ब उदर और मेहनवाले, महाभुज, ह्रस्वभुज, ह्रस्वगात्र, वामन (बौने) ।। ३० ।।

कुब्जाश्च ह्रस्वजंघाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ।। हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथापरे ।। ३१ ।। वारणेंद्रनिभाश्चान्ये दीप्तिमंतः स्वलंकृताः ।। पिंगाक्षाः शंकुकर्णाश्च वक्रनासास्तथापरे । ३२ । पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलोष्ठा हरिमूर्द्धजाः ।। नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ।। ३३ ।। नानाचर्मभिराच्छन्ना नानावासाश्च सुव्रत ।। हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापरिघ बाहवः ।। ३४ ।।

कुबडे, ह्रस्वजंघ, हाथीकेसे कान और शिरवाले, हस्तिनास, कूर्मनास वृकनास, ।। ३१ ।। कोई वारणेन्द्रके समान, दीप्तिमान्, अलंकृत, पिंगाक्ष, शंकुकर्ण, वक्रनास ।। ३२ ।। पृथुदंष्ट्र, महादंष्ट्र, स्थूलोष्ठ, हरिकेश, नानाचरण

---

* विग्रहो युद्धम् * दीर्घवत्मार्षम् ।

ओष्ठ डाढोंवाले, अनेक हाथ और शिरवाले ।। ३३ ।। अनेक चर्मोंसे आच्छादित; अनेक प्रकारके वस्त्रधारे, महापरिघके समान भुजवाले, प्रसन्न हो युद्ध करनेको चले ।। ३४ ।।

दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ।। पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च स्वर्णकर्णाश्च सुव्रत ।। ३५ ।। वृकोदरनिभाः केचित्केचिदंजनसंनिभाः ।। श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिंगाक्षाश्चतथापरे ।। ३६ ।।

दीर्घगर्दन, दीर्घनख, दीर्घचरण, दीर्घ शिर और भुजवाले, पिंगाक्ष, नीलकंठ, स्वर्णकर्णवाले ।। ३५ ।। कोई वृकोदरके समान, कोई अञ्जजनपर्वतके समान, श्वेताक्ष, लोहितग्रीव, पिंगाक्ष ।। ३६ ।।

कल्माषबाहवो विप्र चित्रवर्णाश्च केचन ।। चामरापीडकनिभाः श्वेत लोहितकान्तयः ।। ३७ ।। नानावर्णाः सुवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ।। पाशोद्यतकराः केचिद्यादितास्याः खराननाः ।। ३८ ।।

हे विप्र ! कोई कल्माष (काली) भुजावाले, कोई चित्रवर्ण, चमरकी पीडाके समान ,श्वेत और लाल कांतिवाले ।। ३७ ।। अनेक वर्ण और सुवर्ण मोरके समान कांतिवाले, कोई पाश हाथमें उठाये, कोई मुखफैलाये खरके समान मुखवाले ।। ३८ ।।

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।। असिमुद्गरहस्ताश्च दंडहस्ताश्च केचन ।। ३९ ।। गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।। आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महौजसः ।। ४० ।।

शतघ्नी, चक, हाथमें लिये, मुसल हाथमें लिये; कोई असि मुद्गर हाथमें लिये, कोई दंड हाथमें लिये ।। ३९ ।। गदा भुशुण्डी हाथमें लिये, तोमर हाथमें लिये तथा महात्मा लोग अनेक घोर आयुध हाथमें लिये ।। ४० ।।

महाबला महावेगा असंख्याता विनिर्ययुः ।। घंटाजालपिनद्धांगा ननृतुस्ते रणाजिरे ।। ४१ ।। कोटिशो विकृतरूक्षभाषिणो यातुधानगणसैन्यपालकाः।।दुद्रुवू रघुकुलावतं सकं गृह्लधावनपोथ वादिन ४२।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे रावणपुत्रनिर्याण नामैकोनविंश सर्गः ।। १९ ।।

महावली महावेगवान् असंख्यों चले और घंटाजालसे नद्ध हुए रणस्थलमें नृत्य करने लगे ।। ४१ ।। असंख्य विकृत और रूखे बोलनेवाले, राक्षसोंकी

सेना पालनेवाले रामचन्द्रके ऊपर धावमान हुए; और पकडो २ ऐसे कठोर वचन बोलने लगे ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्‌भुतोत्तरकाण्डे भाषाटीकायां रावण-पुत्रनिर्याणं नाम एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विशंति सर्ग

संकुलयुद्धवर्णन

धनूंषि च विधुन्वानस्ततो वैश्रवणानुजः ॥ कोऽयं किमर्थमायात इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥ ततो गगनसंभूता वाणी समुपद्यत ॥ भो रावण महावीर्य रामोऽयं समुपागतः ॥ २ ॥

तब वह सहस्रमुख रावण धनुष्यको कम्पायमान करता हुआ यह कौन कहाँसे आया है यह चिन्ता करने लगा ॥ १ ॥ तब उस समय आकाशसे वाणी हुई हे महावीर्यवान् रावण ! यह रामचन्द्र आये हैं ॥ २ ॥

राघवोऽयमयोध्याया राजा धर्मस्वरूपधृक् ॥ लंकायां निहतो येन दाराकर्षी तवानुजः ॥ ३ ॥ त्वद्वधार्थमिहायातो बिभीषण वसुप्रदः ॥ भ्रातृभिर्वानरैर्ऋक्षै राक्षसैर्मानुषैर्युतः ॥ ४ ॥

यह धर्मस्वरूपधारी राम अयोध्याके राजा हैं, यह धर्मका स्वरूप हैं जिन्होंने लंकामें रावणका वध किया है ॥ ३ ॥ यह विभीषणके राज्य देनेवाले हैं। भाई, वानर, ऋक्ष, राक्षस, मनुष्योंको साथ आये हैं ॥ ४ ॥

श्रुत्वा ह्यमानुषं वाक्यं रावणो लोकरावणः ॥ क्रोधमाहारयामास द्विगुणं मुनिपुंगव ॥ ५ ॥ हन्यतां वध्यतामेव मानुषो रिपुसंज्ञितः ॥ मम विश्वजितः साक्षाद्रणाय समुपस्थितः ॥ ६ ॥

लोक रावण रावण यह अमानुषी वचन सुनकर दूना क्रोध करता हुआ बोला ॥ ५ ॥ इस मनुष्यसंज्ञक शत्रुको मारो, वध कर डालो, यह मुझ विश्वके जीतनेवालेसे युद्ध करनेको स्थित हुआ है ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा बाणजालानि चक्रपर्वततोमरान् ॥ चिक्षेप सहसा रक्षः पुष्पकोपरि सुव्रतः ॥ ७ ॥ राक्षसी सा चमूर्घोरा वानरानृक्ष-मानुषान् ॥ चखादकांश्चिदपरान्पोथयामासदर्पितान् ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर बाणसमूह चक्र पर्वत तोमर वह राक्षस पुष्पकके ऊपर छोडने लगा ।। ७ ।। और वह घोर राक्षसी सेना वानर ऋक्ष मनुष्योंको खाती दूसरोंको नष्ट करने लगी ।। ८ ।।

सा च शाखामृगी सेना राघवस्य च मानुषी । रावणस्यानुगान्वीराञ्जघान बाणपर्वतैः ।। ९ ।। तेऽन्योन्यवधमिच्छंतो युयुधुः सैनिकोत्तमाः ।। पेतुर्मम्लुश्च मुमुहू राक्षसा वानरा नराः ।। १० ।।

और वह रामचन्द्रकी मानुषी और वानरी सेना रावणके अनुचर वीरोंको बाण और पर्वतोंसे नष्ट करने लगी ।। ९ ।। वह सेनाके लोग परस्पर एक दूसरेके वधकी इच्छासे युद्ध करने लगे और वह राक्षस वानर गिरने और वारम्वार मलिन होने लगे ।। १० ।।

ततो रामो महाबाहुर्भरतो लक्ष्मणस्तथा ।। शत्रुघ्नो हनुमान्वीरः सुग्रीवो जांबवांस्तथा ।। ११ ।। अन्ये च नलनीलाद्या विभीषणपुरोगमाः ।। युयुधुस्ते महाघोरं महाघोरे रणाजिरे ।। १२ ।।

तब महाबाहु राम भरत और लक्ष्मण शत्रुघ्न हनुमान वीर सुग्रीव जाम्बवन्त ।। ११ ।। और भी नल नील विभीषणादि महाघोर युद्ध करने लगे ।। १२ ।।

निर्जग्मुश्च विनेदुश्च चिक्रीडुश्चैव राक्षसाः ।। जहृषुश्च महात्मानः संग्रामेष्वनिर्वातिनः ।। १३ ।। उत्कृष्टा स्फोटितैर्नादैश्चचालेव च मेदिनी ।। रक्षसां सिंहनादैश्च परिपूर्ण नभः स्थलम् ।। १४ ।।

वे निकलकर शब्द करने लगे और क्रीडा करने लगे और सग्रामसे न लौटनेवाले महात्मा प्रसन्न होते हुए ।। १३ ।। उनके उत्कृष्ट स्फोट और नादसे पृथ्वी चलायमान होने लगी, राक्षसोंके सिंहनादसे आकाशस्थल पूर्ण होगया । १४ ।।

ते प्रायुध्यंत मुदिता राक्षसेंद्रा महाबलाः ।। प्रययुर्वानरानीकं समुद्यतशिलायुधम् ।। १५ ।। युयोध राक्षसं सैन्यं नरराक्षसवानरैः । रहस्त्यश्वरथसंबाधं किंकिणीशतनादितम् ।। १६ ।।

वे महाबली राक्षस प्रसन्न हो युद्ध करने लगे और शिला हाथमें लिये वानरी सेनाके प्रति ।। १५ ।। नर राक्षस वानरोंसे राक्षसी सेना युद्ध करने लगी, हाथी घोडे रथकी संबाधा और सैकडों किंकिणियोंका शब्द होने लगा ।। १६ ।।

नीलजीमूतसंकाशैः समुद्यतशिलायुधैः ।। दीप्तानलरवि-प्रख्यैर्नैर्ऋतैः सर्वतो वृतम् ।। १७ ।। तद्वीक्ष्य राक्षसबलं संरब्धाश्च प्लवंगमाः ।। क्रुद्धं तद्राक्षसं सैन्यं जघ्नुर्द्रुमशिलायुधैः ।। १८ ।।

नीलमेघके समान शिला आयुध उठाये दीप्त अग्नि और सूर्यके समान सब दिशा राक्षसोंसे भर गई ।। १७ ।। उस राक्षसी सेनाको देखकर संरम्भको प्राप्त होकर क्रोध कर उस राक्षसी सेनाको द्रुम शिला आयुधोंसे मारने लगे ।। १८ ।।

ते पादशिलाशैलैस्तां चक्रुर्वृष्टिमुत्तमाम् ।। वृक्षौघैर्वज्रसंकाशैर्हरयो भीमविक्रमाः ।। १९ ।। शिखरैः शिखराभांस्ते यातुधानानमर्दयन् ।। निर्जघ्नुःसमरे क्रुद्धा हरयो राक्षसर्षभान् ।। २० ।।

वे वृक्ष शिला शैलोंकी वर्षा करने लगे और भयंकर पराक्रमी वानर वृक्षोंसे युद्ध करने लगे ।। १९ ।। और शिखरोंसे शिखरोंके समान राक्षसोंको ताडन करने लगे, इसप्रकार क्रोध कर दैत्योंको ताडन करने लगे ।। २० ।।

केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिस्थितानपि ।। निर्जघ्नुः सहसाप्लुत्य यातुधानान्प्लवंगमाः ।। २१ ।। शैलशृंगनिभास्ते तु * मुष्टिनिष्क्रांतलोचनाः ।। *वेपु पेतुश्च नेदुश्च ततो राक्षसपुंगवाः ।। २२ ।।

कोई रथमें प्राप्त वीर हाथी घोडोंपर स्थित थे उन राक्षसोंको कूद कूद कर वानर मारने लगे ।। २१ ।। ये पर्वतके शृंगके समान अपने घूसोंसेही उनके नेत्र निकाल डालते थे, तब वे राक्षस कंपित होकर गिर पडते थे ।। २२ ।।

ततः शूलैश्च वज्रैश्च विसृष्टैर्हरिपुंगवैः ।। मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितप्लुता ।। २३ ।। विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च रक्षोभिरुपमर्दितैः ।। आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशेषाश्च वानराः ।। २४ ।।

फिर शूल वज्र और मुष्टियोंसे वानरों द्वारा व भूमि रुधिरसे व्याप्त होगई ।। २३ ।। पर्वताग्रोंसे विकीर्ण हुई राक्षसोंसे मर्दित हुई आक्षिप्त और क्षिप्यमान होकर सब वानर भग्न हो गये ।। २४ ।।

रथेन रथिनं चापि राक्षसं राक्षसेन च ।। हयेन च हयं केचित्पिपिषुर्धरणी तले ।। २५ ।। वानरान्वानरैरेव जघ्नुर्घोरा हि राक्षसाः ।। राक्षसान्रक्षसैरेव पिपिषुर्वानरा युधि ।। २६ ।।

---

* मुष्टिप्रहारेण निष्क्रांतलोचनाः । * आर्षम् ।

रथसे रथीको राक्षसको राक्षस द्वारा घोडेको घोडेसे पृथ्वीतलमें पीसने लगे ॥ २५ ॥ वानरोंसे वानरोंको घोररूपसे राक्षस ताडन करने लगे और राक्षसोंको राक्षसद्वारा पीसने लगे ॥ २६ ॥

आक्षिप्य च शिला जघ्नू राक्षसा वानर स्तथा ॥ तेषामाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नुस्तानपि वानराः ॥ २७ ॥ निर्जघ्नुः शैलशिखैर्बिभिन्नाश्च परस्परम् ॥ सिंहनादं विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ॥ २८ ॥

शिलाओंसे राक्षस वानरोंको मर्द्दन करने लगे और उनके शस्त्रोंको छेदन कर वानर उनको मारने लगे ॥ २७ ॥ परस्पर शैलशिखरोंको प्रहारकरके रणमें परस्पर ताडन कर रीछ वानर शब्द करने लगे ॥ २८ ॥

छिन्नचर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैः कृताः ॥ सुस्राव रुधिरं तेभ्यः स्रवतः पर्वतादिव ॥ २९ ॥ तस्मिंस्तथा संयति संप्रवृत्ते कोलाहले राक्षसराजधान्याम् ॥ संहृष्यमाणेषु च वानरेषु निपात्यमानेषु च राक्षसेषु ॥ ३० ॥

छिन्न चर्मतरकस राक्षसोंको वानरोंने कर दिये और पर्वतोंसे झरनेके समान उनके रुधिर निकलने लगा ॥ २९ ॥ तव उस संग्रामसे प्रवृत्त होनेमें राजधानीमें बडा कोलाहल हो गया, वानरोंके प्रसन्न होनेमें और राक्षसोंके मारनेमें ॥ ३० ॥

प्रभज्य मानेषु महाबलेषु महर्षयो भूतगणाश्च नेदु ॥ तेनापि सर्वे हरयः प्रहृष्टा विनेदुराक्ष्वेडितसिंहनादैः ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तर काण्डे संकुलयुद्धं नामविंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

महासेनाके भग्न होनेमें महर्षि और भूतगण शब्द करने लगे, इससे सब वानर प्रसन्न हुए और भुजा फटकारते सिंहनाद करने लगे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीम. मा. आदि. अद्भु. भा. टी. संकुलयुद्धंनाम विं शतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशति सर्ग

रावणका रामकी सेनाको विक्षेप करना

ततो रथं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।। स रावणो रामबलं प्रहृष्टो विवेश मीनो हि यथार्णवौघम् ।। १ ।। सवानरान्हीनबलान्निरीक्ष्य प्राणेन दीप्तेन रराज राजा ।। एकक्षणेनैंद्ररिपुर्महात्मा निहंतुमैच्छन्नरवानरांश्च ।। २ ।।

तब वडे क्षीण रथमें सवार होकर तीक्ष्ण शक्तिको ग्रहण कर रावण रामकी सेनामें ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे मीन सागरमें प्रवेश करती है ।। १ ।। तब वह वानरोंको हीनवल देखकर और राजा रावण प्राणोंके दीप्त होनेपर एकही क्षणमें उस वानरी सेनाके मारनेकी इच्छा करने लगा ।। २ ।।

मनसा चिंतयामास सहस्र कंधरः स्वराट् ।। एते क्षुद्राः समायाताः प्राणांरस्त्यक्त्वा धनानि च।। ३ ।। द्वीपांतरं महत्प्राप्य मम युद्धाभिकांक्षिणः ।। किं स्यान्म महतैः क्षुद्रैर्नरराक्षसवानरैः ।। ४ ।।

वह सहस्रमुखका रावण मनमें विचार करने लगा, यह क्षुद्र अपने प्राण और धन छोडकर यहां आये हैं ।। ३ ।। और द्वीपान्तरमें प्राप्त होकर मुझसे युद्धकी इच्छा करते हैं, इन क्षुद्र नर राइक्षस वानरोंके मारनेसे मुझे क्या मिलेगा ।। ४ ।।

यस्माद्देशात्समायातास्तं देशं प्रापयाम्यहम् ।। क्षुल्लकेषु शराघातं न प्रशंसंति पंडिताः ।। ५ ।। इति संचिंत्य धनुषावायव्यास्त्रं युयोज ह ।। तेनास्त्रेण नरा ऋक्षा वानरा राक्षसा हि ते ।। ६ ।।

यह जिस देशसे आये हैं उसी देशमें प्राप्त किये देता हूँ क्षुद्रोंमें शराघात करनेकी पंडित जन प्रशंसा नहीं करते हैं ।। ५ ।। यह विचार कर धनुषपर वायव्य अस्त्र चढाया, उस अस्त्रसे राक्षस वानर जितने सेनाके लोग थे ।। ६ ।।

यस्माद्यस्मात्समायातास्तं तं देशं प्रयापिताः ।। गलहस्तिकया विप्र चोरान्राजभटा इव ।। ७ ।। ते सर्वे स्वगृहं प्राप्ता अस्त्रवेगेन विस्मिताः ।।क्व स्थिताः क्व समा*यातामन्यंत स्वप्न एव तैः ।।८।।

---

* समायाताः अमन्यतेतिच्छदः संधिरार्षः ।

जिस जिस देशसे आये थे उस उस देशको चले गये, जैसे जबरदस्ती चोरोंको राजसेवक गलहस्त देकर निकालते हैं ।। ७ ।। वे अस्त्रवेगसे अपने अपने घर आकर आश्चर्य करने लगे, हम कहां थे कहां आ गये इस प्रकार स्वप्न देखने लगे ।। ८ ।।

प्रलयानिलवेगेन अस्त्रेण वंचिता भृशम् ।। भरतो लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नो हनुमांस्तथा ।। ९ ।। सुग्रीवनलनीलाद्या हरयोऽनिलरंहस ।। विभीषणपुरोगाश्च राक्षसाः क्रूरविक्रमाः ।। १० ।।

प्रलयकी पवनके वेगसे अत्यन्त आहत हुए भरत, शत्रुघ्न, हनुमान् ।। ९ ।। सुग्रीव, नल, नीलादि वानर पवनवेगसे विभीषणादि सम्पूर्ण राक्षस जो बडे पराक्रमी थे ।। १० ।।

वानराश्च नरा ऋक्षा राक्षसा अक्षता गृहम् ।। प्राप्यातिविस्मिताः सर्वे शोचंतो राममेवपि ।। ११ ।। पुष्करे पुष्पकेतिष्ठन्ससीतो राघवः परम् ।। आस्ते स्म नास्त्रवेगोऽयं रामं चालयितुं क्षमः । १२ ।

वानर, नर, रीछ, राक्षस सब अक्षत अपने घर प्राप्त हो महाविस्मययुक्त रामचन्द्रके निमित्त शोच करने लगे ।। ११ ।। केवल सीतासहित रामचन्द्र पुष्पक विमानमें स्थित रहे, वह अस्त्र रामको चलायमान करनेको समर्थ न हुआ ।। १२ ।।

महर्षयोऽपि तत्रासन्किमेतदिति विस्मिताः ।। सापि सीता महाभागा तत्रास्ते स्म शुचिस्मिता ।। १३ ।। गन्धर्वनगराकारं दृष्ट्वा रामबलं महत् ।। स्वस्तीतिवादिनः सौम्यशांतिं जेपुर्महर्षयः ।। १४ ।।

जो महर्षि थे वेभी यह क्या हुआ, इस प्रकार आश्चर्यमें भरकर शोचने लगे; वह महाभागा मनोहर हास्ययुक्त जानकीभी वहीं स्थित रही ।। १३ ।। गन्धर्वनगरके समान वह रामकी बडी भारी सेनाको देख स्वस्ति कहकर ऋषिजनशांतिका जप करने लगे ।। १४ ।।

अन्तरिक्षचराः सर्वे हाहाकारं प्रचक्रिरे ।। देवा अग्निमुखा विप्र किं कृतं रावणेन हि ।। १५ ।। गरुडस्थो यदा विष्णू रावणं हंतुमागत ।।लीलया लवणांभोधौ क्षिप्तो विष्णुः सनातनः ।। १६ ।।

अन्तरिक्षचारी जीव हाहाकार करने लगे, अग्निमुखादि देवता कहने लगे यह रावणने क्या किया ।। १५ ।। जिस समय गरुडपर स्थित विष्णु रावणके मारनेको आये थे तो इसने लीलासेही सागरकी ओर क्षिप्त कर दिया था ।। १६।

साट्टहासं विनद्योच्चै रक्षसा वामपाणिना ।। ततः प्रभृति देवाश्च गंधर्वाः किन्नरा नराः ।। १७ ।। गन्धमस्य न गृह्णन्ति शार्दूलस्येव जंबुकाः ।। सोऽयं विष्णुर्दशरथाज्जातो देवः सनातनः ।। १८ ।।

और हँसकर बाँये हाथसेही यह कार्य इसने किया था; उस दिनसे देवता गन्धर्व किन्नर अप्सरा ।। १७ ।। इसकी गन्धतक ग्रहण नहीं करते हैं, जैसे शार्दूलकी गन्धको जंबुक नहीं ग्रहण करते हैं, वही यह सतातन विष्णु दशरथसे उत्पन्न हुए हैं ।। १८ ।।

अस्माकं भागधेयेन रामो जयतु रावणम् ।। परस्परं सुराः सर्वे वदंतोऽन्तर्हिता स्थिताः ।। १९ ।। ननर्द च सहस्रास्याः क्षुद्रं मत्वा स राघवम् ।। विसिष्मिये च रामोऽपि तद्दृष्ट्वा कर्म दुष्करम् ।।२०।। क्रोधमाहारयामास रावणस्य वधं प्रति ।। ततः किलकिलाशब्दं चक्रू राक्षसपुंगवाः ।। २१ ।। स राघवः पद्मपलाशलोचनो जज्वाल कोपेन द्विषज्जयेषणः ।। रामं प्रहर्तुं न शशाक मेदिनी चकंपिरे वारिधयो ग्रहा अपि ।। २२ ।।

इत्यार्षे श्रीम. वाल्मी. आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकांडे रामसैन्यविक्षेपणं नामैकविंशतितमः सर्गः ।। २१ ।।

हमारे भाग्यसे राम रावणको जीतें, इस प्रकार अन्तरमें स्थित हुए सब देवता परस्पर कहने लगे ।। १९ ।। और रामचन्द्रको क्षुद्र मानकर रावण गर्जने लगा, उसका यह दुष्कर कर्म देखकर रामचन्द्रको आश्चर्य हुआ ।। २० ।। और रावणके वध करनेको बडा क्रोध किया, तब राक्षस किलकिला शब्द करने लगे ।। २१ ।। तब कमललोचन रामचन्द्र शत्रुको जीतनेके निमित्त क्रोधसे जल उठे, तब इधर रामके प्रहार करनेको समर्थ न हुआ तब पृथ्वी, सागर और सब ग्रह कंपित होगये ।। २२ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्वा. अद्भु. भा.टी. रामसैन्यविक्षेपणं नामकैविंशतितमः सर्गः ।। २१ ।।

द्वाविंशति सर्ग

रामचन्द्रका मूर्च्छित होना

विनर्दंतं रिपुं दृष्ट्वा रामः शत्रुनिबर्हणः। जज्वालच स कोपेन राक्षसां सहजो रिपुः ।। १ ।।विचकर्ष धनुः श्रेष्ठ प्रलयानलसंनिभम् ।। वेगेन बाणांश्चिक्षेप रक्षसां मर्मसु प्रभुः ।। २ ।।

शत्रुनाशी श्रीरामचन्द्रजी शत्रुको गर्जन करता हुआ देखकर वह राक्षसोंके स्वाभाविक शत्रु कोपसे जल उठे ।। १ ।। प्रलयके समान उस धनुषश्रेष्ठको खेंचकर वेगसे राक्षसोंके मर्मस्थानमें प्रभु बाण प्रहार करने लगे ।। २ ।।

तिलशः खण्डयन्ति स्म बाणा रक्षसपुङ्गवान् ।। कदा धनुषि संधत्ते कदा विसृजति प्रभुः ।। ३ ।। नान्तरं ददृशे कैश्चिच्छिन्नाः स्युररयः परम् ।। जघान राक्षसान्रामो रुद्रः पशुगणानिव ।। ४ ।।

और बाणोंसे राक्षसश्रेष्ठोंको खंड खंड करने लगे कब धनुषके ऊपर बाण चढाते और कब छोडते हैं ।। ३ ।। इसमें कुछभी अन्तर नहीं दीखता था और शत्रु क्षीण होते चले जाते थे, रामने राक्षसोंको ऐसा मारा जैसे रुद्र पशुओंका संहार करता है ।। ४ ।।

तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म कृतं रामेण रावणः।।अनीकाग्रं समासाद्य युयुधे राघवेण हि ।। ५ ।। रे रे राक्षससेनान्यः प्रेक्षका इव तिष्ठत ।। अहमेको हनिष्यामि नरमाकस्मिकं रिपुम् ।। ६ ।।

रामचंद्रका यह दुष्कर कर्म देखकर रावण रामचन्द्रके साथ युद्ध करने लगा ।। ५ ।। अरे राक्षसी सेनाके लोगो ! क्या तुम देखते हुए स्थित हो, मैं इस अकस्मात् आये शत्रुको इकला वध करूंगा ।। ६ ।।

अद्य निर्मानवां पृथ्वीं निर्देवं त्रिदिवं तथा ।। करिष्यास्म्यहमेवैकः शोषयिष्यामि वारिधीन् ।। ७ ।। पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि पातयिष्यामि वै ग्रहान् ।। इत्युक्त्वा राक्षसश्रेष्ठो रामं योद्धुमथाह्वयत् ।। ८ ।।

आज पृथ्वीको निर्मनुष्य कर डालूंगा, तथा त्रिदिवको देवतारहित करदूंगा और सागरको सोख डालूंगा ।। ७ ।। पर्वतोंको चूर्ण कर ग्रहोंको गिरा दूंगा, हे राम ! यह लंकापुरी नहीं है यह कहकर राक्षसश्रेष्ठ रामचन्द्रको युद्ध के निमित बुलाने लगा ।। ८ ।।

त्वामद्य खड्गेनाच्छिद्य तर्पयिष्यामि चानुगान् ।। नेयं लंकापुरी राम नाहञ्च दशकन्धरः ।। ९ ।। शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया रघुनन्दन ।। कपित्थमिव काकुत्स्थ करी मदकलः किल ।। १० ।।

कि, आज तुमको खड्गसे छेदन कर अपने अनुचरोंको तृप्त कर दूगा, हे राम ! न तो यह लंकापूरी है और न मैं दशमुख रावण हूं ।। ९ ।। मैं गदासे तुम्हारा शिर चूर्ण कर दूंगा यह कैथकी तरहसे वा मदवाले हाथीके समान गिरेगा ।। १० ।।

इत्युक्त्वा रावणो युद्धं रामेण सह चारभत् ।। तदभूद्वैरथं युद्धं बलिवासवयोरिव ।। ११ ।। रावणं प्राप्य रामोऽपि परं हर्षमुपागमत् ।। तदभूदद्भुतं युद्धं द्वयोर्वै रोमहर्षणम् ।। १२ ।।

यह कह रावण रामचन्द्रके साथ युद्ध करने लगा वह बलि वासवके समान वीरथ युद्ध होने लगा ।। ११ ।। रावणको प्राप्त हो राम भी परम प्रसन्न हुए, वह उन दोनोंका रोमहर्षण युद्ध हुआ ।। १२ ।।

रामस्य च महाबाहोर्बलिनो रावणस्य च ।। गांधर्वेण च गांधर्वं दैवं दैवेन राघवः ।। १३ ।। अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।। अस्त्रयुद्धे च परमो रावणो राक्षसाधिपः ।। १४ ।।

महाबाहु राम और वली रावणका गन्धर्व तथा दैव आदि अस्त्रोंसे युद्ध होने लगा ।। १३ ।। परमास्त्रज्ञाता रामने राक्षसराजके अस्त्रोंको ताडन कर दिया, परम अस्त्रयोधी राक्षसपति रावण ।। १४ ।।

ससर्ज परदक्रुद्धः पंन्नगास्त्र स राघवे ।। ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः कांचनभूषिताः ।। १५ ।। अभ्यवर्त्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ।। ते सर्पवदना घोरा वमन्तो ज्वलनं मुखैः ।। १६ ।।

रामचन्द्रके ऊपर पन्नगास्त्रका प्रहार करता हुआ उससे रावणके धनुषसे मुक्त हुए सुवर्णभूषित बाण ।। १५ ।। रामके ऊपर सर्प होकर गिरने लगे और वे घोर सर्प मुखसे अग्निको वमन करते थे ।। १६ ।।

राममेवाभ्यवर्त्तंत व्यादितास्या भयावहाः ।। तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ।। १७ ।। दिशश्च विदिशश्चैव समंतादावृता भृशम् ।। रामः संपततो दृष्ट्वा पन्नगांस्तान्सहस्रशः ।। १८ ।।

मुख फैलाये हुए वे महाबली सर्प रामके ही निकट धावमान हुए वह वासुकीके समान दीप्त भागवाले महाविषैले ।। १७ ।। दिशा विदिशाओंको सब ओरसे व्याप्त करते हुए, तब रामचन्द्र सब ओर सर्पोंको धावमान देखकर ।। १८ ।।

सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुनः प्रावर्तयद्रणे ।। रामेण च शरा मुक्ता रुक्मपुंखाः शिलाशिताः ।। १९ ।। सुपर्णाः कांचना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ।। ते ताञ्छत्रुशराञ्जघ्नुः सर्परूपान्महाविषान् ।। २० ।।

युद्धमें घोर गरुडास्त्रका स्मरण करते हुए, वे रामचन्द्रके सुवर्ण पुखवाले बाण शिलापर पैनाये हुए ।। १९ ।। सुवर्णके गरुड होकर सब ओरसे सर्पशत्रु विचरने लगे उन्होंने रावणके महाविषैले सर्पोंका नाश कर दिया ।। २० ।।

सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ।। अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।।२१।। अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिश्चाश्मवृष्टिभिः ।। ततः शरसहस्रेण पुनरक्लिष्टकारिणम् ।। २२ ।।

शिखाहीन कामरूपी रामके बाणोंसे अस्त्र नष्ट होनेसे राक्षसराज रावण बडा क्रोधित हुआ ।। २१ ।। और रघुनाथजीके ऊपर घोर पत्थरकी वर्षा करने लगा, फिर सौ सहस्र बाणसे अक्लिष्ट कर्मकारी ।। २२ ।।

रामबाणानभ्यहनद्घोराभिः शरवृष्टिभिः ।। विषेदुर्देवगंधर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ।। २३ ।। रामभार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।। रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावण राहुणा ।। २४ ।।

रामके बाणोंको घोर बाणवर्षासे नष्ट करने लगा । देव, गन्धर्व, चारण, पितर यह देखकर दुःखी हुए ।। २३ ।। रामचन्द्रको व्याकुल देखकर सिद्ध और परमर्षि ऐसे जानने लगे मानो चन्द्रको राहु ग्रास करता हो ।। २४ ।।

प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ।। समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजाना महिते रतः ।। २५ ।। सधूमः परिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ।। उत्पपात ततः क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ।। २६ ।।

उस समय प्रजापतिका नक्षत्र चन्द्रमाकी प्रिया रोहिणीको आक्रमण कर बुध स्थित हुआ, इससे भी प्रजाका अहित होता है ।। २५।। समुद्र जलने सा लगा और धूम निकलने लगा तब वह रावण सूर्यको स्पर्श करते हुए के समान ऊपरको कूदा ।। २६ ।।

नष्टरूपश्च परुषो मंदरश्मिर्दिवाकरः।।अदृश्यत कबंधांकः समेतो धूमकेतुना ।। २७ ।। ऋक्षाश्वरवनिर्घोषा गगने पुरुषाधमाः ।। औत्पातिकानि नर्दतः समंतात्परिचक्रमुः ।। २८ ।।

उस समय नष्टरूप पुरुष और मन्द किरणोंवाला सूर्य हो गया और धूमकेतुके सहित कबन्ध दीखने लगा ।। २७ ।। आकाशमें नक्षत्रोंका तीक्ष्ण शब्द होने लगा, सब ओरसे उत्पात दीखने लगे ।। २८ ।।

रामोऽपि बद्ध्वा भ्रुकुटिं क्रोधसंरक्तलोचनः ।। क्रोधं चकार सुभृशं निर्दहन्निव राक्षसम् ।। २९ ।। तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।। सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकंपत मही तदा ।। ३० ।।

रामचन्द्रभी भौंह चढाये क्रोधसे लालनेत्र किये राक्षसको जलाते हुएके समान क्रोध करते हुए ।। २९ ।। उन क्रोध किये रामचन्द्रका मुख देखकर सब भूत घबडा गये और पृथ्वी कंपित होगई ।। ३० ।।

सिंहशार्दूलवाञ्छैलः प्रजज्वालाकुलद्रुमः ।। बभूव चातिक्षुभितः समुद्र इव [1]पर्वसु ।।३१।। लंकायां रावणवधे यं प्रायुंक्त शरं प्रभुः ।। जग्राह तं शरं दीप्तं निःसंतमिवोरगम् ।। ३२ ।।

सिंह शार्दूलके सहित पर्वत और कुलवृक्ष जल उठे और पर्वतमें सागरके समान समुद्र क्षुभित होगये ।। ३१ ।। लंकामें रावण वधके निमित्त जो बाण प्रभुने चलाया था, उसी बाणको श्वास लेते सर्पके समान ।। ३२ ।।

यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ।।[2]ब्रह्मदत्तं महाबाणं यमाह युधि तद्वधे ।। ३३ ।। ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिंद्राद्यमिततेजसा ।। दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रैलोक्यजयकांक्षिणः ।। ३४ ।।

प्रभुने ग्रहण किया, वह ब्रह्मदत्त महाबाण अगस्त्यजीने दिया था, युद्धमें उसके वधको ग्रहण किया ।। ३३ ।। वह महातेज द्वारा ब्रह्माका निर्माण किया था, इन्द्रादिके तेज उसमें विद्यमान थे, त्रिलोकी जयकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके निमित्त वह बाण दिया गया था ।। ३४ ।।

---

१ पर्वस्विवेतिसम्बन्धः । २ यं महाबाणं ब्रह्मदत्तं प्राहेत्यन्वयः । युधितद्वधनिमित्तं ब्रह्मणा निर्मितमिति

यस्य वाजेषु पवनःफले पावकभास्करौ ।। शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ।। ३५ ।। पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ।। धनदो वरुणश्चैव पाशहस्तस्तथांतकः ।। ३६ ।।

जिसके पंखमें पवन, फलमें अग्नि और सूर्य, आकाशमय शरीर, गुरुतामें मेरुमंदरके समान ।। ३५ ।। जिसकी ग्रंथियोंमें लोकपाल स्थित थे, कुबेर, वरुण, पाश हाथमें लिये यमराज ।। ३६ ।।

जाज्वल्यमानं वपुषा सपुंखं हेमभूषितम् ।। तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसा ।। ३७ ।। सधूममिव कालाग्नि दीप्यमानं रविं यथा ।। रथनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ।। ३८ ।।

शरीरसे प्रकाशमान सुवर्णके पंख बने सूर्यके समान तेजसे सब लोकका प्रकाश करनेवाला ।। ३७ ।। धूमयुक्त कालाग्निके समान, प्रकाशमें सूर्यके समान, रथ हाथियोंका शीघ्र भेदन करनेवाला ।। ३८ ।।

परिघाणां सहस्राणां गिरीणां चैव भेदनम् ।। नानारुधिरसिक्तांगं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ।। ३९ ।। कालाभं सुमहानादं नानाशक्तिविनाशनम् ।। शत्रूणां त्रासजननं सपक्षमिव पन्नगम् ।। ४० ।।

सहस्रों परिघ और पर्वतोंका भेदनेवाला अनेक रुधिरोंसे सिक्त, अंग मेदसे अच्छादित ।। ३९ ।। कालके समान, बडे शब्दसे अनेक शक्तियोंका नाश करनेवाला शत्रुओंका त्रास देनेवाला, पंखयुक्त सर्पके समान ।। ४० ।।

काकगृध्रबकानां च गोमायुवृकरक्षसाम् ।। नित्यं भक्ष्यप्रदं युद्धे राक्षसानां भयावहम् ।। ४१ ।। द्विषतां कीर्तिहरणं प्रकर्षकरमात्मनः ।। अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः ।। ४२ ।।

काक, गृध्र, बक, गोमायु (शृगाल) भेंडियों तथा राक्षसोंको नित्य भक्षका देनेवाला, राक्षसोंको भयदायक ।। ४१ ।। शत्रुओंकी कीर्तिका हरनेवाला अपनी उन्नति करनेवाले उस बाणको अभिमंत्रित कर रामचन्द्रने । ४२ ।।

वेदप्रोक्तेन विधिना कुण्डलीकृत्य कार्मुकम् ।। स रावणाय तं वेगाच्चिक्षेप शर मुत्तमम् ।।४३।। स सायको धर्नुमुक्तो हन्तुं रामेण रावणम् ।। धूमपूर्वं प्रजज्वाल प्राप्य वायुपथं महान् ।। ४४ ।।

वेदके कहे विधानसे धनुषपर चढाय रावणके ऊपर बडे वेगसे छोडा ।। ४३ ।। छोडा हुआ बाण प्रथम धूमयुक्त जल उठा और फिर वायुके मार्गको प्राप्त होकर चला ।। ४४ ।।

तं वज्रमिव दुर्धर्षं वज्रपाणिविसर्जितम् ।। कृतांतकमिवावार्यं रावणो वीक्ष्य तत्पुरः ।। ४५ ।। हुंकृत्य किल जग्राह बाणं वामेन पाणिना ।। ततस्तं जानुना कृष्य बभंज राक्षसाधिपः ।। ४६ ।।

इन्द्रके हाथसे छोडे हुए वज्रके समान महादुर्धर्ष कालके समान निवारण करनेके अयोग्य उस बाणको देखकर रावण ।। ४५ ।। "हूं" ऐसा शब्द कर वाम हाथसे बाण ग्रहण कर लेता हुआ, और जंघासे खैंचकर उसको तोड डाला ४६ ।

भग्ने तस्मिञ्छरे रामो विमना इव तस्थिवान् ।। सहस्रकन्धरः क्रुद्धः क्षुरंप्रगृह्य सायकम् ।।४७।। बव्याध रा*घवं वक्षः सर्वप्राणेन राक्षसः ।। वक्षो निर्भिद्य स शरो रामस्य सुमहात्मनः ।। ४८ ।।

उस बाणके भग्न होसे रामचन्द्र विमन होकर स्थित हुए, तब वह सहस्र-कंधर क्रोध कर तीक्ष्ण बाणको ग्रहण कर ।। ४७ ।। सम्पूर्ण बलसे रामचन्द्रकी छातीमें ताडन करता हुआ ।। ४८ ।।

भित्त्वा महीं च सहसा पाताल तलमाविशत् ।। ततो रामो महाबाहुः पपात पुष्पकोपरि ।। ४९ ।। निःसंज्ञो निश्चलश्चासीद्धाहा भूतानि चक्रिरे ।। प्राकम्पत मही सर्वा सपर्वतवनाब्धिका ।। ऋषयः कांदिशीकास्ते हा राम इति वादिनः ।। ५० ।।

वह बाण रामचंद्रकी छातीको भेदन कर पृथ्वी फाडकर पातालमें प्रवेश कर गया, तब महाबाहु राम मूर्च्छित हो पुष्पकमें गिरे ।।४९।।निश्चल और अचेतन हो गये, सब प्राणी हाहाकार करने लगे, सब पर्वत और वनोंके सहित पृथ्वी कंपित हो गई और हा राम ! इस प्रकारके शब्द ऋषिजन करने लगे ५०

दशशतवदनो जितारिरुग्रोरणशिरसि प्रननर्त सानुयात्रः ।। गगनतलगता निपेतुरुल्काः प्रलयमिवापि च मेनिरे जनौघाः ।। ५१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तर कांडे रामस्वप्नायितं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ।। २२ ।।

शत्रुका जीतनेवाला सहस्रमुखी रावणर णमें नृत्य करने लगा अकाशसे उल्कापात होने लगीं, सब प्राणियोंने जाना अब प्रलय हो जायगी ।। ५१ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे ज्वाला-प्रसादमिश्रकृत रामस्वप्नायितं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ।। २२ ।।

---

* रावणं राघवसम्बन्धि ।

त्रयोविंशति सर्ग

जानकीद्वारा सहस्रमुखी रावणका वध

रामं तथाविधं दृष्ट्वा मुनयो भयविह्वलाः ।। हाहाकारं प्रकुर्वंतः शांतिं जेपुश्च केचन ।। १ ।। तदा तु मुनिभिर्दृष्टा सीता प्रहसिताननना ।। वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे सीतां प्रोचुर्महर्षयः ।। २ ।।

रामचन्द्रको इस प्रकारका देख मुनि भयसे व्याकुल हो गये और कोई हाहाकार कर शान्तिपाठ करने लगे ।। १ ।। उस समय जानकीको हास्यमुख देखकर वसिष्ठ आदि ऋषि जानकीसे कहने लगे ।। २ ।।

सीते कथं श्रावितोऽयं रावणं राघव स्त्वया ।। समुत्पन्नो विपाकोऽयं घोरो जनकनंदिनि ।। ३ ।। क्व गता भ्रातरः सर्वे क्व गता वानरर्षभाः ।। मंत्रिणः क्व गता भद्रे रामस्य किमुपस्थितम् ।। ४ ।।

हे जानकी ! क्यों इस रावणकी वार्ता रामचन्द्रको सुनाई, इसीका घोर-फल रघुनन्दनको उपस्थित हुआ है ।। ३ ।। सब भाई और वानर जाने कहां गये, हे भद्रे ! सब मंत्री कहां गये, रघुनाथजीको यह क्या व्यसन उपस्थित हुआ है ।। ४ ।।

श्रुत्वैतद्वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।। रामं तथाविधं दृष्ट्वा शयानं पुष्पकोपरि ।। ५ ।। पुंडरीकनिभे नेत्रे निमील्य रणमूर्द्धनि ।। आलिंग्य चोरसा सुप्तं प्रियामिव धनुः शरम् ।। ६ ।।नर्दन्तं राक्षसं चापि महाबलपराक्रमम् ।। साट्टहासं विनद्योच्चैः सीता जनकनंदिनी ।। ७ ।। स्वरूपं प्रजहौ देवी महाविकटरूपिणी ।। क्षुत्क्षामाच कोटराक्षी चक्रभ्रमितलोचना ।। ८ ।।

उन मुनियोंके इस प्रकारके वचन श्रवण कर और रामचन्द्रको पुष्पकपर मूर्च्छित देखकर ।। ५ ।। धनुष शर लिये मूर्च्छित रामको आलिंगन कर कमलकेसे नेत्रोंको रणस्थलमें मीचकर ।। ६ ।। महाबली पराक्रमी राक्षसको शब्द करता देखकर जनकनंदिनी सीता ऊँचे स्वरसे अट्टहास करके ।। ७ ।। वह महाविकट रूपवाली होकर अपना पूर्वरूप त्यागन करती हुई भूंखसे व्याकुल कोटराक्षी चक्रके समान भ्रमित लोचन ।। ८ ।।

दीर्घजंघा महारावा मुंडमालाविभूषणा ।। अस्थिकिंकिणिका भीमा भीमवेगपराक्रमा ।। ९ ।। खरस्वरा महाघोरा विकृता विकृतानना, ।। चतुर्भुजा दीर्घतुंडा शिरोऽलंकरणोज्ज्वला ।। १० ।।

दीर्घजंघा महाशब्दवाली मुण्डमालाके भूषणोंवाली हड्डियोंकी क्षुद्रघण्टिका पहरे भीम वेग पराक्रमवाली ।। ९ ।। तीक्ष्ण शब्दवाली महाघोर विकृतमुखवाली चार भुजा दीर्घतुण्ड उज्ज्वल शिरके भूषण पहरे ।। १० ।।

ललज्जिह्वा जटाजूटैर्मण्डिता चण्डरोमिका ।। प्रलयांभोदकालाभा घंटापाशविधारिणी ।। ११ ।। अवस्कंद्य*रथात्तूर्णं खड्गखर्परधारिणी ।। श्येनीव रावणरथे पपात निमिषान्तरे ।। १२ ।।

चलायमानजिह्वा जटाजूटसे मण्डित चण्डरोमवाली प्रलयसागर और कालके समान घंटापाशको धारण करनेवालीं ।। ११ ।। पुष्पकसे शीघ्रतासे उतरकर खड्ग खर्पर धारण किये बाजिनीके समान रावणके रथपर टूट पडी ।। १२ ।।

शिरांसि रावणस्याशु निमेषान्तरमात्रतः ।। खड्गेन तस्य चिच्छेद सहस्राणीह लीलया ।। १३ ।। अन्येषां योद्धृवीराणां शिरांसि नखरेण हि ।। भिन्ना निपातयामास भूमौ तेषां दुरात्मनाम् ।। १४ ।।

एक निमेषमात्रमेंही लीलासे रावणके सहस्र शिर खड्गसे काट डाले ।। १३। और भी वीर योधाओंके शिर नखोंसे तोड तोडकर पृथ्वीमें डाल दिये ।। १४ ।।

केषांचित्पाटयामास नख कोष्ठानि जानकी ।। खड्गेन चाच्छिनत्कांश्चित्क्रूरान्पादांश्च चिच्छिदे ।। १५ ।। खण्डं खण्डं चकारान्यांस्तिलशः कांश्चिदेव हि ।। अन्त्राण्यन्यस्याचकर्ष पादाघातेन कांश्चन ।। १६ ।।

किन्हींके कोष्ठ नखोंसे चीर डाले, किन्हींके चरण आदि अंग खड्गसे काट डाले ।। १५ ।। किन्हींके अंग खड्गसे तिलके बराबर काटकर चूर्णकर दिये, किसीको चरणाघात कर आंतें निकालकर खेंचन लगी ।। १६ ।।

पार्श्वेन निजघानान्यान्पार्ष्णिनान्यानपोथयत् ।। कांश्चिच्छरीरवातेन दृष्ट्वाप्यन्यानपातयत् ।। १७ ।। प्रलयं कुर्वती सीता राक्षसानां भयंकरी ।। निजघानाट्टहासेन कांश्चित्पृष्ठे द्विधाकरोत् । १८ ।

---

* पुष्पकादित्यर्थः । सम्मार पुष्पकं रथमित्यत्र पुष्पके रथशब्द प्रयोगात् ।

पार्श्वभागसे इधर उधरके राक्षसोंको प्रहार करने लगी, किन्हींको शरीरकी पवनोंसे नष्ट करती हुई ॥ १७ ॥ वह राक्षसोंको भयदायक प्रलय करने लगी, किसीको अट्टहास कर पृष्ठभागसे दो टुकडे करती हुई ॥ १८ ॥

कांश्चित्केशान्समाकृष्य निष्पिपेष महीतले ॥ सारथान्सगजान्साश्वान्सगदासहतोमरान् ॥ १९ ॥ कांश्चिद्योधान्समाकृष्य मज्जयामास वारिधौ ॥ गले चोद्बद्धच केषांचित्प्राणाञ्जग्राह जानकी ।२० ।

किन्हींके केश पकडकर पीस डालती हुई रथ हाथी घोडे तोमरोंसहित ॥ १९ ॥ खैंचकर किसीको सागरमें डुबाती हुई, किसीका गला घोटकर जानकीने प्राण हरण कर लिये ॥ २० ॥

केषांचित्स्कंध आरुह्य शिरांस्युत्पाटितानि हि ॥ हुंकारेणाट्टहासेन कांश्चित्प्राणानहापयत् ॥ २१ ॥ कांश्चित्प्रचूर्ण्य वदनं पशुमारममारयत् ॥ तान्सर्वान्निमिषेणैव निहत्य जनकात्मजा ॥ २२ ॥

किन्हींके कंधेपर कूदकर शिर तोडती हुई, किन्हींके प्राण अट्टहास और हुंकारसे हरण कर लिये ॥ २१ ॥ किन्हींके वदनको चूर्ण कर पशुओंके समान मार डाला. इस प्रकार एक निमेषमात्रमें जानकी उन सबको मारकर ॥ २२ ॥

तेषामंत्रेण शिरसां मालाभिः कृतभूषणा ॥ रावणस्य शिरांस्युग्राण्यादाय रणमूर्द्धनि ॥ २३ ॥ कंडुकक्रीडनं कर्तुं मनश्चक्रे मनस्विनी ॥ एतस्मिन्नंतरे तस्यां रोमकूपेभ्य उद्गताः ॥ २४ ॥

उनके शिरोंकी माला बनाकर धारण करती हुई और रणस्थलमें वे रावणके शिर लेकर ॥ २३ ॥ उनसे वह मनस्विनी गेंदका खेल करनेकी इच्छा करने लगी इसी अवसरमें उसके रोमकूपसे निलकर ॥ २४ ॥

मातरो विकृताकाराः साट्टहासाः समाययुः ॥ सह कदुंकलीलार्थे सीतया ताः सहस्रशः २५ ॥ तासां कासांचिदाख्यास्ये नामानि शृणुसुव्रत ॥ याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्चराचराः । २६

विकृत आकारवाली माताएँ हँसती हुई प्राप्त हुई, वह सहस्रों कंदुक क्रीडामें जानकीको सहायता देने लगीं ॥ २५ ॥ हे सुव्रत् उनमें किन्हींके नाम मैं कहता हूं, जिन कल्याणियोंसे त्रिलोकी व्याप्त रही है ॥ २६ ॥

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोनसी तथा ।। श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ।। २७ ।। अप्सुजाता च गोपाली बृहदंबालिका तथा ।। जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी ।। २८ ।।

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोनसी श्रीमती बहुला बहुपत्रिका ।। २७ ।। अप्सुजाता गोपाली बृहदम्बालिका जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी २८

वसुदामा सुदामा च विशोका नंदिनी तथा ।। एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्चटीतमा ।। २९ ।। उत्तेजनी जया सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।। शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ।। ३० ।।

सुदामा वसुदामा विशोका नंदिनी एकचूडा चक्रनेमि चटीतमा ।। २९ ।। उत्तेजनी तया सेना कमलाक्षी शोभना शत्रुञ्जया क्रोधना शलभी खरी।। ३० ।।

माधवी शुभ्रवस्त्रा च तीर्थसेनी जटोज्ज्वला ।। गीतप्रिया च कल्याणी कद्रुरोमामिताशना ।। ३१ ।। मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।। अलाताक्षी वेगवती विद्युज्जिह्वा च भारती ।। ३२ ।।

माधवी शुभ्रवस्त्रा तीर्थसेना जटा उज्ज्वला गीतप्रिया कल्याणी कद्रुरोमा अमिताशना ।। ३१ ।। मेघस्वना भोगवती सुभ्रू कनकावती अलाताक्षी वेगवती विद्युज्जिह्वा भारती ।। ३२ ।।

पद्मावती सुनेत्रा च गंधरा बहुयोजना ।।सन्नालिका महाकाली कमला च महाबला ।। ३३ ।। सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।। नृत्यप्रिया परानन्दा शतोलूखलमेखला ।। ३४ ।।

पद्मावती सुनेत्रा गंधरा बहुयोजना सन्नालिका महाकाला कमला महाबला ३३ सुदामा बहुदामा सुप्रभा यशस्विनी नृत्यप्रिया परामंदा शतोलूखमलमेखरा ।। ३४ ।।

शतघंटा शतानंदा आनन्दा भवतारिणी ।। वपुष्मती चंद्रसीता भद्रकाली सटामला ।। ३५ ।। झंकारिका निष्कुटिका रामा चत्वरवासिनी ।। सुमला सुस्तनवती वृद्धिकामा जयप्रिया ।। ३६ ।।

शतघंटा शतानन्दा आनन्दा भवतारिणी वपुष्मती चन्द्रसीता भद्रकाली सठामला ।। ३५ ।। झंकारिका निष्कुटिका रामा चत्वरवासिनी सुमला सुस्तनमती वृद्धिकामा जयाप्रिया ।। ३६ ।।

धना सुप्रसादा च भवदा च जनेश्वरी ।। एडी भेंडी समेंडी च वेतालजननी तथा ।। ३७ ।। कंदुतिः कंदुका चैव वेदमित्रा सुदेविका ।। लम्बास्या केतकी चैव चित्र सेना चलाचला ।। ३८ ।।

धनदा सुप्रसादा भवदा जनेश्वरी एडी समेंडी भेंडी वेतालजननी ।। ३७ ।। कंदुति कन्दुका वेदमित्रा सुदेविका लम्बास्या केतकी चित्रसेना चला अचला ३८

कुक्कुटिका शृंखलिका तथा शंकुलिका हडा ।। कन्दालिका काकलिका कुंभिकाथ शतोदरी ।। ३९ ।। उत्काथिनी जवेला च महावेगा च कंकिनी ।। मनोजवा कटकिनी प्रघसा पूतना तथा । ४० ।

कुक्कुटिका शृंखलिका संकुलिखा हडा कंदालिका काकलिका कुंभिका शतोदरी ।। ३९ ।। उत्काथिनी जवेला महावेगा कंकिनी मनोजवा कटकिनी प्रयसा पूतना ।। ४० ।।

खेशया चातिद्रढिमा क्रोशनाथत डित्प्रभा ।। मंदोदरी च तुंडीच कोटरा मेघवाहिनी ।। ४१ ।। सुभगा लंबिनी लंबा बहुचूडा विकत्थिनी ।। ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिंगाक्षी लोहमेखला ।। ४२ ।।

खेशया अतिद्रढिमा क्रोशना तडित्प्रभा मन्दोदरी तुंडी कोटरा मेघवाहिनी ।। ४१ ।। सुभगा लम्बिनी लम्बा बहुचूडा विकत्थिनी ऊर्ध्ववेणीधरा पिंगाक्षी लोहमेखला ।। ४२ ।।

पृथुवक्त्रा मधुलिहा मधुकुंभा तथैव च ।। यक्षाणिका मत्सरिका जरायुर्जर्जरानना ।। ४३ ।। ख्याता डहडहा चैव तथा धमधमा द्विजा ।। खंडखंडा पृथुश्रोणी पूषणामणि कुट्टिका ।। ४४ ।।

पृथुवक्त्रा मधुलिहा मधुकुंभा यक्षणिका मत्सरिका जरायु जर्जरानना ।। ४३ । ख्याता दहपहा धमधमा खण्डखण्डा पृथुश्रेणी पूषणा मणिकुट्टिका ।। ४४ ।।

अम्लोचा चैव निम्लोचा तथा लंबपयोधरा ।। वेणुवीणाधरा चैव पिंगाक्षी लोहमेखला ।। ४५ ।। शशोलूकमुखी हृष्ट्वा खरजंघा महाजरा ।। शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ।। ४६ ।।

अम्लोचा निम्लोचा पलोधरा वेणुवीणाधरा पिंगाक्षी लोहमेखला ।। ४५ ।। शशोलूकमुखी हृष्टा खरजंघा महाजरा शिशुरामुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ।। ४६ ।।

जटालीका कामचरी दीर्घजिह्वाबलोत्कटा ।। कालाहिकाया मालीका मुकुटामुकुटेश्वरी ।। ४७ ।। लोहिताक्षी महाकाया हविष्पिंडा च पिंडिका ।। एकत्वचा सुकूर्मा च कुल्लाकर्णि च कर्णिका ।४८

जटालीका कामचारी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा कालाहिका मालीका मुकुटा मुकुटेश्वरी ।। ४७ ।। लोहिताक्षी महाकाया हविष्पिण्डा पिंडिका एकत्वचा सुकूर्मा कुल्लाकर्णी कर्णिका ।। ४८ ।।

सुरकर्णी चतुकर्णी कर्णप्राव रणा तथा ।। चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना ।। ४९ ।। खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ।। शंखकुंभश्रवा चैव भगदा च महाबला ।। ५० ।।

सुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा चतुष्पथ निकेता गोकर्णी महिषानना ।। ४९ ।। खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वना महास्वना शंखकुम्भश्रवा भगदा महाबला ।। ५० ।।

गणा च सुगणा चैव कामदाप्यथ कन्यका ।। चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरा ।। ५१ ।। पशुदा विभुदा चैव सुखदा च महायशाः ।। पयोदा गोमहिषदा सुविशाला चतुर्भुजा ।। ५२ ।।

गणा सुगणा कामदा कन्यका चतुष्पथ रता भूतितीर्था अन्यगोचरा ।। ५१ ।। पशुदा विभुदा सुखदा महयशा पयोदा गोमहिषदा सुविशाला चतुर्भुजा ।। ५२ ।।

प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुलोचना ।। नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मंथिनी तथा ।। ५३ ।। एकवक्त्रा मेघरवा मेघवामा द्विरोचना ।। एताश्चान्याश्च बहवो मातरः कोटिकोटिशः ।। ५४ ।।

प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा रोचमाना सुलोचना नौकर्णी मुखकर्णी विशिरा मंथिनी ।। ५३ ।। एकमुखी मेघरवा मेघवामा द्विरोचना इसके सिवाय और भी अनेकों मातायें थीं ।। ५४ ।।

असंख्याताः समाजग्मुःक्रीडितुं सीतया सह ।। दीर्घवक्ष्यो दीर्घदंत्यो दीर्घतुंड्यो द्विजोत्तम ।। ५५ ।। सरसा मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ।। माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ।। ५६ ।।

वे असंख्य जानकीके साथ क्रीडा करनेको आई, दीर्घ वक्षस्थलवाली, दीर्घ दांतोंवाली, दीर्घनासिकावाली ।। ५५ ।। सरस मधुर यौवनमती स्वलंकृत महिमासे संयुक्त कामरूपधारिणी ।। ५६ ।।

निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा कांचनसंनिभाः ।। कृष्णमेघ-निभाश्चान्या धूम्राश्च द्विजपुङ्गव ।। ५७ ।। अरुणाभा महाभागा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः ।। ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिंगाक्ष्यो लंब-मेखलाः ।। ५८ ।।

निर्मास गात्रवाली, श्वेता, कांचनके समान, कृष्णमेघके समान कोई धूम्रवर्ण वाली ।। ५७ ।। अरुणाभा, महाभागा, दीर्घबालोंवाली, श्वेतवस्त्र पहरे, ऊर्ध्ववेणी धारे, पिंगाक्षी, लम्बायमान मेखला ।। ५८ ।।

लंबोदर्यो लम्बकर्ण्यस्तथा लम्बपयोधराः ।। ताम्राक्ष्यस्ताम्र-वर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथापराः ।। ५९ ।। शत्रूणां विग्रहे नित्यं भय-दास्ता भवंत्यपि ।। कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ।। ६० ।।

लम्बे पेट, लम्बे कानवाली लम्बे पयोधरवाली, ताम्रवर्णके नेत्रवाली हर्यक्षी ।। ५९ ।। शत्रुओंके विग्रहमें नित्य भय देनेवाली होती हैं वे कामरूप धारिणी वेगमें वायुके समान हैं ।। ६० ।।

शिरांसि रक्षसां गृह्य गंडशैलोपमान्यपि ।। चिक्रीडुः सीतया सार्द्धं तस्मिन्रणधरातले ।। ६१ ।। मुंडमालाधराश्चैव काश्चिन्मुण्ड विभू-षणाः । रणांगणे महाघोरे गृध्रकंकशिवान्विते ।। ६२ ।।

पर्वतशिखरके समान राक्षसोंके शिरको ग्रहण कर धरातलमें जानकीके साथ क्रीडा करने लगीं ।। ६१ ।। कोई मुण्डमाला धारण किये कोई मुण्डोंके भूषण पहरे महाघोर रणस्थल जो कि गृध्र कंक और गीदडोंसे युक्त था । ६२ ।

मांसासृक्पंकिले घोरे तत्र तत्र पुरोपमे ।। ननर्त जानकी देवी घोर काली महाबला ।। ६३ ।। तदा चकंपे पृथिवी नौरिवानिलचालिता ।। चेलुश्च भूधराः सर्वे समुद्राश्च चकंपिरे ।। ६४ ।।

तथा मांस रुधिरके कीचसे युक्त उस पुरके समान उस रणस्थलमें महाकाली महाबला महाघोर जानकी देवी नृत्य करने लगी ।। ६३ ।। तब नौकाके समान चलायमान हो पृथ्वी कंपित होने लगी, सब पर्वत चलायमान और सागर कंपित होगये ।। ६४ ।।

स्वर्गिणां च विमानानि खात्पेतुर्भयतो द्विज ।। सूर्यस्य दुद्रुवुर्भीता वाजिनो मुक्तरश्मयः ।। ६५ ।। यदा न सेहे जानक्याः भारं सोढुं वसुंधरा ।। गंतुमैच्छत पातालं सीतापादाग्रपीडिता ।। ६६ ।।

डरसे देवताओंके विमान आकाशसे गिरने लगे, सूर्यके घोडे मार्ग त्यागने लगे ।। ६५ ।। जब पृथ्वी जानकीका भार सहनेको समर्थ न हुई और सीताके चरणग्रसे पीडित हो पातालमें जाने लगी ।। ६६ ।।

अट्टहासेन सीताया मातृणां हुंकृतेन च ।। प्रलयं मेनिरे लोकाः किमेतदिति विह्वलाः ।।६७।। धरापातालगमनं वितर्क्य सुरसत्तमैः ।। संप्रार्थितो महादेवः स्वयमायाद्रणाजिरम् ।। ६८ ।।

सीताके अट्टहास और मातृकाओंके हुंकारसे यह क्या हुआ इस प्रकार कहते लोक प्रलय मानने लगे ।। ६७ ।। देवता धराको पातालमें जाता देख महादेवसे प्रार्थना करने लगे, तब वे संग्रामस्थलमें आये ।। ६८ ।।

जानक्याः पादविन्यासे शवरूपधरो हरः ।। आत्मानं स्तंभयामास धरणीधृतिहेतवे ।। ६९ ।। सर्वभारसहो देवः सीतापादतले स्थितः शवरूपो विरूपाक्षः स्थिताभूद्धरातदा ।। ७० ।।

तब शवके समान रूप धारण कर शिव पृथ्वी थामनेको जानकीके नीचे स्थित हुए, और अपनेको स्थित किया ।। ६९ ।। सीताके पगतलमें स्थित हो देव सम्पूर्ण भार सहन करने लगे तव शवरूपधारी पृथ्वी स्तंभित हुई ।। ७० ।।

तथाप्युपरिगा लोका न स्थातुं सेहिरे क्षणम् ।। सीतायाः पादशब्देन शिरसा हुंकृतेन च ।। निःश्वासवातसंघातैर्दुःस्थिता भूर्भुवादयः । ७१ । धरणितनयया यद्भीमनृत्यं धरण्यां कृतमिह मनसा तच्चिंतयंतो द्विजेंद्राः ।। जयति जयति सीतेत्याहुरिंद्रादिदेवाः सपदि भुवन भंगं मन्यमाना विषेदु ।। ७२ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वाल्मीकीये आदि. अद्भु. भाषाटीकयां सहस्रवदन-रावणवधो नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ।। २३ ।।

परन्तु ऊपरके लोक उस समय भी स्थित न हो सके, सीताके चरणशब्द और शिरके हुंकारसे तथा निश्वासकी पवनसे भूर्भवः स्व आदि लोक अस्वस्थ हो गये ।। ७१ ।। धरणीतनयाने जो भयंकर नृत्य पृथ्वीपर किया, उसके मनमें विचार करते द्विजेन्द्र इन्द्रादिक देवता जय जय करने लगे और संसार भंग होगा ऐसा मानने लगे ।। ७२ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे भाषाटीकायां सहस्रवदनरावणवधो नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ।। २३ ।।

चतुर्विंशति सर्ग

देवतोंका रामको आश्वासन करना

संरंभवेगं सीताया वीक्ष्य ब्रह्मपुरो गमाः ।। सलोकपालास्त्रिदशा ऋषिभिः पितृभिः सह ।। १ ।। प्रसादयितुमुद्युक्ताः सीतां ते तुष्टुवुः सुराः ।। कृताञ्जलिपुटा देवाः प्रणम्य च पुनः पुनः ।। २ ।।

तब सीताका इस प्रकार वेग और क्रोध देखकर लोकपाल देवता और पितर तथा ब्रह्माजी ।। १ ।। वे सीताके प्रसन्न करनेको युक्त हो उन्हें सन्तुष्ट करने लगे, देवता हाथ जोड वारवार प्रणाम कर ।। २ ।।

ब्रह्माद्याः स्तोतुमारब्धाः सीतां राक्षसनाशिनीम् ।। या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा ।। ३ ।। अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता रामवल्लभा ।। स्वाभाविकी च त्वन्मूला प्रभा भानोस्तथामला ।। ४ ।।

राक्षसनाशिनी जानकीकी ब्रह्मादिदेवता स्तुति करने लगे, जो यह माहेश्वरी शक्ति ज्ञानरूपा अतिलालेसायुक्त है ।।३।। यह रामवल्लभा अनन्य और निष्फल तत्त्वमें स्थित है. वह स्वाभाविकी शक्ति आपहीसे होती है, जैसे सूर्यकी कांति निर्मल होती है ।। ४ ।।

एका सा वैष्णवी शक्ति रणे कोपाधिवेगतः ।। परापरेण रूपेण क्रीडन्ती रामसन्निधौ ।। ५ ।। सेव्यं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत् ।। न कार्यं चापि करणमीश्वरश्चेति निश्चयः ।। ६ ।।

वह एकही वैष्णवी शक्ति रणमें बडे वेगसे और क्रोधसे परापररूप किये रामके निकट क्रीडा करती है ।। ५ ।। यही सब जगत् करके अपना कार्य करके विहरती है कि, ईश्वरको कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं है ।। ६ ।।

चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः ।। अधिष्ठान वशादस्या जानक्या रामयोषितः ।। ७ ।। शांतिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः ।। चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः ।। ८ ।।

देवीकी चार शक्ति स्वरूपसे स्थित हैं अधिष्ठानके वशसे जानकी रामकी स्त्री हैं ।। ७ ।। शांति विद्या प्रतिष्ठा और निवृत्ति यह परमेश्वर देव चतुर्व्यूह रूपसे कहा जाता है ।। ८ ।।

अनया परया देवः स्वात्मानंदं समश्नुते ।। यत्त्वस्त्यनादिसंसिद्ध-मैश्वर्यमतुलं महत् ।। ९ ।। त्वत्संबंधादवाप्तं तद्रामेण परमात्मना।। सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका ।। १० ।।

इसी पराशक्तिसे देवका स्वात्मानन्द जाना जाता है, जो अनादिसंसिद्ध अतुल महत् ऐश्वर्य है ।। ९ ।। वही परमात्मा रामद्वारा तुम्हारे सम्बन्धसे प्राप्त किया जाता है, यह सर्वेश्वरी देवी सब भूतोंकी प्रवर्त करनेवाली है १०

त्वयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ।। सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी ।। ११ ।। वैश्वरूपं महेशस्य सर्वदा संप्रकाशयेत् ।। अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्त्वया देवि विनिर्मिता ।१२।

तुमसेही यह मायावी पुरुषोत्तम भ्रमण कराये जाते हैं यह मायात्मिका शक्ति सर्वाकारा सनातनी है ।। ११ ।। यह महेश्वरका विश्वरूप सदा प्रकाशित करती है. हे देवि ! और भी मुख्य शक्ति तुमनेही निर्माण की है ।। १२ ।।

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ।। सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिता ।।१३ ।। एका शक्तिः शिवोप्येकः शक्तिमानुच्यते शिवः ।। अभेदं चानुपश्यंति योगिनस्तत्त्वदर्शिनः १४

ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, प्राणशक्ति यह सम्पूर्णशक्ति और उनके शक्तिमान् निर्माण किये हैं ।। १३ ।। वास्तविक एकही शक्ति और एकही शक्मिान शिव हैं, तत्त्वदर्शी योगी इनमें भेद नहीं मानते हैं ।। १४ ।।

शक्तयो जानकी देवी शक्तिमन्तो हि राघवः ।। विशेषः कथ्यते चायं पुराणे तत्त्ववादिभिः ।। १५ ।। भोग्या विश्वेश्वरी देवी रघूत्तम-पतिव्रता ।। प्रोच्यते भगवान्भोक्ता रघुवंशविवर्द्धनः ।। १६ ।।

संपूर्ण शक्तियोंका स्वरूप जानकी देवी, शक्तिमान् राम हैं. तत्त्ववादियोंने पुराणोंमें यह विशेषतासे कहा है ।। १५ ।। रघुराजकी पतिव्रता देवी योग्या है और रघुवंशविवर्द्धन भगवान् भोक्ता कहलाते हैं ।। १६ ।।

मंता रामो मतिः सीता मन्तव्या च विचारतः ।। एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थ मचलं ध्रुवम् ।। १७ ।। योगिनस्तत्प्रपश्यंति तव देव्याः परं पदम् ।। अनंतमजरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् ।। १८ ।।

मन्ता राम हैं और मति सीता है इनको विना विचारे मानना उचित है एकही सर्वगत सूक्ष्म अचल और ध्रुव हैं । ॥ १७ ॥ योगी उसको देखते हैं वही देवीका परमपद है वह अनन्त अजर ब्रह्म केवल निष्कल और परे है ॥ १८ ॥

योगिनस्तत्प्रपश्यंति तव देव्याः परं पदम् ॥ सा त्वं धात्रीव परमा यानन्दनिधिमिच्छताम् ॥ १९ ॥ संसारतापानखिलान्हरसीश्वर-संश्रयात् ॥ नेदानीं भूतसंहारस्त्वया कार्यो महेश्वरि ॥ २० ॥

हे देवि ! आपके उस पदको योगी देखते हैं वह तुमही परमधात्री हो आनंदसागरकी इच्छा करनेवालोंको ॥ १९ ॥ ईश्वरके संश्रयसे संसारके संपूर्ण तापोंको दूर करती हो. हे महेश्वरि ! इस समय तुमको प्राणियोंका संहार न करना चाहिये ॥ २० ॥

रावणो सगणं हत्वा जगतां सुखमाहितम् ॥ किं पुनर्नृत्यकलया जगत्संह्रियते त्वया ॥२१॥ एतच्छ्रुत्वाविशालाक्षी ब्रह्मणोऽभ्यर्थनं वचः ॥ प्रीता सीता तदा प्राह ब्रह्माणं सहदैवतम् ॥ २२ ॥

गणसहित रावणको मारकर जगत्को सुखी किया है फिर अब नृत्यके व्याजसे सब जगत्का संहार क्यों करती हो ॥ २१ ॥ वह विशाला श्रीब्रह्माजी-की यह प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो ब्रह्मादि देवतोंसे कहने लगी ॥ २२ ॥

पतिर्मे पुंडरीकाक्षः पुष्पकोपरि राघवः ॥ विद्धः क्षुरप्रेण हृदि शेते मृतकवत्प्रभुः ॥ २३ ॥ तस्मिन्नेव स्थिते देवाः किमिच्छामि जगद्धितम् ॥ ग्रासमेकं करिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ २४ ॥

हमारे पति कमललोचन राम पुष्पकविमान पर तीक्ष्ण बाणसे विद्ध हुए मृतकके समान सोते हैं ॥ २३ ॥ हे देवताओ ! उनके ऐसे होनेमें जगत्के हितकी किस प्रकार इच्छा कर सकती हूं, इस चराचर जगत्का एकही ग्रास कर जाऊंगी ॥ २४ ॥

श्रुत्वैतद्वचनं देव्याः संरंभसहित सुराः ॥ हाहाकारं प्रचक्रुस्ते संचचाल च मेदिनी ॥ २५ ॥ ततो ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं पुष्पकं रथमा-स्थितम् ॥ श्रीरामं ग्राहयामास स्मृतिं स्पृष्ट्वा स्वपाणिना ॥ २६ ॥

संरम्भसहित देवता देवीके यह वचन सुनकर हाहाकार करने लगे, और पृथ्वी चलायमान होगई ॥ २५ ॥ तब ब्रह्माजीने देवताओंसहित पुष्पकमें स्थित श्रीरामको हाथसे स्पर्श कर स्मृति दिवाई ॥ २६ ॥

उत्तस्थौ च महाबाहू रामः कमललोचनः ।। रे रावण सुदुष्ट-स्त्वमद्य मद्बाणभेदितः ।। २७ ।। द्रक्ष्यस्याशु यमस्यास्यं भ्रुकुटी-भीषणाकृति ।। ब्रुवन्नेवं धनुर्गृह्य ह्यपश्यत्रिदशान्पुरः ।। २८ ।।

तव तत्काल महाबाहु राम उठ बैठे, और बोले अरे रावण ! तू आज मेरे वाणसे भेदित होकर ।। २७ ।। अवश्य भयंकर भौंवाले यमराजका मुख देखेगा, जब यह कहकर धनुष ग्रहण किया तब देवताओंको अपने सम्मुख स्थित देखा ।। २८ ।।

नापश्यज्जानकीं तत्र प्राणेभ्योपि गरीयसीम् ।। नृत्यतीं चापरां कालीमपश्यच्च रणांगणे ।। २९ ।। चतुर्भुजां चलज्जिह्वां खड्गखर्पर-धारिणीम् ।। शवरूपमहादेवहृत्संस्थां च दिगंबराम् ।। ३० ।।

परन्तु प्राणप्यारी जानकीको वहां नहीं देखा युद्धस्थलमें नृत्य करती हुई महाकालीको देखा ।। २९ ।। और स्थितिके निमित्त शवरूपधारी महा-देवको देखा चार भुजा चलजिह्वा खड्गखर्परधारिणी जानकीको देखा ।। ३० ।।

पिबन्तीं रुधिरं भीमां कोटराक्षीं क्षुधातुराम् ।। जगद्ग्रासे कृतो-त्साहां मुण्डमालाविभूषणाम् ।। ३१ ।। भीमाकाराभिरन्याभिः क्रीडंतीं रणमूर्द्धनि ।। मुण्डे राक्षसराजस्य खेलंतीं कंदुकं मुदा ।। ३२ ।।

वह कोटराक्षी महाभयंकर खड्ग खर्पर धारण किये दिगम्बर जगत्के ग्रासमें उत्साह करती मुण्डमालाके गहना पहरे ।। ३१ ।। और दूसरी भयंकर कन्दुक मूर्ति धारण किये हुए मृतकाओंके साथ रणभूमिमें क्रीडा करते देखा, और राक्षसराजके शिरके संग कन्दुक क्रीडा करते देखा ।। ३२ ।।

प्रलयध्वांतधाराभां सदा घर्घरनादिनीम् ।। अन्त्रमुण्डकरोटचक्ष-कृतमालां चलत्पदाम् ।। ३३ ।। कबन्धान्राक्षसानां च तया सह विनृ-त्यतः ।। रथवाजिगजानां च शकलानि व्यलोकयत्प्रथ् ।। ३४ ।।

प्रलयकालके अन्धकारके समान सदा घर्घर शब्द करनेवाली आँते शिर हाथ नेत्रोंकी माला वनाये पद चलाती ।। ३३ ।। मृतक राक्षसोंके कबन्धोंके साथ नृत्य करती, रथ घोडे हाथियोंको टुकडोंको देखती हुई ।। ३४ ।।

नैकोपि राक्षसो यत्र करपादशिरोयुतः ।। कबन्धा ये च नृत्यंति तेषां पादाः प्रतिष्ठिताः ।।३५।।कबंधं रावणस्यापि नृत्यन्तं च व्यलोक-यत् ।। तदृष्टवा सुमहाघोरं प्रेतराजपुरोपमम् ।। ३६ ।।

कोई भी राक्षस हाथ पैर शिरसे युक्त नहीं था, जो कबन्ध नृत्य करते थे केवल उन्हींके चरण स्थित थे ।। ३५ ।। रावणका कबन्धभी नृत्य करदते देखा वह स्थान महाघोर प्रेतराजके पुरके समान देखकर ।। ३६ ।।

कालीं च वीक्ष्य नृत्यंतीं मातृभिः सहितां द्विज । पपात हस्ताद्रामस्य वेपतः सशरं धनुः ।। ३७ ।। भयाच्च निमिमीलाशु रामः पद्म विलोचने ।। इत्येवं विस्मितं दृष्ट्वा ब्रह्मोवाच रघूत्तमम् ।। ३८ ।।

हे द्विज ! मातृकाओंके सहित महाभयंकर कालीको नृत्य करती देख कम्पित हुए रामके हाथसे धनुष बाण गिरपड़ा ।। ३७ ।।और डरसे रामचन्द्रने अपने दोनों कमलकेसे नेत्र मीच लिये. इस प्रकार विस्मित देखकर रामचन्द्रसे ब्रह्माजी कहने लगे ।। ३८ ।।

त्वां दृष्ट्वा विह्वलं सीता क्रुद्धं चापि च रावणम् ।। रथादवस्कन्द्य-सती पपात रणमूर्द्धनि ।। ३९ ।। भीमां च मूर्तिमालम्ब्य रोमकूपाश्च मातृकाः ।। निर्माय ताभिः सहिता हत्वा रावणमग्रतः ।। ४० ।।

जानकी आपको विह्वल और रावणको क्रुद्ध देखकर तत्काल युद्धस्थलमें विमानसे कूद पडी ।। ३९ ।। और उस भयंकर मूर्तिका अवलम्बन कर अपने रोमकूपसे मातृका उत्पन्न कर तनके सहित क्रीडा कर रावणका वध किया । ४०

रक्षसां निधनं कृत्वा नृत्यंतीयं व्यवस्थिता ।। अनया सहितो राम सृजस्यवसि हंसि च ।। ४१ ।। नानया रहितो राम किंचित्कर्तुमपि क्षमः ।। इति बोधयितुं सीता चकार तद निंदिता ।। ४२ ।।

अब यह राक्षसोंका वधकर व्यवस्थित हो नृत्य करती हैं, हे राम ! इनके सहित आप जगत् उत्पन्न कर नष्ट कर देते हैं ।। ४१ ।। हे राम ! इनके विना आप कुछभी नहीं कर सकते हो यही दिखानेको जानकीने यह कार्य किया है ४२

पश्यैतां जानकीं राम त्यज भीतिं महाभुजा ।। निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ।। ४३ ।। इत्येतद्द्रुहिणवचो निशम्य रामः श्रुतिसुखमात्महितं पराभिमर्दि ।। शुचमनुविजहौ विचार्य किंचिज्जनकसुतामनुपश्यति स्म पश्चात् ।। ४४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे रामा-श्वासनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ।। २४ ।।

हे राम ! आप इन जानकीको देखिये भय त्यागन कीजिये, यह साक्षात् निर्गुण सत् असत् व्यक्तिसे रहित हैं ।। ४३ ।। इस प्रकार ब्रह्माजीके वचन

सुनकर रघुनन्दन राम जो कानोंके सुख देनेवाले आत्माको हितकारक शत्रुनाशक थे रामने शोक त्याग किया पीछे जानकीको देखा ।। ४४ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा. अदिका. अद्भु. ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायांरामाश्वासनं नाम चतुर्विशतितमः सर्गः ।। २४ ।।

पंचविंशति सर्ग

रामचन्द्रका सहस्रनामसे जानकी की स्तुति करना

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा रामः कमललोचनः । प्रोन्मील्य शनकैरक्षि वेपमानो महाभुजः ।। १ ।। प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चापि विह्वलः ।। भीतः कृतांजलिपुटः प्रोवाच परमेश्वरीम् ।। २ ।। का त्वं देवि विशालाक्षि शशांकावयवांकिते ।। न जाने त्वां महादेवि यथावद् ब्रूहि पृच्छते ।। ३ ।। रामस्य वचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी ।। व्याजहार रघुव्याघ्रं योगिनामभयप्रदा ।। ४ ।।

कमललोचन राम ब्रह्माजीके वचन सुनकर शनैः २ नेत्र खोल कम्पित होते हुए महाभुज ।। १ ।। भूमिमें शिर झुकाय प्रणाम कर उनके तेजसे विह्वल हो भीतके समान हाथ जोड परमेश्वरीसे बोले ।। २ ।। हे चन्द्रखण्डसे अंकित विशाललोचनी ! तुम कौन हो ? हे महादेवि ! हम तुमको नहीं जानते पूछते हुए अपनेको वर्णन करो ।। ३ ।। तब वह परमेश्वरी रामके वचन सुनकर योगियोंको अभय देनेवाली रघुनाथजीसे बोली ।। ४ ।।

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ।।अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ।। ५ ।। अहं वै सर्वभावानामात्मा सर्वांतरा शिवा ।। शाश्वती सर्वविज्ञाना सर्वमूर्तिप्रवर्तिका ।। ६ ।।

मुझे महेश्वरके आश्रितवाली परमशक्ति जानों, मैं अनन्य अविनाशी एक हूँ, मुमुक्षुजन मुझको देखते हैं ।। ५ ।। मैं सब भावोंकी आत्मा सबके अन्तमें स्थित शिवा हूँ, मैं ही निरन्तर रहनेवाली सब विज्ञान और सब मूर्ति प्रवृत्त करनेवाली हूं ।। ६ ।।

अनंतानंतमहिमा संसारार्णवतारिणी ।। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे पदमैश्वरम् ।। ७ ।। इत्युक्त्वा विररामैषा रामोऽपश्यच्च तत्पदम् ।। कोटिसूर्यप्रतीकाशं विष्वक्तेजोनिराकुलम् ।। ८ ।।

में अनन्त अनन्तमहिमावाली संसारसागरसे तारनेवाली हूँ, तुमको दिव्य-नेत्र देती हूं मेरा ईश्वरसंवन्धी पद देखो ॥ ७ ॥ यह कह वह मौन हुई, और रघुनाथ उनके पदको देखने लगे, जो करोड सूर्यके समान सब ओरसे परि-पूर्ण था ॥ ८ ॥

ज्वालावलीसहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ॥ तदंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमंडितम् ॥ ९ ॥ त्रिशूलवरहस्तं च घोररूपं भयावहम् ॥ प्रशाम्यत्सौम्यवदनमनंतैश्वर्यसंयुतम् ॥ १० ॥ चन्द्रावयवलक्ष्माढ्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् । ११ । दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥ शंखचक्रकरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ॥ १२ ॥

सहस्रों ज्वालासमूहोंसे व्याप्त, कालानल सौके समान दंष्ट्राकरालसे दुर्धर्ष, जटामंडलासे मंडित ॥ ९ ॥ त्रिशूल हाथमें लिये घोर रूप भयावने प्रशांत सौम्यवदन अनन्त ऐश्वर्यसे संयुक्त ॥ १० ॥ चन्द्रके खण्ड और लक्ष्मीसे युक्त करोड चन्द्रमाकेसमान कान्तिमान् किरीट गदा हाथमें लिये, नूपुरोंसे शोभित ॥११॥ दिव्य माला वस्त्र धारणकिये, दिव्य गंधका अनुलेपन लगा य, शंख चक्र हाथमें लिये, त्रिनेत्र, कृत्ति-वा ॥ १२ ॥

अन्तःस्थं चांडबाह्यस्थं बाह्यरभ्यंतरतःपरम् ॥ सर्वशक्तिमयं शांतं सर्वाकारं सनातनम् ॥१३॥ ब्रह्मेंद्रोपेंद्रयोगींद्रैरीडयमानपदांबुजम् ॥ सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ १४ ॥

अन्तरमें स्थित तथा अण्डकोशके बाह्यमें स्थित, बाहर भीतरसे परे सर्वशक्तिमान शान्त सर्वाकार सनातन ॥ १३ ॥ ब्रह्मा इन्द्र उपेंद्र योगीन्द्रोंसे प्रार्थित चरण कमल, सब ओरसे चरण नेत्र और शिरवाले ॥ १४ ॥

सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श पदमैश्वरम् ॥ दृष्ट्वा च तादृशं रूपं दिव्यं माहेश्वरं पदम् ॥ १५ ॥ तयैव च समाविष्टः स रामो हृतमा-नसः ॥ आत्मन्याधाय चात्मानमोंकारं समनुस्मरन् ॥ १६ ॥

सबको आवृत्त कर स्थित होते हुए उस ईश्वरसम्बन्धी पदका दर्शन किया. इस प्रकारका उस दिव्य माहेश्वरके पदको देखकर ॥ १५ ॥ रामचंद्र मनके हरण हो जानेमें उनसे आविष्ट हो हृतमन होकर आत्माको आत्मामें ध्यान कर ॐ कारका स्मरण कर ॥ १६ ॥

नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् ।। ॐ सीतोमा परमा शक्तिरनंता निष्कलामला ।। १७ ।।शांता माहेश्वरी नित्या शाश्वती १० परमाक्षरा ।। अचिन्त्या केवलानंता शिवात्मा परमात्मिका।।१८।।

१००८ एक हजार आठ नामसे परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे, ॐ सीता, उमा परमा, शक्ति, अनन्ता, निष्कला, अमला ।। १७ ।। शांता, माहेश्वरी, शाश्वती, १०, परमाक्षरा, अचित्या, केवला, अनंता, शिवात्मा, परमात्मिका १८।

अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा २० सर्वगोचरा ।। एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला ।। १९ ।। महामाहेश्वरी शक्ता महादेवी निरंजना ।। काष्ठा ३० सर्वतरस्था च चिच्छक्तिरति लालसा । २० ।

अनादि, अव्यया, शुद्धा देवात्मा २० सर्वगोचरा, एक अनेक विभागमें स्थित मायासे परे निर्मल ।। १९ ।। महामाहेश्वरी, शक्त, महादेवी, निरंजना, काष्ठा ३० सर्वातरस्था, चिच्छक्ति, अति लालसा ।। २० ।।

जानकी मिथिलानंदा राक्षसांताविधायिनी ।। रावणांतकरी रम्या रामवक्षःस्थलालया ।। २१ ।। उमा सर्वात्मिका ४० विद्या ज्योतीरूपाऽयुताक्षरी ।। शांतिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा ।। २२ ।।

जानकी, मिथिलाके जनोंको आनंदकी देनेवाली, राक्षसोंका अंत करनेवाली, रावणका अंत करनेवाली, मनोहर रामके वक्षस्थलमें विहार करनेवाली ।।२१। उमा, सर्वात्मिका ४०, विद्या, ज्योतिरूपा, अयुताक्षरी, शांति, सबकी प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृत देनेवाली ।। २२ ।।

व्योममूर्तिर्व्योममयी व्योमाधारा ५० ऽच्युतातलता ।। अनादिनिधना योषा कारणात्मा कलाकुला ।। २३ ।। नंदप्रथमजा नाभिरमृतस्यांतसंश्रया ।। प्राणेश्वरप्रिया ६० मातामही महिषवाहना २४

व्योममूर्ति, व्योममयी, व्योमाधारा ५० अच्युता, लता, आदिअन्तरहिता, योषा, कारणात्मा, कुलाकुला ।।२३।। नन्दके यहां प्रथम उत्पन्न होनेवाली नाभिमें अमृतके आश्रयवाली, प्राणेश्वरप्रिया ६०, मातामही महिषवाहनवाली ।। २४ ।।

प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ।। सर्वशक्तिः कला काष्ठा ज्योत्स्नेन्दो ७० र्महिमास्पदा ।। २५ ।। सर्वकार्यनियंत्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी ।। अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी ।। २६ ।।

प्रोणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधानपुरुषेश्वरी, सर्वशक्ति, कला काष्ठा, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना ७०, महिमाके स्थानवाली ।। २५ ।। सब कार्यकी नियंत्री, सर्वभूतेश्वरोंकी ईश्वरी, अनादि, अव्यक्तगुण, महानंदा, सनातनी ।। २६ ।।

आकाशयोनिर्योनस्था सर्वयोगेगेश्वरेश्वरी ।। ८० ।। शवासना चितांत:स्था महेशी वृषवाहना ।। २७ ।। बालिकातरुणी वृद्धा वृद्धमाता जरातुरा ।। महामाया ९० सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी । २८ ।

आकाशसे उत्पन्न होनेवाली, योगमें स्थित सर्व योगेश्वरोंकी ईश्वरी ८०, शवासना, चिताके अंतमें स्थित, महेशी, वृषवाहनवाली ।। २७ ।। बालिका, तरुणी, वृद्धा, वृद्धमाता, जरासे आतुर महामाया ९०, सुदुष्पूर, मूलप्रकृति, ईश्वरी ।। २८ ।।

संसारयोनि:सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ।। संसारसारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्यादुरासदा १०० । २९ ।। प्राणशक्ति: प्राणविद्यायोगिनीपरमा कला ।। महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा ।। ३० ।।

संसारयोनि, सर्वस्वरूपा, सब शक्तिसे उत्पन्न होनेवाली, संसारसारा, दुर्वारा, कठिनतासे नेत्रगोचर होनेवाली, दुरासद १०० ।। २९ ।। प्राणशक्ति, प्राणविद्या, योगिनी, परमा, कला, महाविभूति, दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाली ।। ३० ।।

अनाद्यनन्तविभवा परात्मा पुरुषो बली ।। ११० ।। सर्गस्थित्यंतकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया ।। ३१ ।। शब्दयोनिश्शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा ।। प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ।। ३२ ।।

अनादि अनंत ऐश्वर्यवाली, परमात्मा, पुरुष, बली ११० सृष्टिकी स्थिति और अंत करनेवाली, कहनेमें न आनेवाली, दुरात्यय ।। ३१ ।। शब्दसे उत्पन्न होनेवाली, शब्दमयी, नाद नामवाली, तथानादविग्रहवाली, प्रधानपुरुषसे परे, प्रधानपुरुषात्मिका ।। ३२ ।।

पुराणी १२० चिन्मयी पुंसामादि: पुरुषरूपिणी ।। भूतांतरात्मा कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता ।। ३३ ।। जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता ।। व्यापिनी चानवच्छिन्ना १३० प्रधाना सुप्रवेशिनी।।३४।।

पुराणी १२० चिन्मयी, पुरुषोंमें आदि पुरुषके रूपवाली, भूतांतरात्मा, महापुरुष नामवाली ।। ३३ ।। जन्म मृत्यु जरासे परे, सब शक्तिसे संयुक्त, व्यापिनी, अनवच्छन्ना १३०, प्रधानमें प्रवेश करनेवाली ।। ३४ ।।

क्षेत्रज्ञा शक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता ।। अनादिमायासंभिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुणः १४० ।। ३५ ।। महामाया समुत्पन्ना तामसी पौरुषं ध्रुवा ।। व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्तशुक्लाप्रसूतिका ३६

क्षेत्रकी जाननेवाली, शक्ति अव्यक्तलक्षणा, पलसे वर्जित्, अनादिमायासे संभिन्न, त्रितत्त्वा प्रकृति गुणस्वरूप १४० ।। ३५ ।। महामायासे समुत्पन्न तामसी ध्रुव पुरुषपार्थवाली, व्यक्त अव्यक्तात्मिका, कृष्णाशुक्लप्रसूतिका ३६

स्वकार्या १५० कार्यजननी ब्रह्मास्या ब्रह्मसंश्रया ।। व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी ।। ३७ ।। वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्ति १६० र्हृदिस्थिता ।। जयदा जित्वरी जैत्री जयश्रीर्जयशालिनी ३८

स्वकार्या १५० कार्यकी जननी, ब्रह्मके आश्रयभूत (ब्रह्मसंश्रयवाली) प्रगट, प्रथम उत्पन्न होनेवाली, ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी ।। ३७ ।। वैराग्य, ऐश्वर्य धर्मात्मा, ब्रह्ममूर्ति १६०, हृदयमें स्थित, जयदाता, शीघ्र जीतनेवाली, जैत्री, जयलक्ष्मी, जययुक्त ।। ३८ ।।

सुखदा शुभदा सत्या शुभा १७० संक्षोभकारिणी ।। अपां योनिः स्वयंभूतिर्मानसी तत्त्वसंभवा ।। ३९ ।। ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्द्धशरीरिणी ।। भवानी चैव रुद्राणी १८० महालक्ष्मीरथांबिका ४०

सुखदायक, शुभदायक, शुभा १७०, संक्षोभ करनेवाली, जलोंकी योनि, स्वयंभूति, मानसी, तत्त्वसंभवा ।। ३९ ।। ईश्वराणी, शर्वाणी, शंकरके अर्द्धशरीरवाली भवानी, रुद्राणी १८० महालक्ष्मी, अम्बिका ।। ४० ।।

माहेश्वरी समुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।। सर्वेश्वरी सर्ववर्णा नित्या मुदितमानसा ।। ४१ ।। ब्रह्मेंद्रोपेंद्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी १९० ।। ईश्वरार्द्धासनगता रघूत्तमपतिव्रता ।। ४२ ।।

माहेश्वरी, प्रगट होनेवाली, भुक्ति मुक्तिका फल देनेवाली, सर्वेश्वरी, सुवर्णयुक्ता, नित्या. मुदित मनवाली ।। ४१ ।। ब्रह्मा इन्द्र उपेन्द्रसे निमित, शंकरकी इच्छासे वर्तनेवाली १९० ईश्वरके अर्धआसनमें प्राप्त, रघुश्रेष्ठकी पतिव्रता ।। ४२ ।।

सकृद्विभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी ।। पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी ।। ४३ ।। गुणाढ्या योगदा २०० योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकाशिनी ।। सावित्री कमला लक्ष्मीश्रीरनंतोरसि स्थिता ४४ ।

एकही वार सबकी भावना करनेवाली समुद्रकी शोषनेवाली, पार्वती, हिमालयकी पुत्री, परमानन्दकी देनेवाली ।। ४३ ।। गुणोंमें श्रेष्ठ, योगदायक २०० योग्या, ज्ञानमूर्तिका विकास करनेवाली, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, अनन्तके हृदयमें स्थित ।। ४४ ।।

सरोजनिलया शुभ्रा योगनिद्रा १२० सुदर्शना ।। सरस्वती सर्व-विद्या जगज्ज्येष्ठा सुमंगला ।। ४५ ।। वासवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका २२० ।। वागीश्वरी सर्वविद्या महाविद्या सुशोभना४६

कमलके स्थानवाली, शुभ्र, योगनिद्रा, २१० सुदर्शना, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा, सुमंगला ।। ४५ ।। वासवी, वरदाता, वाच्या, सब अर्थ साधने-वाली २२० वागीश्वरी, सर्वविद्या, महाविद्या, सुशोभना ।। ४६ ।।

गुह्यविद्यात्मविद्या च सर्वविद्यात्मभाविता ।। स्वाहा विश्वंभरी २३० सिद्धि· स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ।। ४७ ।। नाभिः सुनाभिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी २४० ।। पूजा विभावरी सौम्या भगिनी भोगदायिनी ।। ४८ ।।

गुह्यविद्या, आत्मविद्या, सर्वभाविता स्वाहा विश्वम्भरी, २३० सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति श्रुति ।। ४७ ।। नाभि, सुनाभि, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी २४० पूज्या, विभावरी, सौम्या, भगिनी, भोग देनेवाली ।। ४८ ।।

शोभा वंशकरी लीला मानिनी परमेष्ठिनी २५० ।। त्रैलोक्य-सुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी ।। ४९ ।। महानुभावमध्यस्था महामहिषमर्दिनी ।। पद्ममालापापहरा विचित्रमुकुटानना ।। ५० ।।

शोभा, वंशकरी, लीला, मानिनी, परमेष्ठिनी २५० त्रैलोकसुन्दरी, कामचारिणी, ।। ४९ ।। महानुभावके मध्यमें स्थित होनेवाली, महामहिषकी मारनेवाली, पद्ममाला. पापकी हरनेवाली, विचित्र मुकुट मुखवाली ।। ५० ।।

कांता २६० चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।। हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्द्धिनी ।। ५१ ।। निर्यंत्रा मन्त्रवाहस्था नंदिनी भद्रकालिका ।। आदित्यवर्णा २७० कौमारी मयूरवर-वाहिनी ।। ५२ ।।

कान्ता २६० चित्र अम्बर धारण करनेवाली, हंसनामक आकाशमें स्थान-वली, जगत्की सृष्टि बढानेवाली ।। ५१ ।। निर्यंत्रा, मंत्रके बाहर स्थित,

नंदिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, २७०, कौमारी श्रेष्ठ मोरपर चढनेवाली ॥ ५२ ॥

वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता ॥ अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा २८० विवाहना ॥ ५३ ॥ विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी ॥ महाफलानवद्यांगी कामपूरा विभावरी ॥ ५४ ॥

वृषके आसनपर स्थित, गौरी, महाकाली देवताओंसे अर्चित, अदिति नियता, रौद्री, पद्मगर्भा, २८० विवाहना ॥ ५३ ॥ विरूपाक्षी, जिह्वासे होठ चाटनेवाली, महाअसुरोंकी नाश करनेवाली, कामफला, निन्दारहित अंगवाली, कामपूरा विभावरी ॥ ५४ ॥

विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतर्द्धिविवर्द्धिनी २९० ॥ कौशिकी कर्षिणी रात्रिस्त्रिदशार्त्तिविनाशिनी ॥ ५५ ॥ विरूपा च सुरूपा च भीमा मोक्षप्रदायिनी ॥ भक्तार्त्तिनाशिनी भव्या ३०० भवभावविना-, शिनी ॥ ५६ ॥

विचित्र मुकुटवाली, भक्तोंकी ऋद्धि बढानेवाली, २९० कौशिकी कर्षिणी रात्रि, देवताओंके दुःख नाश करनेवाली ॥ ५५ ॥ विरूपा, सुरूपा, भीमा, मोक्षदाता, भक्तोंके दुःखनाशक, भव्या ३०० भवभावविनाशिनी ॥ ५६ ॥

निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा ॥ यशस्विनी सामगीतिर्भावांगनिलयालया ॥ ५७ ॥ दीक्षा ३१० विद्याधरी दीप्ता महेंद्रविनिपातिनी ॥ सर्वातिशायिनी विद्या सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ ५८ ॥

निर्गुणा, नित्यविभागवाली, निःसारा, निरपत्रपा (लज्जारहित), यशस्विनी, सामगीति, भवांगनिलयालया ॥ ५७ ॥ दीक्षा ३१० विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रनिपातिनी, सबसे अधिक विद्या, सब शक्तिकी देनेवाली ॥ ५८ ॥

सर्वेश्वरप्रिया तार्क्ष्यी समुद्रान्तरवासिनी ॥ अकलंका निराधारा ३२० नित्यसिद्धा निरामया ॥ ५९ ॥ कामधेनुर्वेदगर्भा धीमती मोहनाशिनी ॥ निःसंकल्पा निरातंका विनया विनयप्रदा ३३० । ६० ।

सर्वेश्वरकी प्रिया, तार्क्ष्यी, समुद्रके अन्तरमें निवास करनेवाली, कलंकरहित, निराधारा, ३२० नित्यसिद्धा, निरामया, ॥ ५९ ॥ कामधेनु, वेदगर्भा, धीमती, मोहनाशिनी, निःसंकल्पा, निरातंका, विनयप्रदा ३३० ॥ ६० ॥

ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोन्मनी ।। उर्वी गुर्वी गुरुः श्रेष्ठा सगुणा षड्गुणात्मिका ।। ६१ ।। महाभगवती ३४० भव्या वसुदेवसमुद्भवा ।। महेंद्रोपेंद्रभगिनी भक्तिगम्यपरायणा ।। ६२ ।।

ज्वालामालासहस्राढ्या, देवदेवी, मनोन्मनी, उर्वी, गुर्वी, श्रेष्ठा, षड्गुणात्मिका ।। ६१ ।। महाभगवती ३४० भव्या, वसुदेवसमुद्भवा, महेन्द्रोपेंद्रभगिनी, भक्तिगम्यपरायणा ।। ६२ ।।

ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदांतविषया गतिः ।। दक्षिणा ३५० दहना बाह्या सर्वभूतनमस्कृता ।। ६३ ।। योगमाया विभावज्ञा महामोहा महीयसी ।। सत्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रया ३६० मतिः ।। ६४ ।

ज्ञानज्ञेया, जरातीता, वेदान्तविषया, गति, दक्षिणा, ३५० दहना, बाह्या, सर्वभूतसे नमस्कृत ।। ६३ ।। योगमायाका विभाव जाननेवाली, सत्या, सबकी उत्पन्न करनेवाली, ब्रह्मवृक्षकी आश्रय करनेवाली ३६० मति ।। ६४ ।।

बीजांकुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः ।। ख्यातिः प्रतिज्ञा चित्संविन्महायोगेंद्रशायिनी ।। ६५ ।। विकृतिः ३७० शांकरी शास्त्री गंधर्वा यक्षसेविता ।। वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया । ६६ ।

बीज अंकुरकी उत्पत्तिका कारण, महाशक्ति, ख्याति, प्रतिज्ञा, चित्संवित्, महायोगेन्द्रशायिनी ।। ६५ ।। विकृति, ३७० शांकरी, शास्त्री, गन्धर्वा, यक्षसे सेवित, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया ।। ६६ ।।

महारात्री शिवानंदा शची ३८० दुःस्वप्ननाशिनी ।। पूज्याऽपूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेयस्वरूपिणी । ६७ ।। गुहांबिका गुहोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ।। हव्यवाहांतरा ३९० गार्गी हव्यवाहसमुद्भवा ।। ६८ ।।

महारात्रि, शिवानन्दा, शची ३८० दुःस्वप्ननाशिनी, पूज्या, अपूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेयस्वरूपिणी ।। ६७ ।। गुहाम्बिका, गुहोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यावाहान्तरा ३९० मार्गी, हव्यवाहसमुद्रवा ।। ६८ ।।

जगद्योनिर्जगन्माता जगन्मृत्युर्जरातिगा ।। बुद्धिर्माता बुद्धिमती पुरुषांतरवासिनी । ४०० ।। ६९ ।। तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता ।। सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता ।। ७० ।।

जगत्की योनी, जगत्की मृत्यु और जराका अतिक्रमण करनेवाली, बुद्धि, माता, बुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी ४०० ।। ६९ ।। तपस्विनी, समाधिमें

स्थित, त्रिनेत्रा, स्वर्णमें स्थित, संपूर्ण इन्द्रिय और मनकी माता, सब भूतोंके हृदयमें स्थित ।। ७० ।।

संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया ।। ब्रह्माणी बृहती ४१० ब्राह्मी ब्रह्मभूता भयावनिः ।। ७१ ।। हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका ।। सुमालिनी सुरूपा च तारिणी भाविनी ४२० प्रभा ७२

संसारसे तारनेवाली, विद्या, ब्रह्मवादिनी, मनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, ४१० ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भयावनी ।। ७१ ।। हिरण्मयी, महारात्री, संसारका परिवर्तन करनेवाली, सुमालिनी, सुरूपा, तारिणी, भाविनी ४२० प्रभा । ७२ ।

उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी ।। तपिनी तापिनी विश्वा भोगदा धारिणी धरा ४३० ।। ७३ ।। सुसौम्या चंद्रवदना तांडवा सक्तमानसा ।। सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी ।। ७४ ।।

उन्मीलनी, सर्वसहा, सब प्रत्ययकी साक्षिणी, तपिनी, तापिनी, विश्वा, भोगदा धारिणी, धरा ४३० ।। ७३ ।। सुसौम्या, चन्द्रवदना, तांडवमें प्रसन्न मनवाली, सत्वशुद्धिकारी, शुद्धि, तीनों मलका नाश करनेवाली ।। ७४ ।।

जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया ४४० ।। निराश्रया निराहारा निरंकुशरणोद्भवा ।। ७५ ।। चक्रहस्ता विचित्रांगी स्रग्विणी पद्मधारिणी ।। परापरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा ।। ७६ ।।

जगत्प्रिया, जगत्की मूर्ति, त्रिमूर्ति, अमृताश्रया ४४९ निराश्रया, निराहारा, निरंकुशा रणोद्भवा ।। ७५ ।। चक्रहस्ता, विचित्रांगी, स्रग्विणी, पद्मधारिणी, परा, परविधानकी जाननेवाली, महापुरुषोंसे भी पूर्व होनेवाली ।। ७६ ।।

विद्येश्वरप्रिया ४५० ऽविद्या विद्युज्जिह्व जितश्रमा ।। विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रश्रवणात्मजा ।। ७७ ।। सहस्ररश्मिपद्मस्था महेश्वरपदाश्रया ।। ज्वालिनी ४६० सद्मना व्याप्ता तैजसी पद्मरोधिका ।। ७८ ।।

विश्वेश्वरप्रिया, ४५० अविद्या विद्युतजिह्वा, श्रमरहिता, विद्यामयी, सहस्राक्षी-सहस्र श्रवणकी आत्मजा ।। ७७ ।। सहस्र रश्मि, पद्मस्था, महेश्वरपदाश्रया, ज्वालिनी ६४० पद्म करके व्याप्त, तैजसी, पद्मरोधिका । ७८

महादेवाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ।। व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकिता न्यमितप्रभा ४७० ।। ७९ ।। विश्वेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ।। अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी ।। ८० ।।

महादेवके आश्रयवाली, मान्या, महादेवके मनको रमानेवाली, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकितानी, अमितप्रभा ४७० ।। ७९ ।। विश्वकी स्वामिनी, विमानमें स्थित, विशोका, शोकनाशिनी, अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मवासिनी, ।। ८० ।।

शतानन्दा सतां कीर्तिः ४८० सर्वभूताशयस्थिता ।। वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलावती ।। ८१ ।। ब्रह्मर्षिर्ब्रह्महृदया ब्रह्म विष्णुशिवप्रिया ।। व्योमशक्तिः क्रियाशक्ति ४९० जनशक्तिः परागतिः ।। ८२ ।।

शतानन्दा, सत्पुरुषोंकी कीर्ति ४८० सब भूतोंके आशयमें स्थित, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलावती ।। ८१ ।। ब्रह्मर्षि, ब्रह्महृदया, ब्रह्मा, विष्णु शिवकी प्यारी, व्योमशक्ति; क्रियाशक्ति ४९० जनशक्ति, परमगति ।। ८२ ।।

क्षोभिका रौद्रिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ।। अभिन्ना भिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी ५०० ।। ८३ ।। गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी ।। भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी । ८४ ।

क्षोभिका, रौद्रिका, भेद्या, भेद अभेदसे वर्जित, अभिन्न, भिन्नसंस्थावाली, वंशिनी, वंशहारिणी ५०० ।। ८३ ।।गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी सकला, कालकारिणी ।। ८४ ।।

सर्ववित्सर्वतोभद्रा ५१० गुह्यातीता गुहावलिः ।। प्रक्रिया योगमाता च गंधा विश्वेश्वरेश्वरी ।। ८५ ।। कपिला कपिलाकांता कनकाभा कलांतरा ५२० पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरंदरपुरः सरा ८६

सबकी जाननेवाली, सब ओरसे मंगल दायक ५१० गुह्यसे अतीत, गुहावलि, प्रक्रिया, योगमाता, गन्धा, विश्वेश्वरेश्वरी ।। ८५ ।। कपिला, कपिलाकान्ता, कनकाभा, कलान्तरा ५२० पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरन्दरपुरस्सरा ।। ८६ ।।

पोषणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा ।। पंचब्रह्मसमुत्पत्तिः परमात्मात्मविग्रहा ।। ८७ ।। नर्मोदया ५३० भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा ।। बीजरूपा रजोरूपा वशिनी योगरूपिणी ।। ८८ ।।

पोषणी, परमैश्वर्य विभूतिकी देनेवाली, भूषणा, पञ्च ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाली, परमात्मा, आत्मविग्रहा ॥ ८७ ॥ नर्मोदया ५३०, भानुमती योगिज्ञेया, मनोजवा, वशिनी, योगरूपिणी ॥ ८८ ॥

सुमंत्रा मंत्रिणी पूर्णा ५४० ह्लादिनी क्लेशनाशिनी ॥ मनोहरिर्मनोरक्षी तापसी वेदरूपिणी ॥ ८९ ॥ वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्या प्रकाशिनी ॥ योगेश्वरेश्वरी ५५० माला महाशक्तिर्मनोमयी । ९० ।

सुमन्त्रा, मत्रिणी, पूर्णा ५४० ह्लादिनी, क्लेशनाशिनी, मनोहरि, मनोरक्षी, तापसी वेदरूपिणी ॥ ८९ ॥वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्याकी प्रकाश करनेवाली, योगेश्वरोंकी ईश्वरी ५५० माला, महाशक्ति, मनोमयी, ॥ ९० ॥

विश्वावस्था वीरमुक्तिर्विद्युन्माला विहायसी ॥ पीवरी सुरभी वंद्या ५६० नंदिनी नन्दवल्लभा ॥ ९१ ॥ भारती परमानन्दा परापरविभेदिका ॥ सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी ॥ ९२ ॥

विश्वावस्था, वीरमुक्ति, विद्युन्माला, विहायसी, पीवरी, सुरभी–वन्द्या ५६०, मन्दिनी, नन्दवल्लभा ॥ ९१ ॥ भारती, परमानन्दा, पर अपरके भेदवाली, सब प्रहरणोंसे युक्तकाम्या, कामेश्वरेश्वरी ॥ ९२ ॥

अचिंत्याऽचिंत्यमहिमा ५७० दुर्लेखा कनकप्रभा ॥ कूष्मांडी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गंधदायिनी ॥ ९३ ॥ त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिरोहया ॥ सुदुर्लभा ५८० धनाध्यक्षा धन्या पिंगललोचना ॥ ९४ ॥

अचिन्त्या, अचिंत्यमहिमा ५७० दुर्लेखा, कनकप्रभा, कूष्माण्डी, धनरत्नोंसे युक्त, सुगन्धा, गन्धदायिनी ॥ ९३ ॥ त्रिविक्रमकेपटमें उद्भूतधनुष्पाणि शिरो हया, सुदुर्लभा ५८० धनाध्यक्षा, धन्या, पिंगलोचना ॥ ९४ ॥

भ्रांतिः प्रभावती दीप्तिः पंकजायतलोचना ॥ आद्या हृत्कमलोद्भूता परामाता ५९० रणप्रिया ॥ ९५ ॥ सत्क्रिया गिरिजा नित्यशुद्धा पुष्पनिरंतरा ॥ दुर्गा कात्यायनी चंडी चर्चिका शांतविग्रहा ६०० ॥ ९६ ॥

भ्रान्ति, प्रभावती, दीप्ति, पंकजायतलोचना, आद्या, हृदयकमलसे उत्पन्न, परामाता ५९० रणप्रिया ॥ ९५ ॥ सत्क्रिया, गिरिजा, नित्यशुद्धा, पुष्पनिरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चण्डी चर्चिका, शांतिविग्रहा ६०० ॥ ९६ ॥

हिरण्यवर्णा रजनी जगन्मंत्रप्रवर्तिका ।। मंदराद्रि निवासा च शारदा स्वर्णमालिनी ।। ९७ ।। रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी ६१० ।। पद्मासना पद्मनिभा नित्यतुष्टाऽमृतोद्भवा ।। ९८ ।।

हिरण्यवर्णवाली, रजनी, जगत्के मन्त्र करनेवाली, मंदर पर्वतपर निवास करनेवाली, शारदा, स्वर्णमालिनी ।। ९७ ।। रत्नमाला, रत्नगर्भा, पृथ्वी, विश्वप्रमाथिनी ६१० पद्मासना, मद्मनिभा; नित्यतुष्टा अमृतोद्भवा ।। ९८ ।।

धुन्वती दुष्प्रकंपा च सूर्यमाता दृषद्वती ।। महेंद्रभगिनी माया ६२० वरेण्यावरदर्पिता ।। ९९ ।। कल्याणी कमला रामा पञ्चभूतवर-प्रदा ।। वाच्या वरेश्वरी नन्द्या दुर्जया ६३० दुरतिक्रमा ।। १०० ।।

धुन्वती, दुष्प्रकंपा, सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, माया ६२० वरेण्या, वरसे दर्पित ।। ९९ ।। कल्याणी, कमला, रामा, पञ्चभूतोंको वरणकी देनेवाली वाच्या, वरेश्वरी, नन्द्या, दुर्जया ६३० दुरतिक्रमा ।। १०० ।।

कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रहितप्रिया ।। भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी ।। १०१ ।। कराला पिंगलाकारा नामवेदा ६४० महानदा ।। तपस्विनी यशोदा च यथाध्वपरिवर्तिनी ।। १०२ ।।

कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रहितप्रिया, भद्रकाली, जगत्की माता, भक्तोंको आनन्द देनेवाली ।। १०१ ।। कराला, पिंगलाकारवाली, नामवेदा ६४० महनदा, तपस्विनी, यशोदा, यथाध्वपरिवर्तिनी ।। १०२ ।।

शंखिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्तिका ।। चैत्री संवत्सरा ६५० रुद्रा जगत्संपूरणीन्द्रजा ।। १०३ ।। शुंभारिः खेचरी खस्था कंबुग्रीवा कलिप्रिया ।। खरध्वजा खरारूढा ६६० पराध्यर्या पर-मालिनी ।। १०४ ।।

शंखिनी, पद्मिनी, सांख्ययोगकी प्रवृत्त करनेवाली, चैत्री, संवत्सरा ६५० रुद्रा जगसंपूरणी-इन्द्रजा ।। १०३ ।। शंभारि, खेचरी, अकाशामें स्थित रहनेवाली, कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया, खरध्वजा, खरारूढा, ६६० पराध्यर्या, परमालिनी ।। १०४ ।।

ऐश्वर्यरत्ननिलया विरक्ता गरुडासना ।। जयंती हृद्गुहा रम्या सत्त्ववेगा गणाग्रणीः ।। १०५ ।। संकल्पसिद्धा ६७० साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ।। कलिकल्मषहंत्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ।।१०६।।

ऐश्वर्यरत्नके स्थानवाली, विरक्त, गरुडके आसनवाली जयन्ती, हृद्गुहा, रम्यासत्त्वके वेगवाली, गणोंमें अग्रणी ।। १०५ ।। संकल्पसिद्धा ६७० साम्यमें स्थित, सब विज्ञानकी देनेवाली, कलिकल्मषकी नाश करनेवाली गुह्योपनिषद रूप, उत्तमा ।। १०६ ।।

नित्यदृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः ६८० क्रियावती ।। विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता ।। १०७ ।। लोहिता सर्वमाता च भीषणा वनमालिनी ६९० ।। अनन्तशयनाऽनाद्या नरनारायणोद्भवा ।। १०८ ।।

नित्यदृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि ६८० क्रियावती, विश्वा, अमरपतियोंकी ईश्वरी, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता ।। १०७ ।। लोहिता, सर्वगाता भीषणा, वनमालिनी ६९० अनन्तशयना, अनाद्या, नरनारायणोद्भवा ! १०८।

नृसिंही दैत्यमथिनी शंखचक्रगदाधरा ।। संकर्षणसमुत्पत्तिरंबिकोपातसंश्रया ।। १०९ ।। महाज्वाला महामूर्तिः ७०० सुमूर्तिः सर्वकामधुक् ।। सुप्रभा सुतरां गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ।। ११० ।।

नृसिंही, दैत्यमंथनी, शंख चक्र गदा धारिणी, संकर्षणसमुत्पत्ति, अम्बिका समीपमें निवास करनेवाली ।। १०९ ।। महाज्वलाला, महामूर्ति ७००, सुमूर्ति सब काम देनेवाली, सुप्रभा, अत्यंत गौरी, धर्म काम अर्थ मोक्षकी देनेवाली ११०

भ्रूमध्यनिलयाऽपूर्वा प्रधानपुरुषा बली ।। महाविभूतिदा ७१० मध्या सरोजनयनासना ।। १११ ।। अष्टादशभुजा नाट्या नीलोत्पलदलप्रभा ।। सर्वशक्त्या समारूढा धर्माधर्मानुवर्जिता ।। ११२ ।।

भौंके मध्यमें स्थानवाली, अपूर्वा, प्रधान पुरुषा, बली महाविभूतिकी देनेवाली ७१०, मध्या, कमलनेत्रासना ।। १११ ।। अठारह भुजावाली, नाट्या-, नीले कमलके समान कांतिवाली, सब शक्तिद्वारा समारूढ, धर्म अधर्मसे वर्जित ।। ११२ ।।

वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका ७२० निरिन्द्रिया ।। विचित्रगहना धीरा शाश्वतस्थानवासिनी ।। ११३ ।। स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी ।। अशेषदेवतामूर्तिर्देवतापरदेवता ७३० । ११४ ।

वैराग्य ज्ञानमें निरत, निरालोका ७२०, निरिन्द्रिया, विचित्रगहना, धीरजवाली, शाश्वतस्थानमें निवास करनेवाली ।।११३।। स्थानेश्वरी, निरानन्दा

त्रिशूलश्रेष्ठ धारण करनेवाली, संपूर्ण देवताओंकी मूर्ति, देवता, परदेवता, स्वरूप ७३० ॥ ११४ ॥

गणात्मिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी ॥ अवर्णा वर्णरहिता निर्वणा वीजसम्भवा ॥ ११५ ॥ अनन्तवर्णाऽनन्यस्था शंकरी ७४० शान्तमानसा ॥ अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणान्तरा । ११६ ।

गणात्मिक पर्वतराजपुत्री निशुम्भकी नाश करनेवाली, अवर्णा, वर्णसे रहित, निर्वाणा, बीजसम्भवा ॥ ११५ ॥ अनन्तवर्णा, अनन्यमें स्थितिवाली, शंकरी ७४०, शांत मनवाली अगोत्रा, गोमती, रक्षा करनेवाली, गुह्यरूपा, गुणान्तरा ॥ ११६ ॥

गोश्रीर्गव्यप्रिया गौरी गणेश्वरनमस्कृता ॥ सत्यमात्रा ७५० सत्यसन्धा त्रिसन्ध्या संधिवर्जिता ॥ ११७ ॥ सर्ववादाश्रया सांख्या सांख्ययोगसमुद्भवा ॥ असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा ७६० ॥ ११८ ॥

गोश्री, गौके पदार्थ घृत दुग्धकी प्यार करनेवाली गौरी, गणेश्वरसे नमस्कृत सत्यमात्रावाली ७५० सत्यसन्धा, तीनों सन्ध्या और संधिसे रहित ॥ ११७ ॥ सर्ववादके आश्रयवाली, सांख्ययुक्त, सांख्य, योग द्वारा प्रगट होनेवाली, अनन्ता, प्रमाके अयोग्य, शून्या, शुद्धकुलमें प्रगट होनेवाली ७९० ॥ ११८ ॥

बिंदुनादसमुत्पत्तिः शंभुवामा शशिप्रभा ॥ विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी ॥ ११९ ॥ महाश्रीः श्रीसमुत्पत्ति ७७० स्तमःपारे प्रतिष्ठिता ॥ त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपद संश्रया ॥ १२० ॥

विन्दुनादसे प्रगट होनेवाली, शम्भुकी वामा, चन्द्रमाके समान कांतिवाली, संगवर्जित, भेदरहित, मनोहरा, मधुसूदनी ॥ ११९ ॥ महाश्री, लक्ष्मीकी प्रगट करनेवाली, ७७० तमके परपारमें स्थिति करनेवाली, तीन तत्वोंकी माता, त्रिविधा, सूक्ष्मपदमें स्थिति करनेवाली ॥ १२० ॥

शांत्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया ॥ शिवाख्या चित्र निलया ७८० शिवज्ञानस्वरूपिणी ॥ १२१ ॥ दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकर्णिका ॥ शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका ॥ १२२ ॥

शांत्यतीता, मलसे परे, निर्विकारा, निराश्रया, शिवा, चित्रनिलया ७८० शिवके ज्ञानकी स्वरूपवाली ।। १२१ ।। दैत्यदानवकी निर्माण करनेवाली, काश्यपी, कालकर्णिका, शास्त्रयोनि, क्रियाकी मूर्ति, चार वर्ग (धर्म अर्थ काम मोक्ष) की दिखानेवाली ।। १२२ ।।

नारायणी नवोद्भूता कौमुदी ७९० लिंगधारिणी ।। कामुकी ललिता तारा परापरविभूतिदा ।। १२३ ।।परांजततामहिमा वडवा वामलोचना ।। सुभद्रा देवकी ८०० सीता वेदवेदांगपारगा । १२४ ।

नारायणी, नवीन उद्भववाली, कौमुदी ७९० लिंगधारिणी, कामुकी, ललिता, तारा, परापरके ऐश्वर्यकी देनेवाली ।। १२३ ।। महामहिमावाली, वडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी ८०० सीता वेदवेदांगकी पार जाने-वाली ।। १२४ ।।

मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा ।। अमृत्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुप्लुता ।। १२५ ।। अशोच्या ८१० भिन्नविषया हिरण्य-रजतप्रिया ।। हिरण्या राजती हैमी हेमाभरण भूषिता ।। १२६ ।।

मनस्विनी, मन्युमाता, महाक्रोधमें होनेवाली,' मृत्यु रहित, अमृतके अस्वाद वाली, पुरुहूता, पुरुलुप्ता ।। १२५ ।। शोचरहिता ८१०, भिन्न विषयवाली सोने चांदीको प्यार करनेवाली, सुवर्ण चांदी हेमरूपवाली, सुवर्णके गहनोंसे युक्त ।। १२६ ।।

विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा ।। महानिद्रा ८२० समुद्भुतिर्बलींद्रा सत्यदेवता ।। १२७ ।। दीर्घा ककुद्मिनी विद्या शांतिदा शांतिर्वाद्धिनी ।। लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रव-र्तिका ।। १२८ ।।

विशेषकर शोभायमान, जाननेमें न आने-ज्योतिष्टोम यज्ञका फल देने-वाली, महानिद्रा । ८२० समुद्भववाली, बलियोंमें श्रेष्ठ सत्यदेवतायुक्त ।। १२७ ।। दीर्घिका, ककुद्मिनी विद्या शांति देनेवाली, शांतिकी बढानेवाली, लक्ष्मी आदि शक्तिकी उत्पन्न करनेवाली, शक्तिचक्रको प्रवृत्त करनेवाली १२८

त्रिशक्तिजननी ८३० जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता ।। स्वाहा च कर्मकरणी युगांतदलनात्मिका ।। १२९ ।। संकर्षणा जगद्धात्री काम योनिः किरीटिनी ।। ऐंद्री ८४० त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमे-श्वरी ।। १३० ।।

तीनों शक्ति उत्पन्न कर्त्री ८३० जन्या, कामक्रोधादि छः ऊर्मियोंसे वर्जित, स्वाहा, कर्मकी करनेवाली, युगान्तदलन करनेवाली ।। १२९ ।। संकर्षण करनेवाली, जगतकी माता, कामयोनि, किरीट धारण किये, ऐन्द्रीशक्ति ८४० त्रिलोकीसे नमस्कृत, वैष्णवी, परमेश्वरी ।। १३० ।।

प्रद्युम्नदयिता दांता युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना ।। महोत्कटा हंसगतिः प्रचन्डा ८५० चण्डविक्रमा ।। १३१ ।। वृषावेशा वियन्मात्रा विंध्य-पर्वतवासिनी ।। हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी ।। १३२ ।।

प्रद्युम्नप्रिया, दान्ता, युग्मदृष्टिवाली त्रिलोचना, महाउत्कटा, हंसगामिनी, प्रचण्डा ८५० तीक्ष्ण पराक्रमवाली ।। १३१ ।। वृषमें आवेशवाली, आकाशकी मात्रा, विन्ध्यपर्वतमें निवास करनेवाली हिमालय और मेरुमें निवास करने-वाली, तथा कैलासमें रहनेवाली ।। १३२ ।।

चाणूरहन्त्री तनया नीतिज्ञा कामरूपिणी ८६०।। वेदविद्या व्रतरता धर्मशीलाऽनिलाशना ।। १३३ ।। अयोध्यानिलया वीरा महा-कालसमुद्भवा ।। विद्याधरक्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः । १३४ ।

चाणूरकी मारनेवाली, तनया नीतिकी जाननेवाली कामरूपिणी ८६०, वेदविद्याव्रतमें रत, धर्मशीशा, अनिलका भोजन करनेवाली ।। १३३ ।। अयोध्या में निवास करनेवाली, वीरा महाकालकी प्रकट करनेवाली, विद्याधरप्रिया, विद्याधरकी निराकृत करनेवाली ।। १३४ ।।

आप्यायन्ती ८७० वहंती च पावनी पोषणी खिला ।। मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया ।। १३५ ।। करीषिणी स्वधा वाणी ८८० वीणावादनतत्परा ।। सेविता सेविका सेवा सिनीवाली गरुत्मती ।। १३६ ।। अरुंधती हिरण्याक्षी मणिदा श्रीवसुप्रदा ८९० ।। वसुमती वसोर्धारा वसुंधरा समुद्भवा।। १३७ ।। वरारोहा वरार्हा च वपुःसङ्गसमुद्भवा ।। श्रीफली श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा ९०० हरिप्रिया ।। १३८ ।।

तृप्ति करनेवाली ८७० वहन करनेवाली, पावना, पोषणी, खिला, मातृका, मन्मथसे उद्भूत, जलसे प्रगट होनेवाली, वाहन प्रिया ।। १३५ ।। करीषिणी, स्वधा, वाणी ८८०, वीणा बजानेमें तत्पर, सेविता, सेविका, सेवा, हनीवाली (अमारूप), गरुत्मती ।। १३६ ।। अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मणिदाता, श्री,

वसु, (धन) की देनेवाली ८९० वसुमती, वसोधरा, वसुन्धरासे प्रगट होनेवाली ।। १३७ ।। सुमुखी श्रेष्ठ योग्यतायुक्त, शरीरके संगमसे होनेवाली, श्रीफली, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा ९०० हरिकी प्रिया १३८।।

श्रीधरी श्रीकरी कंपा श्रीधरा ईशवीरणी ।। अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया ९१० ।। १३९ ।। निहंत्री दैत्यसिंहानां सिंहिका सिंहवाहिनी ।। सुसेना चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छिन्नसंशया ।। १४० ।।

श्रीधरी, श्री करनेवाली, कम्पा, श्रीधारणकरनेवाली; ईशवीरणी, अनन्त दृष्टि, क्षुद्रतारहित, धात्रीशा, धनदकी प्रिया ९१० ।। १३९ ।। महादैत्योंकी मारनेवाली, सिंहिका रूप, सिहपर चढनेवाली, सुन्दर सेनावाली, चन्द्रमें स्थानवाली, सुंदर कीर्तिवाली, सन्देहरहित ।। १४० ।।

बलज्ञा बलदा वामा ९२० लेलिहानाऽमृताश्रवा ।। नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुकामृतजीविनी ।। १४१ ।। वज्रदंष्ट्रा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा ९३० ।। मंगल्या मङ्गला माला मलिना मल-हारिणी ।। १४२ ।।

वलकी जाननेवाली, देनेवाली, वामा ९२० जिह्वा चाटनेवाली, अमृत प्रकट करनेवाली, नित्य सदयरूप, स्वयंज्योति, उत्सुका, अमृतजीवनी ।। १४१ ।। वज्रके समान डाढोंवाली, वज्रजिह्वावाली वैदेही, वज्रके समान शरीरवाली, ९३०, मंगलरूपिणी मंगला, माला, मलिना, मलकी हरनेवाली ।। १४२ ।।

गन्धर्वी गारुडी चान्द्री कंबलाश्वतरप्रिया ।। सौदामनी ९४० जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलनाना ।। १४३ ।। कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी ।। युगंधरा युगावर्त्ता त्रिसन्ध्याहर्षवर्धिणी ।१४४

गान्धर्वी, गारुडी, चांन्द्री, कम्बल, अश्वतरनामक नागोंकी प्रिया ९४०, जनोंको आनन्द देनेवाली, भ्रुकुटीसे कुटिलमुखवाली ।। १४३ ।। कर्णिकारसे करवाली, कक्षा, कंसके प्राण हरनेवाली, युगन्धरा, युगका आवर्तन करने-वाली, त्रिसन्ध्यारूप, हर्षकी बढानेवाली ।। १४४ ।।

प्रत्यक्षदेवता ९५० दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा ।। शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना ।। १४५ ।। इष्टा विशिष्टा ९६० शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता ।। शतरूपा शतावर्त्ता विनीता सुरभिः सुरा ।। १४६ ।।

प्रत्यक्ष देवता ९५० दिव्या, दिव्यगंधवाली, दिवापरा, इन्द्रके आसनपर प्राप्त होनेवाली, शक्रकी शक्ति, साध्वी, नारी, शवकी भक्षण करनेवाली ।। १४५ ।। इष्टा, विशिष्टा, ९६० शिष्टोंको इष्टरूप, शिष्ट अशिष्टोंसे पूजित, शतरूपा, शतावर्ता, विनीता, मनोहरा, सुगन्धियुक्ता, सुरा, ।। १४६ ।।

सुरेंद्रमाता सुद्युम्ना ९७० सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता ।। समीक्षा सप्रतिष्ठा च निर्वृत्तिर्ज्ञानपारगा ।। १४७ ।। धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना ।। धर्माधर्मविनिर्मात्री ९८० धार्मिकाणां शिवप्रदा ।। १४८ ।।

सुरेन्द्रकी माता, सुद्युम्ना ९७० सुषुम्नानाडीरूप, सूर्यमें स्थित, समीक्षा; सत्में प्रतिष्ठित, निर्वृत्तिस्वरूप, ज्ञानकी पारगामिनी ।। १४७ ।। धर्मशास्त्रके अर्थमें कुशल, धर्मकी जानने वाली, धर्मवाहना, धर्म अधर्मकी निर्माण करनेवाली, ९८० धर्मात्माओंको मंगल देनेवाली ।। १४८ ।।

धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ।। धर्मातरा धर्ममध्या धर्मपूर्वा धनप्रिया ।। १४९ ।। धर्मोपदेशा ९९० धर्मात्मा धर्मलभ्या धराधरा ।। कपाली शाकलामूर्तिः कलाकलितविग्रहा ।। १५० ।।

धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, संसारके धर्मवाली, धर्ममें अन्तरवाली, धर्ममध्यावाली, धर्मसे पूर्वस्थित, धनप्रिया ।। १४९ ।। धर्मके उपदेशवाली, ९९० धर्मात्मा, धर्मसे प्राप्त होनेवाली, पृथ्वीकी धारण करनेवाली, कपाली, शाकलामूर्ति, कलाकलितशरीरवाली, ।। १५० ।।

सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रया ।। सर्वा सर्वेश्वरी १००० सूक्ष्मा सुसूक्ष्मज्ञान रूपिणी ।। १५१ ।। प्रधानपुरुषेशाना महापुरुषसाक्षिणी।।सदा शिवा वियन्मूर्तिदेवमूर्तिरमूर्तिका।।१००८।।१५२।।

सब शक्तियोंसे पृथक् सब शक्तियोंके आश्रयवाली सर्वरूप सर्वेश्वरी १००० सूक्ष्मा, अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञानके रूपवाली ।। १५१ ।। प्रधान पुरुष, ईशाना, महापुरुषकी साक्षिणी सदाकल्याणरूपा, आकाश मूर्ति, देवमूर्ति, मूर्तिरहित १००८ तुम हो तुम्हारे निमित्त नमस्कार है ।। १५२ ।।

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव रघुनंदनः ।। कृतांजलिपुटो भूत्वा सीतां हृष्टतनूरुहाम् ।। १५३ ।। भारद्वाज महाभाग यश्चैतस्तोत्रमद्भुतम् ।। पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमं परम् ।। १५४ ।।

इस प्रकार हाथ जोडे प्रसन्नमन रोमांचशरीर हो रघुनन्दनने जानकीको प्रसन्न किया ।। १५३ ।। हे भारद्वाज महाभाग ! जो कोई इस अद्भुत स्तोत्रको सुनता है पढता है वा पढाता है वह परमपदको जाता है ।। १५४ ।।

ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्ब्रह्म प्राप्नोति शाश्वतम् ।। शूद्रः सद्गतिमाप्नोति धनधान्यविभूतयः ।। १५५ ।। भवंति स्तोत्रमाहात्म्यादेतत्स्वस्त्ययनं महत् ।। मारीभये राजभये तथा चोराग्निजे भये । १५६ ।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शाश्वत ब्रह्मको प्राप्त होते हैं और शूद्रको सद्गति तथा धन धान्यकी प्राप्ति होती है ।। १५५ ।। इस स्तोत्रके माहात्म्यसे परम मंगल होता है महामारीभय राजभय चोर अग्निका भय ।। १५६ ।।

व्याधीनां प्रभवे घोरे शत्रूत्थाने च संकटे ।। अनावृष्टिभये विप्र सर्वशांतिकरं परम् ।। १५७ ।। यद्य दिष्टतमंयस्य तत्सर्वंस्तोत्रतो भवेत् ।। यत्रैतत्पठ्यते सम्यक् सीतानामसहस्रकम् ।। १५८ ।।

महाघोर व्याधि शत्रुओंके संकटमें अनावृष्टिके भयमें सब प्रकारकी शान्ति होती है ।। १५७ ।। जो जो इसको इष्ट हो वह सब इस स्तोत्रके पाठसे हो जाता है यह सीतासहस्रनाम पढा जाता है ।। १५८ ।।

रामेण सहिता देवी तत्र तिष्ठत्यसंशयम् ।। महापापातिपापानि-विलयं यांति सुव्रत ।। १५९ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकाण्डे सीतासहस्रनाम-स्तोत्रकथनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ।। २५ ।।

वहां रामके सहित देवी स्थित होती है इसमें संदेह नहीं । हे द्विज ! महापाप औय घोरपाप भी इससे छूट जाते हैं ।। १५९ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्भुतोत्तरकाण्डे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां सीतासहस्रनामस्तोत्रकथनं नाम पंच विंशतितमः सर्गः ।। २५ ।।

षड्विंशति सर्ग

श्रीरामविजयवर्णन

एवं नामसहस्रेण स्तुत्वाऽसौ रघुनंदनः ।। भूयः प्रणम्य प्रीतात्मा प्रोवाचेदं कृतांजलिः ।। १ ।। यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि ।। भीतोऽस्मि सांप्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत्प्रदर्शय ।। २ ।।

इस प्रकार रघुनन्दन सहस्रनामसे स्तुति करे फिर हाथ जोड प्रणाम कर जानकीसे कहने लगे ।। १ ।। हे परमेश्वरी ! जो यह तेरा घोर परमेश्वर सम्बन्धी रूप है इससे मैं भीत हो रहा हूं इस कारण इसे शान्त कर सौम्यरूप दिखाओ ।। २ ।।

एवमुक्ताथ सा देवी तेन रामेण मैथिली ।। संहृत्य दर्शयामास स्वं रूपं परमं पुनः ।। ३ ।। कांचनांबुरुहप्रख्यं पद्मोत्पलसुगंधिकम् ।। सुनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् ।। ४ ।।

जब रामने मैथिली जानकीसे ऐसा कहा तब जानकीने अपना रूप शान्त कर सौम्यरूप दिखलाया ।। ३ ।। जो कञ्चनके कमलके समान पद्मदलके समान, सुगंधिवाला सुन्दर नेत्र दो भुजा, नीली अलकोंसे विभूषित ।। ४ ।।

रक्तपादांबुजतलं सुरक्तकर पल्लवम् ।। श्रीमद्विशालसद्वृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम् ।।५।। भूषितं चारुसर्वांगं भूषणैरभिशोभितम्।। दधानं सुरसां मालां विशालां हेमनिर्मिताम् ।। ६ ।। ईषस्मितं सुबिंबोष्ठं नूपुरांबरसंयुतम् ।। प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् ।। ७ ।। तदीदृशं समालोक्य रूपं रघुकुलोत्तमः ।। भीतिं संत्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम् ।। ८ ।।

लाल चरण लाल करपल्लव श्रीमान् विशाल सद्वृत्त ललाटके ऊपर उज्ज्वल तिलक लगाये ।। ५ ।। सम्पूर्ण सुन्दर अंग भूषणोंसे शोभित विशाल सुवर्णनिर्मित सुरमाला धारण किये ।। ६ ।। कुछेक हास्ययुक्त बिम्बाफलके समान ओष्ठ, नूपुर और अम्बरसे संयुक्त प्रसन्नमुख दिव्य और अनन्तमहिमाका स्थान ।। ७ ।। रघुनाथजी जानकीका इस प्रकारका रूप देखकर भयको त्याग प्रसन्न हो परमेश्वरीसे कहने लगे ।। ८ ।।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।। यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा ।। ९ ।। त्वया सृष्टं जगत्सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ।। त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परागतिः ।। १० ।।

आज मेरा जन्म और तप सफल है जो तुम अव्यक्ता साक्षात् मेरी दृष्टिके सन्मुख हुई हो और प्रसन्न हुई हो ।। ९ ।। तुमनेही सब जगत् निर्माण किया है और यह प्रधानादि दुतुममें स्थित है. हे देवि ! यह अन्तमें तुममेंही लय हो जाता है, तुमही परागति हो ।। १० ।।

वदंति केचित्त्वामेव प्रकृतिं विकृतेः परम् ।। अपरे परमात्मज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये ।। ११ ।। त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वरः ।। अविद्या नियतिर्माया कालाद्याः शतशोऽभवन् ।। १२ ।।

कोई तुमहीको प्रकृतिसे विकृतिसे परे कहते हैं. परमात्माके जाननेवाले शिवके आश्रयमें शिवा कहते हैं ।। ११ ।। तुममें प्रधान पुरुष महान् ब्रह्मा ईश्वर अविद्या नियति माया कालाहि सैकडों होते हैं ।। १२ ।।

त्वं हि सा परमा शक्तिरनंता परमेष्ठिनी ।। सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा ।। १३ ।। त्वामधिष्ठाय योगेशि पुरुषः परमेश्वरीम् ।। प्रधानाद्यं जगत्कृत्स्नं करोति विकरोति च ।। १४ ।।

तुम अनन्त परमेष्ठिनी परमशक्ति हो सब भेदोंसे निर्मुक्त सब भेदोंके आश्रयवाली निजस्वरूप ।। १३ ।। हो हे योगेशि ! तुम परमेश्वरको प्राप्त होकर पुरुष प्रधानादि सब जगत्को निर्माण कर फिर संहार करती है ।। १४ ।।

त्वयैव सगतो देवः स्वमानंदं समश्नुते ।। त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी ।। १५ ।। त्वमेव परमं व्योम महाज्योतिर्निरंजनम् ।। शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।। १६ ।। त्वं शक्रः सर्व-देवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामपि ।। सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शंकरः ।। १७ ।। आदित्यानामुपेंद्रस्त्व वसूनां चैव पावकः ।। वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामपि ।। १८ ।।

तुम्हारी संगतिसे अपने देव अपने आनन्दको प्राप्त होता है, तुमही परमानंद और आनंदकी देनेवाली हो ।। १५ ।। तूही परमाकाश महाज्योति निरञ्जन है, शिव सर्वगत सूक्ष्म परब्रह्म सनातन है ।। १६ ।। तुम

१ स्वके नित्ये निजं त्रिष्वित्यमरान्नित्या ।

सब देवताओंके इन्द्र, ब्रह्मज्ञानियोंके ब्रह्मा हो, सांख्योंमें कपिलदेव, रुद्रोंमें शंकर हो ।। १७ ।। आदित्योंमें उपेन्द्र और वसुओंमें पावक हो, वेदोंमें सामवेद और छंदोंमें गायत्री हो ।। १८ ।।

अध्यात्मविद्या विद्यानां गीतानां परमा गतिः ।। माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामपि ।। १९ ।। ॐकार सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः ।। आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः ।। २० ।।

विद्यामें अध्यात्मविद्या गतियोंमें परमगति सर्वशक्तियोंकी माया और कलित करनेवालोंमें काल तुम हो ।। १९ ।। सम्पूर्ण गुह्योंमें ॐकार तुम हो, वर्णोंमें ब्राह्मण, आश्रमोंमें, गृहस्थ, और ईश्वरोंमें महेश्वर तुम हो ।। २० ।।

पुंसां त्वमेव पुरुषः सर्वभूत हृदि स्थितः ।। सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे ।। २१ ।। ईशनं चासि भूपानां युगानां कृतमेव च ।। आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवि सरस्वती ।। २२ ।।

पुरुषोमें पुरुष सब भूतोंके हृदयमें तुम स्थित हो हे देवि ! सम्पूर्ण उपनिषदोंमें गुप्त उपनिषद् तुम हो ।। २१ ।। राजोंमें ईशता, और युगमें सतयुग तुम हो, अर्चिरादि सब मार्गोंमें आदित्य, वाणियोंमें सरस्वती देवी तुम हो ।। २२ ।।

त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामपि ।। अरुंधती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि ।। २३ ।। सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठं साम च सामसु ।। सावित्री ह्यसि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम् ।। २४ ।।

सुन्दर रूपवालोंमें लक्ष्मी मायावियोंमें विष्णु, सतियोंमें अरुन्धती, पक्षियोंमें गरुड तुम हो ।। २३ ।। वेदके सूक्तोंमें पुरुषसूक्त साममें ज्येष्ठ साम, जपोंमें सावित्री, और यजुओंमें शतरुद्रिय तुम हो ।। २४ ।।

पर्वतानां महामेरुरनन्तो भागिनामसि ।। सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेवहि ।। २५ ।। रूपं तवाशेषकलाविहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।। अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ।। २६ ।।

---

१ अर्चिरादिमार्गाणाम् ।

१ कलाः कलनानि परिच्छेदा इति यावत् । कल संख्याने । यावत्परिच्छिेदशून्यमपरिच्छिन्नमिति यावत् ।

पर्वतोंमें मेरु भोगियों (सर्पों) में अनन्त, सबके परब्रह्म तुम हो यह सब तुममें हैं ।। २५ ।। तुम्हारा रूप सब कालसे विहीन अगोचर निर्मल एक है, आदि अन्त मध्यरहित अनन्त तुमसे परे, सबकी आदि तुमको मैं प्रणाम करता हूं ।। २६ ।।

यदेव पश्यंति जगत्प्रसूतिं वेदांतविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।। आनन्दमात्रं परमाविधान तदेव रूपं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।। २७ ।। अशेषसूत्रांतरसन्निविष्टं प्रधानसंयोगवियोगहेतुः ।। तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ।। २८ ।।

जो वेदान्तके विज्ञानसे निश्चित अर्थवाले होकर इस जगत्की प्रसूति तुमको जब देखते हैं, आनन्द मय परम तुम्हारे रूपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ।। २७ ।। सम्पूर्णके सूत्रांतरमें सन्निविष्ट प्रधानसंयोगवियोगके हेतु तेजोमय जन्मविनाशसे हीन प्राणरूप तुमको मैं नित्य नमस्कार करता हूं ।। २८ ।।

आद्यंतहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।। कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव नमामि रूपं पुरुषाभिधानम् ।। २९ ।। सर्वाश्रयं सर्वजगन्निधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।। नतोऽस्मि ते रूपमणुप्रभेदमाद्यं महत्त्वे पुरुषानुरूपम् ।। ३० ।।

आदि अन्तमें हीन. जगत्के आत्मरूप भिन्नसंस्थावान्, प्रकृतिसे परे, कूटस्थ अव्यक्त शरीर पुरुषरूप तुमको नित्य नमस्कार करता हूं ।। २९ ।। सबके आश्रय, सब जगत्के निधान, सब स्थानमें जानेवाले जन्मविनाशसे रहित, अणुप्रभेद आद्य महत्त्व पुरुष अनुरूप तुम्हारे रूपको मैं प्रणाम करता हूं ।। ३० ।।

प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजमैश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः ।। समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपं द्विसप्तलोकात्मकमंबुसंस्थम् ।। ३१ ।। विचित्रभेदं पुरुषैकनाथमनंत भूतैर्विनिवासितं ते ।। नतोऽस्मि रूपं जगदंडसंज्ञमशेषवेदात्मकमेकमाद्यम् ।। ३२ ।। स्वतेजसा पूरितलोकभेदं नमामि रूपं रविमंडलस्थम् ।। सहस्रमूर्द्धानमनंतशक्ति सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम् ।। शयानमंतः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ।। ३३ ।। दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवंद्यं युगांतकालानलकल्परूपम् ।। अशेषभूतांडविनाश हेतुं नमामि रूपं नव कालसंज्ञम् । ३४ ।

प्रकृतिकी अवस्थावाला, त्रिगुणात्मबीज ऐश्वर्य विज्ञान विराग धर्मोंसे युक्त, चौदह लोकात्मक, जलमें स्थित, आपके रूपको नमस्कार करता हूं ।। ३१ ।। विचित्रभेद पुरुष एकनाथ अनन्त भूतोंसे निवासित जगत्के अंडसंज्ञक अशेष वेद आद्य तुम्हारे रूपको नमस्कार करता हूं ।। ३२ ।। अपने तेजसे लोकको भेद पूर्ण रविमंडलमें स्थित तुम्हारे रूपको नमस्कार करता हूं. सहस्रमूर्धावाले अनन्तशक्ति सहस्रबाहु पुराणपुरुष जलके भीतर शयन करनेवाले नारायणाख्य आपके रूपको नमस्कार करता हूं ।। ३३ ।।कराल डाढोंवाला देवताओंसे नमस्कृत युगान्तकालानलके समान प्रकाशित सम्पूर्ण भूतअण्डके विनाशकारण कालसंज्ञक तुम्हारे रूपको नमस्कार करता हूं ।। ३४ ।।

फणासहस्रेण विराजमानं भुवस्तलेऽधिष्ठितमप्रमेयम् ।। अशेषभारोद्वहने समर्थं नमामि ते रूपनंतसंज्ञम् ।। ३५ ।। अव्याहतैश्वर्यम युग्मनेत्रं ब्रह्मात्मतानं दरसंज्ञमेकम् ।। युगांतशेषं दिवि नृत्यमानं न तोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम् ।। ३६ ।।

सहस्रफणोंसे विराजमान पृथ्वीतलमें स्थित अप्रमेय सम्पूर्ण भारके उद्वहन करनेमें समर्थ अनन्तसंज्ञक अव्यातहतैश्वर्य नेत्रद्वयवाले ब्रह्मानंदमें स्थित स्वर्गमें नाचनेवाले ऐसे तुम्हारे रुद्र रूपको नमस्कार करता हूं ।। ३५ ।। ३६ ।।

प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं सुरा सुरैरर्चितपादयुग्मम् ।। सुकोमलं देवि विशालशुभ्रं नमामि ते रूपमिदं नमामि ।। ३७ ।। एतावदुक्त्वा वचनं रघुराजकुलोद्वहः ।। संप्रेक्षमाणो वैदेहीं प्रांजलिः पार्श्वतोऽभवत् ।। ३८ ।।

शोकरहित विमल पवित्र सुर असुरोंसे अर्चित चरणकमल कोमल विशाल शुभ्र इस तुम्हारे रूपको मैं प्रणाम करता हूं ।। ३७ ।। राजा रघुकुलनंदन राम हाथ जोडे यह वचन कहतें देवीके पार्श्वभागमें स्थित हुए ।। ३८ ।।

अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतीपतेः ।। सस्मितं प्राह भर्तारं शृणुष्वैकं वचो मम ।। ३९ ।। गृहीतं यन्मया रूपं रावणस्य वधाय हि ।। तेन रूपेण राजेंद्र वसामि मानसोत्तरे ।। ४० ।।

तब जानकी जगत्पतिके वचन श्रवण करके हँसती हुई स्वामीसे बोली हमारा आप एक वचन सुनिये ।। ३९ ।। जो मैंने रावणके वधके निमित्त यह रूप धारण किया है इस रूपसे मैं मानसके उत्तरभागमें निवास करूँगी ।। ४० ।।

प्रकृत्या नीलरूपस्त्वं लोहितो रावणार्दितः ।। नीललोहितरूपेण त्वया सहवसाम्यहम् ।। ४१ ।। गृहाण च वरं राम मत्तो यदभिकांक्षितम् ।। तच्छ्रुत्वा राघवो वीरः प्रतिश्रुत्य गिरौ स्थितिम् ।। ४२ ।।

हे राम तुम प्रकृतिसे नीलरूप हो रावणसे अर्दित होनेसे लोहितवर्ण हुए सो नीललोहित रूपसे तुम्हारे साथ मैं निवास करूँगी ।। ४१ ।। हे राम ! जिस वरकी इच्छा हो सो आप मुझसे मांगिये, यह वचन सुन रामचन्द्र उस पर्वतकी स्थितिको अङ्गीकार कर ।। ४२ ।।

भारद्वाजांशभागेन ययाचे परमेश्वरीम् ।। देवि सीते महाभागे दर्शितं रूपमैश्वरम् ।। ४३ ।। हृदयान्नापगच्छेत्तदिति मे दीयतां वरः ।। भ्रातरो मम कल्याणि वानरोः सविभिषणाः ।। ४४ ।।

हे भारद्वाज ! अंश भागद्वारा परमेश्वरीसे मांगने लगे, हे महाभागे देवि सीते ! यह जो तुमने ईश्वर सम्बन्धी रूप दिखाया है ।। ४३ ।। यह कभी मेरे हृदयसे न जाय यही वर मुझे दीजिये । हे कल्याणी ! मेरे भ्राता वानर और विभीषणादि सुहृद् ।। ४४ ।।

सेनान्यो मम वैदेहि अयोध्यायोधमुख्यकाः ।। सुपुनस्ते संगताः संतु मया रावणर्तार्जिताः ।। ४५ ।। एतस्मिन्नंतरे चाभूदाकाशे दुंदुभिस्वनः ।। पपात पुष्पवृष्टिश्च रामसीतोपरि द्विज ।। ४६ ।।

हमारे सब सेनाके लोग अयोध्याके मुख्य जो रावणसे र्जजित हो गये हैं वे सब मुझसे फिर मिल जायँ ।। ४५ ।। उसी समय आकासे दुन्दुभीका शब्द होने लगा, राम सीताके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ।। ४६ ।।

प्रहस्य सीता पुनराह रामं तथेति रामोऽपि विरिंचिमुख्यान् ।। स तान्विसृज्य प्रतिगृह्य सीतां गंतुं स्वकं देशमसावियेष ।। ४७ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामविजयो नामषड्विंशतितमः सर्गः ।। २६ ।।

तब हँसकर जानकी रघुनाथजीसे कहने लगीं कि, ऐसाही होगा तब रघुनाथजी ब्रह्मादिक देवताओंको विदा कर सीता ले अपने देश जानेकी इच्छा करने लगे ।। ४७ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रा. अद्भुतोत्तरकाण्डे भाषाटीकायां श्रीरामविजयो नाम षड्विंशतितम सर्गः ।। २६ ।।

सप्तविंशति सर्ग

श्रीरामका अयोध्याजीमें आना

रामस्तु पुष्पकारूढः सीतामालिंग्य बाहुना ।। अयोध्यामगमद्वीरः काकुत्स्थकुलनन्दनः ।। १ ।। रथनेमिस्वनं श्रुत्वा रामदर्शनलालसाः ।। भ्रातरो भरताद्यास्ते योधमुख्याश्च ते तथा ।। २ ।।

पुष्पकपर चडे हुए राम भुजासे जानकीको आलिंगन कर वह काकुत्स्थ-कुलप्रकाश अयोध्याको चले ।। १ ।। उस पुष्पकका शब्द सुनकर रामके दर्शनकी लालसावाले भरतादिक भ्राता और मुख्य योधा ।। २ ।।

राममागतमाज्ञाय ससीतं सऋषिव्रजम् ।। प्रणेमुः सहसागत्य आनन्दाश्रुकणा कुलाः ।। ३ ।। वानरान्राक्षसान्सर्वानानाय्य स्वपुरं हि सः ।। सर्वं तत्कथयामास रामः कमललोचनः ।। ४ ।।

सीता और ऋषियोंके साथ रामको आया जानकर आनन्दके आंसु भरे सहसा रामसे आकर प्रणाम करने लगे ।। ३ ।। सब वानर राक्षसोंको अपने पुरमें लाकर कमललोचन रामने रावणवधका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ।। ४ ।।

तच्छ्रुत्वा विस्मिताः सर्वे साधुसाध्विति वादिनः ।। सीतां तत्त्वेन विज्ञाय रामं च मधुसूदनम् ।। ५ ।। तदेव चिंतयंतस्ते स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा ।। विसृष्टा रामभद्रेण सांत्वपूर्वं महात्मना ।। ६ ।।

यह सुनकर सब विस्मित हो धन्य धन्य कहने लगे, तत्त्वसे सीताको जानकर और मधुसूदनरूप रामको जानकर ।। ५ ।। यही विचार करते वे अपने २ स्थानोंको चले गये, उन महात्माओंको रामचन्द्रने सत्कारपूर्वक बिदा किये । ६ ।

ऋषयश्चाभिनंद्यैनं ससीतं रघुनंदनम् ।। आशीर्भिर्वर्धयामासुर्ययुश्चापि यथागतम् ।। ७ ।। रामोऽपि सीतया सार्द्धं भ्रातृभिश्च महात्मभिः ।। चक्रे निष्कंटकां पृथ्वीं देवानां च महद्धितम् ।। ८ ।।

सीतासहित रघुनाथको ऋषिजन अभिनन्दन कर आशीर्वादोंसे बडाकर अपने २ स्थानोंको गये ॥ ७ ॥ रामचन्द्रभी सीता और महात्मा भ्राताओंके साथमें देवताओंके हितके निमित्त पृथ्वीको निष्कंटक करते हुए ॥ ८ ॥

यज्ञान् बहुविधांश्चक्रे सरयूतीर उत्तमे । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ किंचिदभ्यधिकं चैव रामो राज्यमकारयत् ॥ ९ ॥ देवकिन्नरगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ रामं नमंति सततं गुणारामं रमापतिम् ॥ १० ॥ एतत्ते कथितं भद्र भारद्वाज महामते ॥ तेषु किंचिदिहाश्चर्यमुक्तं रामकथाश्रयम् ॥ ॥ ११ सर्वं न वक्तुमिच्छामि पुनरुक्तिभयाद्विज ॥ ब्रह्मणा गोपितं तच्च अतोपि न तदुक्तवान्॥१२।

सरयूके किनारे उत्तमोत्तम बहुतसे यज्ञ किये. इस प्रकार ग्यारह सहस्र वर्षसे कुछ अधिक रामने राज्य किया ॥ ९ ॥ देव कन्निर गन्धर्व विद्याधर महासर्प गुणोंके खान रामको सदा प्रणाम करते रहे ॥ १०॥हे भारद्वाज महामते ! यह सब आपके प्रति कथन किया, रामचरित्र अनेक हैं उनमें कुछेक रामकथाके आश्रयके चरित्र वर्णन किये हैं ॥ ११ ॥ पुनरुक्तिके भयसे मैं सम्पूर्ण कहनेको समर्थ नहीं हूं, ब्रह्माजीने गुप्त कर रक्खा था इस कारण मैंने तुमसे वर्णन नहीं किया था ॥ १२ ॥

अद्भुतोत्तरकाण्डे तत्कथितं वेदसंमितम् ॥ शृणोत्यधीते यश्चैतत्स ब्रह्म परमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ श्लोकमेकं तदर्धं वा शृणुयाद्यश्च मानवः ॥ प्रातर्मध्याह्नयोगे वा स याति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

यह वेद सम्मत अद्भुतोत्तरकाण्ड वर्णन किया है जो इसको पढते सुनते हैं, वे पर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य इसका एक वा आधा श्लोक सुनते हैं, उनको प्रात : मध्याह्न योगमें पढनेसे परम पदकी प्राप्ति होती है । १४ ।

पञ्चविंशतिसाहस्रं रामायणमधीत्य यत् ॥ फलमाप्नोति पुरुषस्तदस्य श्लोकमात्रतः ॥ १५ ॥ न श्रुतं नाप्यधीतं वा येन श्रुतमिदं द्विज ॥ स गर्भान्निःसृतो नैव यथा भ्रूणस्तथैव सः ॥ १६ ॥

पचीस सहस्र रामायण पढकर जो पुण्य प्राप्त होता है, वह इसके एक श्लेकसे मिलता है ॥ १५ ॥ जिसने इसको न पढा न सुना वह गर्भसे नहीं निकला भ्रूण (गर्भ) के समान है ॥ १६ ॥

रामायणमिदं श्रुत्वा न मातुर्जठरे विशेत् ।। वेदाश्चत्वार एकत्र तुलया चेदमेकतः ।। १७ ।। विधात्रा तुलितं शास्त्रं सर्वदेवाग्रतो द्विज ।। इदं तु सर्ववेदेभ्यो गौरवादतिरिच्यते ।। १८ ।।

इस रामायणको सुनकर फिर माताके उदरमें प्रवेश करना नहीं पड़ता, चार वेद एक ओर और रामायण एक ओर रखकर ।। १७ ।। विधाताने देवताओंके सामने इसको तोला तो यह गौरवमें वेदोंसे अधिक पाई गई ।। १८ ।।

शक्राय स्वर्णदीतीरे पुरा पृष्टोऽहमब्रुवम् ।। तदेव तव चाख्यातमद्भुतोत्तरकाण्डकम् ।। १९ ।। रामायणं महारत्नं ब्राह्महृत्क्षीरधावभूत् ।। नारदान्तः समासाद्य क्रमान्मम हृदि स्थितम् ।। २० ।।

स्वर्णके किनारे पहले मैंने इन्द्रके पूंछनेपर यह कथा कही थी वही अद्भुतोत्तर काण्ड तुमसे वर्णन किया है ।। १९ ।। यह रामायणरूपी महारत्न ब्रह्माजीके हृदय रूपी क्षीर समुद्रमें स्थित था, फिर वह नारदके अन्तरमें प्राप्त हो क्रमसे मेरे हृदयमें प्राप्त हुआ है ।। २० ।।

तत्सर्वं ब्रह्मणो लोके निःशेषमवतिष्ठते ।। किंचिदुर्व्यां च पाताले त्रिदिवे शक्रसन्निधौ ।। २१ ।। विरिंचिर्नारदोऽहं च त्रय एवास्य पारगाः ।। चतुर्थो नोपपद्येत बुद्धवेदं सुस्थिरो भव ।। २२ ।। यदुक्तमद्भुते काण्डे पुनस्ते कथयाम्यहम् ।। श्रीरामजन्मवृत्तान्तः श्रीमतीचरितं महत् ।। २३ ।। दण्डकारण्यकस्थानां शोणितेन महात्मनाम् ।। नारदस्य च शापेन लक्ष्म्याश्चैवापराधतः ।। २४ ।।

यह सब चरित्र तो ब्रह्मलोकमें स्थित है, कुछ पृथ्वी पातालमें और स्वर्गमें इन्द्रके समीप स्थित है ।। २१ ।। ब्रह्मा नारद और में यह तीनही इसके परगामी हैं चौथा नहीं है ऐसा जानकर स्थिर हो ।। २२ ।। जो कुछ इस अद्भुतोत्तर काण्डमें कहा है उसकी सूची तुमसे कहता हूं, रामजन्मका वृत्तान्त, श्रीमतीका चरित्र ।। २३ ।। दण्डकारण्यमें रहनेवाले महात्मा ऋषियोंका रुधिर लेना, नारदके शापसे और लक्ष्मीके अपराधसे ।। २४ ।।

मंदोदरीगर्भनिष्ठा वैदेही जन्म चोक्तवान् ।। रामस्य विश्वरूपं च भार्गवेण च वीक्षितम् ।। २५ ।। ऋष्यमूके हनुमता चतुर्बाहूरघूत्तमः ।। दृष्टो भिक्षुस्वरूपेण सुग्रीवसख्यमुक्तवान् ।। २६ ।।

मन्दोदरीके गर्भसे जानकीका जन्म, रामचन्द्रका भार्गवको विश्वरूप दिखाना ।। २५ ।। ऋष्यमूकमें हनुमानजीको चतुर्बाहुरूप दर्शन देना और भिक्षुरूपसे महाराजसे मिलकर सुग्रीवकी मित्रता करानी ।। २६ ।।

लक्ष्मणांगजतापेन शोषणं वारिधेः पुनः ।। प्राप्तराज्यस्य रामस्य मुनीना सन्निधौ तथा ।। २७ ।।सीतायाः कथनं श्रुत्वा सहस्रास्यस्य रक्षसः ।। मानसोत्तरशैलेंदे स्थितिं ज्ञात्वा रघूद्वहः ।। २८ ।।

फिर लक्ष्मणके अंगसे उत्पन्न हुए तापसे सागरको सुखाना, फिर राज्य प्राप्त होकर मुनियोंके निकटमें ।। २७ ।। जानकीसे सहस्रमुखी रावणका वृत्तान्त सुनकर और उसकी स्थिति मानसके उत्तर भागमें जानकर ।। २८ ।।

जगाम पुष्करद्वीपं भ्रातृभि सह वानरैः ।। सीताया ऐश्वरं रूपं रावणस्य वधस्तथा ।। २९ ।। अयोध्यागमनं रामस्यैष वृत्तान्त संग्रहः ।। वृत्तान्तसंग्रहं चापि पठित्वा रामभक्तिमान् ।। जायते मुनिशार्दूल नात्र कार्या विचारणा ।। ३० ।।

रामचन्द्र भाइयों सहित पुष्करद्वीपको गये, सीताका ईश्वर सम्बन्धी रूप और सहस्रमुख रावणका वध ।। २९ ।। फिर अयोध्यामें आगमन रामवृत्तांत-संग्रह है, राममें भक्ति करनेवाला इसही वृत्तान्तको पाठकर रघुनाथमें भक्ति-मान् होता है, हे मुनिराज ! इसमें सन्देह नहीं ।। ३० ।।

पठेच्च यो रामचरित्र मेतत्पुनाति पापात्सुकृतं लभेत ।। तीर्थाभिषेकं समरे जयं च स सर्वयज्ञस्य महत्फलं च ।। ३१ ।। भजेत यो राममचिंत्यरूपमेकेन भावेन च भूमिपुत्रीम् ।। एतत्सुपुण्यं शृणुयात्पठेद्वा भूयो भवेन्नो जठरे जनन्याः ।। ३२ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीसीता-रामयोरयोध्यागमनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ।। २७ ।।

जो कोई इस रामचरित्रको पढता है, वह तरकर सुकृत को प्राप्त होता है; तीर्थका अभिषेक, समरमें जय और सब यज्ञका महाफल प्राप्त करता है ।। ३१।। जो अचिन्त्यरूप रामका भजन करता है वा एक भावसे जानकीका भजन करता है, इस पवित्र ग्रन्थको सुनता व पढता है वह फिर माताके गर्भमें स्थित नहीं होता, मुक्त हो जाता है ।। ३२ ।।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा. आ. अद्‌भुतोत्तरकाण्डेमुरादावादनिवासी पं. सुखानन्दमिश्रात्मज पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्रीसीता-रामयोरयोध्यागमनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ।। २७ ।।

श्लोकसंख्या १३५३.

वाल्मीकी नारद ऋषी, महावीर शिर नाय ॥
बूझी कुलगुरु शिव शिवा, गणपति गिरा मनाय ॥ १ ॥
रामचरित भाषा कियो, द्विज ज्वालापरसाद ॥
पढहिं सुनहिं सुख लहहिं जन, ऋषियनको संवाद ॥ २ ॥
राम लषण सीता भरत, रिपुहन पवनकुमार ॥
प्रेमसहित वन्दहुँ चरण, हितकृत वारंवार ॥ ३ ॥
कृपादृष्टिकी वृष्टि जिमि, करत हमारी ओर ॥
तैसिय कीजै नित्य प्रति, दयादृगनकी कोर ॥ ४ ॥
संवत गुणशरअंकविधु, भाद्रशुक्ल रविवार ॥
सुखदायक तिथि सप्तमी, पूरयो ग्रन्थविचार ॥ ५ ॥